स्वच्छन्दतावादी काव्य : वाद-विवाद-संवाद

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की
डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
2002

निर्देशक
डॉ0 मीरा दीक्षित
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अनुसन्धित्सु
राकेश सिंह

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाश पुंज।

जो

प्रकाश देने

दिशा-निर्देश करने

आशा का संचार करने

कर्म क्षेत्र में त्याग और बलिदान

का

पथ प्रशस्त करने के लिए

ही

अवतरित हुये

हैं

ऐसे

राजर्षि कुँवर श्रीपाल सिंह

को

सादर समर्पित

आभार ज्ञाप्ति

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने पर उन महानुभावो के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना परम कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य मे सहायता प्रदान की।

इस क्रम मे सर्वप्रथम श्रद्धेय प्रो० सत्य प्रकाश मिश्र (हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के प्रति मै हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होने मुझे यह विषय सुझाया तथा जिनका चिन्तनशील व्यक्तित्व मुझे निरन्तर प्रेरणा प्रदान करता रहा है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मैने डॉ० मीरा दीक्षित (हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के निर्देशन मे पूरा किया। उन्होने बड़ी सहृदयता और तन्मयता से मेरा पथ-प्रदर्शन किया। प्रबन्ध पूर्ण होने पर इसका एक-एक शब्द उन्होने पढ़ा। उनके द्वारा किये गये उपकार के प्रति आभार प्रदर्शन का अभिनय मै नहीं कर सकता। गुरु ऋण तो जीवन-पर्यन्त साथ रहता है। इन शब्दो से मै उनके प्रति अपने हृदय मे निहित श्रद्धा का संकेत मात्र कर रहा हूँ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की पूर्व अध्यक्ष प्रो० मालती तिवारी का मै आभारी हूँ, जिन्होने शोध कार्य के दौरान उस समय अपनी कृपा दृष्टि बनाये रखी जब लगभग एक वर्ष तक मै श्वास रोग से ग्रस्त था और सक्रिय शोधकार्य मे असमर्थ था।

प्रो० राजेन्द्र कुमार (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), जिन्होने परास्नातक शिक्षा काल मे अपने विद्वतापूर्ण व्याख्यान से मेरा ज्ञानवर्धन किया; के मगलाशीष की मै कामना करता हूँ।

मै कृतज्ञ हूँ श्रद्धेय डॉ० राम सेवक सिंह (प्राचार्य, राजा हरपाल सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर) का, जिन्होने प्रत्येक कठिन अवसर पर अपनी कृपा दृष्टि से मेरा पथ प्रशस्त किया। जब भी कभी उलझनो और कठिनाइयो के कारण मैं निराश हुआ, तो उन्होने मनोवैज्ञानिक ढग से मेरा साहस बढ़ाया और कर्तव्य पथ पर अग्रसर किया।

डॉ० राम प्रताप सिंह (पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजा हरपाल सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर), जिनके पुनीत और सारगर्भित परामर्श से इस शोध-प्रबन्ध मे

प्राण-रस का सचार हो सका है, उन्हे आभार प्रदर्शन के औपचारिक सूत्र मे न बॉधकर मै उनके समक्ष नतमस्तक हूँ।

डॉ0 जय सिह 'व्यथित' (कुलपति, गुजरात हिन्दी विद्यापीठ, अहमदाबाद), कैप्टन टी एन सिह (प्रधानाचार्य, राजा हरपाल सिह इण्टर कालेज, सिगरामऊ, जौनपुर), मेजर अमर बहादुर सिह (वरिष्ठ सदस्य, प्रबन्ध समिति, राजा हरपाल सिह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिगरामऊ, जौनपुर) तथा डॉ0 भारत सिह (रीडर, शिक्षा सकाय, राजा हरपाल सिह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिगरामऊ, जौनपुर) के अगाध स्नेह ने मुझे नयी दिशा और प्रेरणा प्रदान की। इन महानुभावो के प्रति मै आत्मिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

राजा हरपाल सिह स्नातकोत्तर महाविद्यालय के समस्त शिक्षको का मै आभारी हूँ, जिनका सानिध्य मुझे सतत् सम्बल प्रदान करता रहा है।

इस अवसर पर दो पत्रकार महानुभावो डॉ0 मन्मथ दुबे तथा श्री राजेन्द्र बहादुर सिह के प्रति अपनी अकृत्रिम कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जो मेरी हर-क्षण, हर-सभव मदद के लिये तत्पर रहते है।

श्रद्धेय श्री राजेन्द्र प्रसाद सिह (अवकाश प्राप्त शिक्षक) तथा श्री सुधाकर सिह (अधिवक्ता) के प्रति मै हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होने इस कार्य हेतु मुझे बार-बार प्रेरित किया तथा मेरी कई पारिवारिक जिम्मेदारियो का निर्वहन स्वय किया जिससे मुझे इस कार्य हेतु पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो सका।

यदि मित्रो का अयाचित स्नेह न मिलता तो यह शोध-प्रबन्ध इस रूप मे पूरा हो पाता, इसमे सन्देह है।

श्री अजय प्रताप सिह (शोध छात्र- हिन्दी), डॉ0 सुनील कुमार सिह (प्रवक्ता-हिन्दी) तथा डॉ0 जाह्नवी प्रसाद उपाध्याय (प्रवक्ता-समाजशास्त्र) द्वारा प्राप्त स्नेह तथा सुविधाये अविस्मरणीय है।

मेरे मित्र और अनुज सम श्री सतीश कुमार सिह ने सामग्री सचयन से लेकर शोध-प्रबन्ध के मुद्रण तक जो सहयोग दिया, वह अमूल्य है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना उनके द्वारा किये गये उपकार को कम करके ऑकना होगा।

डॉ0 सरिता सिंह (प्रवक्ता-समाज शास्त्र) ने शोध-प्रबन्ध पूरा करने के लिये मुझे बार-बार प्रेरित किया। उनके स्नेह भरे तकाजो से ही यह शोध कार्य समय पर सम्पन्न हो सका। उनके प्रति कृतज्ञता और स्नेह की अभिव्यक्ति करना अपना निजी धर्म समझता हूँ।

डॉ0 सुषमा सिंह (एम0 ए0-राजनीति शास्त्र, पी-एच0 डी0) तथा सुश्री पूनम तिवारी (एम0 ए0 पूर्वार्द्ध, हिन्दी) का मै हृदय से आभारी हूँ, जिनके प्रोत्साहन एव सहयोग से शोध कार्य मे गतिशीलता आयी।

श्री पूरन सिंह (इलाहाबाद), श्री दिनेश कुमार सिंह (फैजाबाद), डॉ0 सजय कुमार श्रीवास्तव (प्रवक्ता-हिन्दी), डॉ0 उमेश सिंह (प्रवक्ता-अर्थशास्त्र), श्री राम ध्यान जी (मऊ), श्री अतुल कृष्ण सिंह 'बटी' (कर अधीक्षक), श्री मनोज कुमार सिंह (शोध छात्र-हिन्दी) , श्री सजय पाण्डेय (बलिया), श्री रितेश उपाध्याय (इलाहाबाद), श्री नीरज सिंह (बलिया), श्री उमेश पाठक (सुल्तानपुर), श्री अतुल सिंह 'राजू' (सुल्तानपुर), श्री प्रेमेन्द्र कुमार त्रिपाठी 'राजू' (प्रवक्ता-हिन्दी), श्री अखिलेन्द्र कुमार दुबे 'बल्लू' (झॉसी) आदि आत्मीय जनो का मै हृदय से आभारी हूँ, जिन्होने अध्ययन काल मे मुझे प्रोत्साहन एव सहयोग प्रदान किया।

श्री राजेन्द्र बहादुर सिंह (कार्यालय अधीक्षक, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) का सहयोग मुझे बराबर मिलता रहा है। मै उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

इस अवसर पर परिवारजनो का स्मरण करना मै अपना कर्तव्य समझता हूँ। इस क्रम मे सर्वप्रथम पूज्य माता-पिता के प्रति मेरा समस्त सम्मान, जिन्होने अपने भौतिक सुखो की परवाह न करते हुये मेरे शैक्षिक उन्नयन से ही हर्षित होने का व्रत लिया है। अग्रज श्री राम आसरे सिंह ने मुझे निरन्तर सहयोग एव प्रोत्साहन दिया। जीवन सगिनी श्रीमती पूनम सिंह ने मुझे नित्य प्रति की जिम्मेदारियो से मुक्त रखा तथा मेरी दैनिक आवश्यकताओ का बराबर ध्यान रखा। उषा, रीता तथा सन्तोष, ऋषभ के स्नेह ने मुझे निरन्तर प्रेरित किया। इन सबके प्रति पूर्ण श्रद्धा एव विशेष स्नेह की अभिव्यक्ति करना मै अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति मै कृतज्ञ हूँ, जिसकी फेलोशिप (शोधवृत्ति) पर मैने यह शोध कार्य किया। उन विद्धज्जनो के प्रति मै कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहता हूँ, जिनकी कृतियो से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे सहयोग मिला है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के पुस्तकालय के प्रति मै

आभारी हूँ। यहाँ मुझे उन कृतियो का अध्ययन करने का अवसर मिला, जिनके नये सस्करण उपलब्ध नहीं है।

इस अवसर पर शिवम साइबर स्पॉट, प्रयाग के सचालक श्री प्रमोद शर्मा तथा टाइपिस्ट श्री मिश्री लाल का मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होने तत्परता से शोध-प्रबन्ध का मुद्रण कार्य सम्पन्न किया।

राकेश सिह

अनुक्रम

अध्याय –2

अध्याय –6

उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य 227-285

भूमिका

भूमिका

आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास मे स्वच्छन्दतावादी काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। अब तक इस काव्यधारा की प्रवृत्तियो–विशेषताओ और इस धारा के कवियो से सम्बन्धित अनेक शोध–प्रबन्ध लिखे जा चुके है, किन्तु उनमे पर्याप्त दृष्टि–भेद है। प्राय छायावादी काव्य को हिन्दी का स्वच्छन्दतावादी काव्य मान लिया गया है और शोधकर्ताओ ने छायावाद के चार प्रमुख कवियो–जयशकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा को ही स्वच्छन्दतावादी कवियो की परिधि मे शामिल किया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य के सम्बन्ध मे इन्ही चारो कवियो का अलग–अलग या समग्र रूप से विवेचन किया गया है। स्वच्छन्दतावादी काव्य–कृतियो तथा इस विषय पर अब तक प्रकाश मे आये शोधकार्यों को देखते हुये ऐसा प्रतीत हुआ कि हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य पर नये दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध इसी आवश्यकता की पूर्ति की दिशा मे एक विनम्र प्रयास है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध छ अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है– 'अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का परिचय'। हिन्दी मे 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द अग्रेजी के 'रोमाण्टिसिज्म' (Romanticism) शब्द के पर्यायवाची के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। अत हिन्दी के 'स्वच्छन्दतावाद' को समझने के लिये अग्रेजी के 'रोमाटिसिज्म' शब्द के उद्भव और विकास को समझना आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत अध्याय मे रोमाण्टिसिज्म शब्द की व्युत्पत्ति का विवेचन किया गया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी कविता के उदय मे भारतीय नवजागरण एव सास्कृतिक आन्दोलनो की भूमिका प्रमुख रही है तथा भारतीय नवजागरण एवं सास्कृतिक आन्दोलनो ने पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया था। पश्चिम के धर्मसुधार आन्दोलनो, पुनर्जागरण, अमेरिका, फ्रास और रूस की क्रान्तियो तथा औद्योगिक क्रान्ति ने भारत में नवजागरण की गति को तेज करने मे भूमिका निभायी थी। अत इस निष्कर्ष पर आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि भारतीय साहित्य मे नवीन भाव धाराओं एव चितन धाराओ का प्रवाह पश्चिमी साहित्य एवं विचारधारा के संपर्क से और भी वेग से प्रवाहमान हो चला। इसी दृष्टिकोण

से हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का विवेचन पश्चिमी रोमाटिसिज्म के समक्ष रखकर किया गया है, जिससे हिन्दी स्वच्छन्दतावाद पर पडे बाह्य प्रभाव और प्रेरणा की प्रकृति को समझा जा सके।

यूरोप मे रोमाण्टिसिज्म पुनर्जागरण के साथ आया। पुनर्जागरण ने सारे यूरोप के जीवन को परिवर्तित कर दिया था। इसने जीवन के सारे पक्षो को प्रभावित किया। एक सास्कृतिक आन्दोलन के रूप मे पुनर्जागरण ने साहित्य कला और दर्शन सभी को प्रभावित किया। वैज्ञानिक अनुसंधानो से धार्मिक कट्टरता तथा पुरानी मान्यताओ को धक्का लगा। पुनर्जागरण के झोके से सामन्तवाद समाप्त हो गया। पुनर्जागरण यूरोप मे मानवतावाद की स्थापना करने मे समर्थ हुआ। यही मानवतावाद रोमाण्टिसिज्म लाने का कारण बना। अठारहवी शताब्दी मे यूरोप मे हुई तीन महत्वपूर्ण क्रान्तियो ने यूरोप की प्राचीन सस्कृति को पूर्णत बदल डाला। इसने जीवन मूल्यो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किये, जीवन दृष्टि मे युगान्तर स्थापित किया। इन सबका प्रभाव साहित्य पर भी पडा।

अठारहवी शताब्दी के अतिम चरण और उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे साहित्य और कला के क्षेत्र मे यूरोप व्यापी रोमाटिक आन्दोलन प्रारभ हुआ। इस आन्दोलन ने पश्चिमी यूरोप के देशो को विशेष रूप से प्रभावित किया। किन्तु सारे यूरोप मे रोमाटिसिज्म आन्दोलन एक जैसा नही था। जर्मन रोमाटिक धारा का मुख्य उद्देश्य तर्क, बुद्धिवाद एव विज्ञानवाद के अतिरेक को नियन्त्रित कर धर्म एव आध्यात्मिक दृष्टि की प्रतिष्ठापना रहा है। उसकी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने बौद्धिकता और तार्किकता का विरोध कर अनुभूति और अन्तर्दृष्टि पर बल दिया। उसने यूरोप के रोमाटिक काव्य को समुचित दार्शनिक पीठिका प्रदान की। फ्रास मे रोमाटिक आन्दोलन ने काव्य, नाटक, उपन्यास, समीक्षा आदि साहित्यिक विधाओ के अतिरिक्त इतिहास, धर्म, राजनीति, दर्शन आदि के सम्बन्ध मे विचार रखने वाले विचारको और लेखको को भी प्रभावित किया। देश के राजनीतिक विप्लव के कारण फ्रास मे रोमाटिक आन्दोलन इग्लैण्ड की तुलना मे कुछ देर से सक्रिय हुआ। पर यह ध्यान देने योग्य है कि फ्रास मे ही रोमांटिसिज्म के विचार का उद्भव हुआ। फ्रांस चिन्तन के क्षेत्र मे अग्रणी रहा है। फ्रास के रोमाटिक आदोलन मे प्रेरणा, प्रातिभज्ञान, कल्पना, सौन्दर्यानुभूति आदि की प्रधानता है। इन्हे

रोमांटिसिज्म का मूल तत्व माना जाता है। फ्रासीसी रोमाटिक आन्दोलन ने यूरोपीय रोमाटिक आन्दोलन को विस्तार दिया।

रोमाटिक आन्दोलन का पूर्ण विकास इग्लैण्ड मे हुआ। विलियम वर्ड्सवर्थ को अग्रेजी रोमाटिक धारा का प्रवर्तक माना जाता है। वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज ने 'लिरिकल बैलेड्स' का सम्पादन किया। यह घटना अग्रेजी साहित्य के इतिहास मे एक युग प्रवर्तक साहित्यिक घटना है। 'लिरिकल बैलेड्स' के द्वितीय सस्करण मे वर्ड्सवर्थ द्वारा लिखी गयी भूमिका 'रोमाटिक कविता का मेनीफेस्टो' कहा जाता है। अग्रेजी रोमाटिक आन्दोलन को वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, सर वाल्टर स्काट, बायरन, शेली, कीट्स आदि ने उत्कर्ष प्रदान किया।

अग्रेजी और जर्मनी की रोमाटिक धारा का प्रभाव रूस पर भी पडा। रूस के प्रथम रोमाटिक कवि पुश्किन ने काव्य और कलाओ को रुढिवादिता की सीमा से बाहर निकाल कर उसे स्वाभाविक बनाने का प्रयास किया।

उन्नीसवी शताब्दी मे रोमाटिक आन्दोलन का ह्रास हो जाता है। प्रत्येक युग का साहित्य अपने युग की परिस्थितियो से प्रभावित होता है। अत वह निश्चित ही युगीन वातावरण के अनुकूल अपना स्वरूप परिवर्तित करता रहता है। अठारहवी शताब्दी मे जिस वातावरण ने रोमाटिक प्रवृत्तियो को जन्म दिया था, उन्नीसवी शताब्दी मे वह शीघ्रता से परिवर्तित होने लगा था। रोमाटिक प्रवृत्तियो के विपरीत तर्क, उपयोगितावाद, भौतिकवाद इत्यादि के नवीन प्रभाव सबल और सक्रिय हो उठे थे। यथार्थवादी साहित्य के अनुकूल भूमि तैयार हो चुकी थी। अत कल्पना और भावना प्रधान रोमाटिक प्रवृत्तियॉ टिकी न रह सकी। रोमांटिक युग की कल्पना और भावना के अतिरेक ने अव्यवस्था को जन्म दिया और रोमाटिक साहित्य जीवन निरपेक्ष हो गया। निष्कर्षत प्रतिकूल युगीन परिस्थितियो के कारण वह टिका न रह सका।

रोमाटिसिज्म की प्रवृत्तियो को सही रूप मे समझने के लिए अन्य वादो से उसकी भिन्नता और समानता पर भी विचार किया गया है। स्वच्छन्दतावाद शस्त्रीयतावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप आया। इसी प्रकार यथार्थवाद शब्द का प्रयोग आदर्शवाद और स्वच्छन्दतावाद के विरोध मे उन

साहित्यिक कृतियो के लिए किया जाता है जो वास्तविक जीवन की अनुकृति से निर्मित होती हैं। स्वच्छन्दतावाद और आदर्शवाद दोनो मे कल्पना का प्राधान्य होता है। दोनो मे मुख्य अन्तर यह है कि आदर्शवाद उपयोगितावादी है, जबकि स्वच्छदतावाद 'कला कला के लिये' सिद्धात का पक्षधर होने के कारण शुद्ध आनन्दवादी है। जहॉ तक प्रतीकवाद और स्वच्छन्दतावाद के बीच अन्तर का प्रश्न है– प्रतीक योजना स्वच्छन्दतावादी काव्य की एक प्रवृत्ति विशेष है। इसी प्रकार रहस्यवादी काव्य मे रहस्यानुभूति की व्यजना प्रमुख रूप से होती है, जबकि स्वच्छन्दतावादी रचनाओ की यह प्रवृत्ति विशेष है।

प्रथम अध्याय के अत मे रोमाटिक साहित्य की प्रमुख विशेषताओ का विवेचन किया गया है। रोमाटिक साहित्य का सृजन शास्त्रीय रुढियो के विरोध मे हुआ। सैन्दर्य–प्रेम और सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा रोमांटिक साहित्य के दो प्रमुख तत्व हैं। व्यक्तिपरकता रोमाटिक साहित्य की प्रवृत्ति विशेष के रूप मे दिखायी देती है। रोमाटिक कवि प्रकृति से विशेष अनुराग रखता है। रोमांटिक कवियो के प्रकृति चित्रण मे आत्मीयता होती है। कल्पना को स्वच्छन्दतावाद मे बहुत महत्व मिला है। कल्पना ने रोमाटिक कवियो की रचनाओ मे भाषा और भाव के सौन्दर्य का आधान किया।, किन्तु कही–कही यह जीव और जगत के दुखो से हारे मन के पलायन का माध्यम भी बनी। रोमाटिक कवियो मे मध्ययुगीन गीतो, गाथाओ एव रोमानी कथाओ के प्रति जबर्दस्त आकर्षण मिलता है। स्वच्छन्दतावादी कवियो ने सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति को महत्व दिया। सभी रोमांटिक कवि सायास शिल्प और अलकरण के विरोधी थे। वे मानव के नैसर्गिक मूल भावो का चित्रण सहज तथा आडम्बरहीन भाषा–शैली मे करने के पक्षधर थे। भाषा की सहजता के पक्षधर होने के बावजूद सभी रोमाटिक कवियो ने सूक्ष्म अर्थच्छायाओं को उद्घाटित करने के लिए भाषा और ध्वनि के सगीत का सुन्दर उपयोग किया है। छद के सदर्भ मे भी इस युग के कवि का स्वातन्त्र्य भाव स्पष्ट होता है। अपनी रुचि के अनुसार रोमाटिक कवियो ने विविध छदो का प्रयोग किया है।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक है– 'हिन्दी स्वच्छन्दतावाद : स्वरूप विश्लेषण'। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम हिन्दी स्वच्छन्दतावाद शब्द और उसके आशय का विवेचन किया गया है। विभिन्न विद्वानो

द्वारा दी गयी परिभाषाओ से स्वच्छन्दतावाद शब्द को समझने मे मदद मिली है। इसके बाद हिन्दी मे स्वच्छन्दतावादी काव्य सरचना की परम्परा का विवेचन किया गया है। स्वच्छन्दता किसी युग विशेष का गुण न होकर मनुष्य की आन्तरिकता से जुडा तत्व है। इसलिये स्वच्छन्दतावाद के तत्व आदिकालीन साहित्य से लेकर आधुनिक काल के साहित्य तक मिल सकते है। किन्तु आज हम जिस अर्थ मे स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग करते हैं, वह आधुनिक युग की उत्पत्ति है। उसमे देश की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो का योग है। आधुनिक काल मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओ से ही स्वच्छन्दवादिता का आभास मिलने लगता है। हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियो ने काव्यधारा को नये–नये विषयो की ओर मोडने की प्रवृत्ति दिखाई, किन्तु भाषा ब्रज ही रहने दी। उनकी अभिव्यजना पद्धति तथा प्रकृति चित्रण मे स्वच्छन्दवादिता नहीं आ पायी। वस्तुत. हिन्दी काव्य मे स्वच्छन्दवादिता का अवतरण श्रीधर पाठक द्वारा सामने आया। उन्होने अंग्रेजी रोमांटिक कवियो के काव्यो का भावानुवाद करके भाषा, भाव तथा छन्द का नूतन विधान प्रस्तुत किया। श्रीधर पाठक की परम्परा को रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' रुपनारायण पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि ने आगे बढाया।

स्वच्छन्दतावाद का व्यापक प्रसार छायावादी कविता के माध्यम से हुआ। हिन्दी के छायावादी काव्य की अग्रेजी के रोमाटिक साहित्य से अत्यधिक तदनुरूपता उस पर रोमाटिक प्रभाव को सिद्ध करती है। फिर भी छायावाद का विकास भारतीय परिस्थितियो मे हुआ। इसने भारत के सामाजिक, सास्कृतिक जागरण से प्रेरणा ग्रहण की।

स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को लेकर अनेक विवाद हैं। कुछ विद्वान दोनो को एक मानते हैं, कुछ दोनो मे अन्तर करते हैं। 'छायावाद' का नामकरण मुकुटधर पाण्डेय द्वारा 1920 ई0 तक हो चुका था। 'श्री शारदा' पत्रिका मे छपे मुकुटधर पाण्डेय के चार लेख छायावाद के प्रारम्भिक स्वरूप का परिचय देते है। उन्होने भाव प्रकाशन के एक नये मार्ग के रूप मे छायावाद की आवश्यकता पर बल दिया। हिन्दी मे छायावाद का प्रचलन आकस्मिक है। आरम्भ मे जब छायावाद शब्द का प्रयोग किया गया तो इसका आशय अस्पष्टता और अमासलता आदि से था। इस नाम से एक धूमिल, अस्त–व्यस्त,

वायवी चितन और सृजन के प्रतीक का बोध होता है। यह शब्द उस काव्य की सपूर्ण ध्वनि को व्यजित नहीं करता। वस्तुत यह हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा है और स्वच्छन्दतावाद का नामकरण ही इसके प्रति पूरी तरह से न्याय कर सकता है। जिसे हम छायावाद के नाम से जानते है, वह वस्तुत स्वच्छन्दतावाद ही है। श्रीधर पाठक, अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवशराय 'बच्चन', रामधारी सिह 'दिनकर' तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि कवियो के काव्य को एक साथ स्वच्छन्दतावाद के अन्तर्गत ही समाहित किया जा सकता है।

स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति उस समय के समस्त साहित्य मे किसी न किसी रूप मे रही है, जबकि छायावाद नामकरण जिन विशेष रचनाओ के लिये दिया गया उनके अतिरिक्त इसमे और रचनाओ को समाहित करना अनुपयुक्त होगा। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद भारतीय नवजागरण की साहित्यिक निष्पत्ति है। छायावाद नामकरण इतना प्रचलित हो गया है और उस युग के काव्य विशेष के लिए रूढ हो गया है कि अपनी अर्थगत अस्पष्टता के बावजूद वह हिन्दी काव्य के एक विशेष काल खण्ड की कविता का बोध कराता है। छायावाद नाम को साहित्येतिहास से खारिज करना सभव नही है। फिर भी छायावाद के पहले के साहित्य और छायावाद के बाद के साहित्य तथा छायावादी साहित्य – इन तीनो समयो के समस्त साहित्य को एक साथ समझने के लिये स्वच्छन्दतावाद नामकरण की पहल की जानी चाहिये।

हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य को तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है– 1 प्रारभिक स्वच्छन्दतावादी काव्य (पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य), 2 स्वच्छन्दतावादी काव्य (छायावादी काव्य), 3 उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य (नवस्वच्छन्दतावादी काव्य)। यह विभाजन सिर्फ अध्ययन की सुविधा के लिए है। साहित्य मे किसी प्रवृत्ति को लेकर समय की कोई विभाजक रेखा नही खीची जा सकती। साहित्य की कई प्रवृत्तियॉ एक साथ चलती रहती हैं। प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य का समय वर्ष 1900 ई0 से 1920 ई0 तक माना जा सकता है तथा इसके अन्तर्गत श्रीधर पाठक, अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी तथा मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि प्रमुख रूप से आते हैं। छायावाद जो स्वच्छन्दतावाद की सर्वोत्तम निष्पत्ति है, के अन्तर्गत प्रमुख कवियो मे जयशकर प्रसाद,

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा का अध्ययन किया जा सकता है। इसका समय 1920 ई0 से 1938 ई0 तक निर्धारित किया जा सकता है। उत्तर स्वच्छन्दतावाद का समय 1938 ई0 से 1960 ई0 तक माना जा सकता है। इस समय तक स्वच्छन्दतावाद का समापन हो जाता है। प्रमुख उत्तर स्वच्छन्दतावादी कवियों मे माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवशराय 'बच्चन', रामधारी सिह 'दिनकर' तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आते हैं। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे स्वच्छन्दतावाद के तीनो कालो के चार–चार प्रमुख कवियो के काव्य का विवेचन किया गया है। इन कवियो के काव्य मे स्वच्छन्दतावाद का सपूर्ण चित्र उपस्थित हो जाता है।

द्वितीय अध्याय के अन्त मे हिन्दी स्वच्छन्दतावाद युग की परिस्थितियो तथा इस धारा को प्रेरित करने वाले कारको और उनके प्रभाव का विवेचन किया गया है। बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण से पश्चिमी चितन ने हमारे देश के ज्ञान की प्रत्येक धारा मे प्रवेश पा लिया था। इस चिन्तन मे साहित्यिक सरचना का क्रम भी अनुप्रेरित हुआ और नवीन साहित्यिक कृतियों मे आदर्शवाद, परम्परानुमोदन, भावुकता और काव्यशास्त्रीय प्रतिबद्धता के स्थान पर यथार्थवादी समकालीन, तर्क प्रवण, स्वच्छन्दतावादी रचना–दृष्टि का विकास हुआ। साहित्यिक सरचना मे इस परिवर्तन क्रम को लक्षित करके हम पाश्चात्य प्रभाव को अनदेखा नही कर सकते और न ही पश्चिमी चितन का आदान किसी हीन भाव का द्योतक होना चाहिये। वास्तविकता यह है कि पाश्चात्य चितन के प्रभाव ने हमारी रचना–धर्मिता को नवीन आयाम प्रदान किये हैं और सृजन की सार्थकता प्रमाणित की है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा के प्रादुर्भाव मे भारत की समकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक–सास्कृतिक परिस्थितियो ने कम या अधिक मात्रा मे अपना सहयोग दिया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के आरभ का काल देश मे राजनैतिक सघर्षों और राष्ट्रीय आन्दोलन एव विद्रोह का काल रहा है। भारत का स्वाधीनता सग्राम सिर्फ एक राजनीतिक आन्दोलन नहीं था, यह सामाजिक–सास्कृतिक आन्दोलन भी था। राजनीतिक घटनाओ ने साहित्यिक आन्दोलनो को भी प्रभावित किया। स्वतन्त्रता हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का एक बहुत बडा मूल्य है। उन्नीसवी शताब्दी के अतिम दशको तथा बीसवी शताब्दी के प्रारभिक दशको मे भारत की सामाजिक परिस्थितियो ने स्वच्छन्दतावादी

कवियो को प्रभावित किया। उन पर पाश्चात्य विचारधारा का भी प्रभाव पडा। अग्रेजी शिक्षा के प्रसार के साथ पाश्चात्य विचारधारा भारत मे प्रविष्ट हो गयी। समानता, विश्व बन्धुत्व की भावना तथा पाश्चात्य विचारो ने स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के विकास मे योगदान दिया। स्वच्छन्दतावादी काव्य के उद्‌भव और विकास को समकालीन आर्थिक परिस्थितियो ने भी प्रभावित किया। स्वच्छन्दतावादी काव्य मे अभिव्यक्त निराशा तथा वेदना की प्रवृत्ति कुछ हद तक युग की आर्थिक परिस्थितियो से प्रभावित जान पडती है। इसी प्रकार भारतीय सास्कृतिक नवजागरण से उपजी नवीन परिस्थितियो के कारण भारतीय जनता मे जो नवीन चेतना का सचार हुआ, नवीन उत्साह की तरगे उठी वे ही भारत के सास्कृतिक जागरण की प्रेरणा थी, जिनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा के प्रवर्तन मे कार्य कर रहा था।

तृतीय अध्याय का शीर्षक है –'स्वच्छन्दतावादी काव्य–विवेचन'। इसके अन्तर्गत स्वच्छन्दतावादी काव्य विवेचन के प्रारभ से लेकर उसकी मार्क्सवादी–प्रगतिवादी विवेचना और नयी विवेचना का अध्ययन किया गया है। स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग सबसे पहले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया। स्वच्छन्दतावाद के स्वरूप पर प्रामाणिक रूप से विचार करने वाले आचार्य शुक्ल प्रथम समीक्षक है। अपने ग्रथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे उन्होने 'काव्य खण्ड – नई धारा द्वितीय उत्थान' के अन्तर्गत स्वच्छन्दतावादी काव्य को परखा है तथा श्रीधर पाठक से उसकी शुरुआत मानी है। उन्होने स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की जीवनी शक्ति और अभिव्यक्ति का आधार लोकभूमि को माना है। उन्होने स्वच्छन्दतावादी काव्य सृजन की मूल प्रेरणा परिवर्तन की भावना को माना है। आचार्य शुक्ल के विवेचन से हम स्वच्छन्दतावाद की आधारभूमि से परिचित होते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वच्छन्दतावाद के साथ 'सच्ची नैसर्गिक' विश्लेषण जोडते है। वे हिन्दी स्वच्छन्दतावाद को अग्रेजी स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्तियो से समानता स्थापित करते हुए उसे अन्य विशिष्टताओ से भी मुक्त मानते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद पर भी विचार किया है। वे उसे स्वच्छन्दतावाद से अलग करके देखते हैं। उन्होने अपने इतिहास ग्रथ मे छायावाद को 'आधुनिक काल–काव्य खण्ड–नई धारा .

तृतीय उत्थान' के अन्तर्गत रखा है और इसे स्वच्छन्दतावाद के विरुद्ध आयी कविता बताया है। वह छायावाद को सच्चे स्वच्छन्दतावाद यानी श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी की काव्यधारा से काटकर अलग कर देते हैं। वे इसे ईसाई सतो के छायाभास (फैटासमाटा) से जोडकर देखते है। उन्होने छायावाद को रहस्यवाद और प्रतीकवाद से जोडकर देखा। चित्र–भाषावाद, अन्योक्ति पद्धति तथा प्रेमगान को ही मुख्य विषय के रूप मे वे छायावाद की विशेषताये मानते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के छायावाद सम्बन्धी विवेचन का प्रतिवाद हुआ है। उनकी समीक्षा दृष्टि छायावाद के अनुकूल नहीं थी। फिर भी छायावाद के प्रारभिक विवेचक होने के कारण उनके विवेचन का महत्व है।

स्वच्छन्दतावाद को समझने के लिए मुकुटधर पाण्डेय के विवेचन का विशेष महत्व है। वे छायावाद के आदि व्याख्याता है। मुकुटधर पाण्डेय द्वारा 'श्री शारदा' पत्रिका मे छायावाद पर छपी लेखमाला का ऐतिहासिक महत्व है। इसी लेखमाला मे छायावाद पर सबसे पहले विधिवत और प्रामाणिक रूप से विवेचन प्रस्तुत किया गया था। वह कवि–व्यक्तित्व की मौलिकता को अनिवार्य मानते हैं। अनुभूति की नवीनता तथा व्यक्तित्व की स्वतत्रता को वे कवि के लिये आवश्यक मानते है। उन्होने छायावाद को भाव राज्य की वस्तु कहा है। उसमे केवल सकेत से काम लिया जाता है। भाषा उसमे भाव प्रकाशन का एक गौण साधन मात्र है। छायावाद के प्रारभिक दिनो मे छायावाद की सूक्ष्म अभिव्यजना पद्धति जिसका आधार लाक्षणिकता और व्यजकता थी, नये काव्य के विरोधियो के लिए उसका सबसे दुर्बल पक्ष बन कर आयी थी। मुकुटधर पाण्डेय ने इस विरोध का सामना करने के लिए सन्तुलन और ऐतिहासिक दृष्टि का परिचय दिया।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के समर्थ व्याख्याता है। उन्होने रोमाटिक प्रवृत्ति की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की। स्वतन्त्रता की लालसा तथा बन्धनो का त्याग रोमान्टिक धारा का मूल है। रोमाटिक विषय–वस्तु के सम्बन्ध मे वाजपेयी जी की मान्यता है कि रोमाटिक कवि सर्वसाधारण लोगो से लेकर छोटी सी छोटी वस्तुओ को अपने काव्य की विषय–वस्तु बना सकता है। उन्होने स्वच्छन्दतावादी कव्य की विशेषताओ, विशेषकर छायावादी काव्य को कई स्तरो पर पहचानने की चेष्टा की। उन्होने इस बात का जोरदार खण्डन किया कि स्वच्छन्दतावादी काव्य यूरोपीय रोमाटिक

काव्य –प्रभाव की उपज है। वाजपेयी जी ने छायावाद के सास्कृतिक परिवेश को विश्लेषित किया। वाजपेयी जी का मानना था कि प्रत्येक साहित्यिक आन्दोलन अपने समय और समाज को नजरअदाज नहीं कर सकता। इसी सदर्भ मे उन्होने भारतीय राष्ट्रीय जीवन की पृष्ठभूमि पर छायावाद की परीक्षा की। छायावादी काव्य मूलत अपने देश की उपज है – इस मान्यता को उन्होने बार–बार प्रतिपादित किया। छायावाद को राष्ट्रीय जागरण का प्रतिनिधि कहकर उन्होने स्वच्छन्दतावाद के साथ राष्ट्रीय चेतना का सामजस्य स्थापित किया।

स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध मे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार महत्वपूर्ण है। उन्होने रोमाटिक काव्यधारा के कवि के वैयक्तिक पक्ष तथा उसकी भाव प्रवण दृष्टि की विवेचना की। रोमाटिक साहित्य की रचना के लिए कल्पनाशीलता पर अत्यधिक बल देते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि कल्पना की सहायता से ही रोमाटिक अनुभूतियॉ अभिव्यक्ति पाती हैं। अन्य आलोचकों के विपरीत आचार्य द्विवेदी रोमाटिक काव्य के मूल मे विद्रोह की भावना नही मानते। उनका मत है कि रोमाटिक काव्य मे विद्रोह की जो भावना परिलक्षित होती है वह आन्तरिक न होकर बाह्य परिस्थितिजन्य होती है। आचार्य द्विवेदी ने रोमाटिक काव्य की वर्ण्य वस्तु, रोमाटिक कवि की प्रवृत्ति तथा रोमाटिक काव्य की अभिव्यक्ति शैली पर विशदता से विचार किया है। उन्होने छायावाद पर भी विचार किया है। वे छायावाद को एक मानवीय भूमि का काव्य घोषित करते है। उनकी मान्यता है कि उसमे जो जीवन व्याप्त है, उसे देखते हुये यह शब्द सपूर्ण व्यक्तित्व के साथ–न्याय नही कर पाता। छायावाद शब्द से जो वायवीयता की व्यग्य भरी ध्वनि आती है, वह एक प्रकार से इस काव्य के साथ अन्याय है। आचार्य द्विवेदी छायावाद को विशाल सास्कृतिक चेतना का परिणाम मानते है। छायावादी काव्य को भारतीय चिन्ता धारा के स्वाभाविक विकास के रूप मे ग्रहण कर द्विवेदी जी उसे गौरव प्रदान करते है और कई प्रचलित भ्रातियो से मुक्ति दिलाने मे हमारी सहायता करते है। उन्होने स्वच्छन्दतावाद अथवा रोमानी काव्य और छायावादी काव्य मे अभेदत्व स्थापित किया।

डॉ0 नगेन्द्र ने स्वच्छन्दतावादी काव्य का विवेचन मनोवैज्ञानिक ढग से किया है। उन्होने छायावाद को 'स्थूल से विमुख होकर सूक्ष्म के प्रति आग्रह' कहकर सम्बोधित किया। छायावाद की

विवेचना करते हुए उन्होने सर्वप्रथम उसकी सामाजिक पीठिका की ओर सकेत किया है। उनका विचार है कि छायावाद की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का कारण यह है कि राजनीतिक परिस्थितियो के कारण अभिव्यक्ति का अवसर कम था। डॉ0 नगेन्द्र ने छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियो का भी उल्लेख किया है। उन्होने छायावाद की अन्तर्मुखी दृष्टि और यथार्थ को वायवी अथवा अतीन्द्रिय रूप देने की प्रवृत्ति को उसकी मुख्य बनावट के रूप मे प्रतिपादित किया। इसलिए व्यक्तिवाद को उन्होने छायावादी काव्य–प्रवृत्तियो के शीर्ष पर रखा और अन्य सभी प्रवृत्तियो को भी अन्तर्मुखी दृष्टि के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया। छायावादी काव्य की व्यक्तिवादिता, श्रृगारिकता के लिए डॉ0 नगेन्द्र ने मनोविज्ञान का सहारा लेते हुए उसे कवि की व्यक्तिगत कुठाओ से जोड दिया है। उन्होने छायावाद की कविता को श्रृगारिक माना है काम को मूल प्रवृत्ति मानकर छायावादी काव्य की व्यक्तिगत प्रवृत्तियो का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। डॉ0 नगेन्द्र ने छायावादी काव्य को प्रथम श्रेणी का विश्व काव्य नही माना है।

छायावादी काव्य के विषय मे छायावादी कवियो द्वारा किये गये काव्य विवेचन का भी अध्ययन इस अध्याय मे किया गया है। जयशकर प्रसाद के अनुसार काव्य आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति है। सकल्पात्मक अनुभूति से कवि का अभिप्राय उस अनुभूति विशेष से है जो कल्याणमय और लालित्यपूर्ण है, जिसे उन्होने श्रेय और प्रेय से अभिहित किया है। प्रसाद का मानना है कि आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व मे सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य मे मूल सकल्पात्मक अनुभूति कही जा सकती है, काव्य के सम्बन्ध मे अपनी मान्यताओ के बाद प्रसाद ने छायावाद पर विचार किया है। उन्होने छायावादी काव्य को स्वानुभूति का प्रकाशन मानकर यह प्रमाणित किया है कि छायावाद ने प्रारभ मे भारतीय साहित्यिकता का अनुसरण किँया। प्रसाद की काव्य विषयक मान्यताये सर्वथा नवीन है।

छायावाद पर विचार करने वाले कवियों मे निराला महत्वपूर्ण हैं। जहॉ प्रसाद ने छायावाद को भारतीय चिन्ताधारा का स्वाभाविक विकास कहकर विवेचित किया था, वहॉ निराला ने उसके सास्कृतिक सदर्भों की तलाश की और उसे भारतीय नवजागरण से जोडा । उन्होने इस काव्य की ऐतिहासिक

अनिवार्यता की ओर सकेत करते हुए इसे एक जागरण माना है। उन्होने यह स्थापना की कि काव्य का एक महान सास्कृतिक आशय होता है। वे काव्य को जीवन सदर्भो से जोडते है। वे कविता की छन्द मुक्तता को कविता के स्वाभाविक विकास के लिए आवश्यक मानते हैं। निराला काव्य की स्वच्छन्दतावादी चेतना को वैदिक साहित्य से जोडकर भी देखते हैं। उन्होने छायावाद को सौन्दर्यवाद के रूप मे प्रतिष्ठित करते हुये उसे भारतीय मनीषा का एक सनातन सस्कार घोषित किया।

सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य सम्बन्धी विचार उनके काव्य–सग्रहो की लम्बी भूमिकाओं मे मिलते हैं। उनके काव्य सम्बन्धी विचारो मे बराबर परिवर्तन आता रहा है। पत ने कविता को परिपूर्ण क्षणो की वाणी कहा है। वे कहते है कि कविता मे भावों की अभिव्यक्ति अन्य कलाओ एव माध्यमो से भिन्न है। भावो का आन्तरिक स्पदन जितनी सूक्ष्मता और स्पष्टता से सपूर्ण सौन्दर्य को ध्वनित करता हुआ कविता मे व्यक्त होता है उतना किसी अन्य कला मे नहीं। उन्होने भाषा को ससार का नादमय चित्र कहकर खडीबोली को काव्य के नये सवेदनो के लिए ब्रजभाषा की अपेक्षा अधिक उपयुक्त घोषित किया। पन्त 'चिदम्बरा' की भूमिका मे छायावाद पर नये सिरे से विचार करते हैं। छायावाद के भावात्मक दृष्टिकोण पर जोर देते हुए वे कहते हैं कि छायावाद की सार्थकता उस युग के विशिष्ट भावात्मक दृष्टिकोण तक ही सीमित है, जो भारतीय जागरण की चेतना का सर्वात्मवाद मूलक कैशोर का शुभारम्भ भर था। पन्त ने छायावाद मे कल्पना तत्व की महत्वपूर्ण स्थिति स्वीकार की। पन्त प्रकृति की भूमि से होकर स्वच्छन्दतावादी जगत् मे आये थे। इसलिए उनके चितन और काव्य दोनो मे मानव–प्रवृत्ति की आपसी निकटता का आग्रह है। पन्त अन्य कवियो की तरह छायावाद की समग्र व्याख्या नहीं कर सके क्योकि उनकी मान्यताओ मे बराबर परिवर्तन आता रहा है। किन्तु उनकी शिल्प सम्बन्धी अवधारणाओ मे विशेष परिवर्तन नही हुआ। 'पल्लव' की भूमिका मे उन्होने काव्य शिल्प पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होने छायावादी कविता के लिए खडीबोली को सर्वाधिक उपयुक्त बताया। उन्होने भाव–भाषा मे मैत्री अथवा ऐक्य की आवश्यकता पर जोर दिया। उनके अनुसार कविता मे शब्द और अर्थ की अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती, वे दोनो भाव की अभिव्यक्ति मे डूब जाते हैं। इसी प्रकार 'पल्लव' की भूमिका

मे पन्त ने छन्द पर विस्तार से चर्चा की है। उनके अनुसार प्रत्येक भाषा के छन्द उसके उच्चारण सगीत के अनुसार होने चाहिए। वे शिल्प जगत मे आजादी की मॉग करते है।

महादेवी वर्मा छायावाद की सर्वाधिक निष्ठावान साधक एव समर्थ विचारक रही है। उन्हे छायावाद को जीवन देने का श्रेय प्रदान किया जाता है। महादेवी ने छायावृत्ति को ही वास्तविक काव्य प्रवृत्ति स्वीकार किया है। उन्होने छायावृत्ति का उद्‌गम कल्पना, वेदना और सहानुभूति से माना है। उन्होने छायावाद शब्द को उपयुक्त माना है। उन्होने छायावाद पर लगे इस आरोप का खण्डन किया कि वह केवल मध्यवर्ग का काव्य है और इसमें सघर्षमय यथार्थ जीवन से पलायन का भाव है। उन्होने छायावाद को दार्शनिक आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया तथा अपनी रहस्योन्मुख चेतना और करुण भावना से उसकी सगति बैठायी। छायावाद के शिल्प पक्ष की चर्चा करते हुये महादेवी वर्मा ने सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति के लिए नये शिल्प विधान की आवश्यकता पर जोर दिया। उनकी काव्य मान्यताये छायावादी काव्य को समझने की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं।

स्वच्छन्दतावाद के मार्क्सवादी विवेचन मे स्वच्छन्दतावाद के प्रगतिशील पक्ष का समर्थन मिलता है। मार्क्सवादी चितको का मानना है कि स्वच्छन्दतावाद के कुछ तत्वो के बिना समाजवादी यथार्थवाद की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक स्वरूप है। छायावादी काव्य के निर्माण की ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों की भूमिका को मार्क्सवाद ने पहले ही स्वीकार कर लिया था। इस स्वीकृति के आलोक मे हिन्दी की प्रगतिवादी समीक्षा ने छायावाद का समर्थन किया तथा उसके मानवतावादी पक्ष की सराहना की, किन्तु उसकी कल्पनाशीलता तथा रोमानी प्रवृत्ति का विरोध किया।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक है– 'प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य'। इसके अन्तर्गत स्वच्छन्दतावाद के प्रारभिक दौर के चार कवियो के काव्य का विवेचन किया गया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की शुरुआत श्रीधर पाठक से होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हे सच्चे स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक माना है। अग्रेजी की रोमांटिक काव्य परम्परा से हिन्दी जगत को परिचित कराने के लिए उन्होने अंग्रेजी कवियो की कृतियो का भावानुवाद प्रस्तुत किया। उनके अनुवाद साहित्य का हिन्दी काव्य

साहित्य पर व्यापक प्रभाव पडा। इसी अनुवाद से हिन्दी मे स्वच्छन्दतावादी तत्वो का प्रवेश हुआ। अग्रेजी काव्य का वस्तु चयन, शब्दो की कमी के साथ मातृभूमि का प्रेम, पदार्थों, मनुष्यों आदि का यथार्थ वर्णन और मानवीयता के लक्षण – इन अनुवादो के माध्यम से हिन्दी साहित्य को मिले। अग्रेजी की रचनाओ विशेषकर देशभक्ति पूर्ण रचनाओ का हिन्दी साहित्य पर बडा प्रभाव पडा। श्रीधर पाठक रीतिकालीन परम्परा को तोडकर स्वच्छन्द परंम्परा को अपनाने वाले एक तरह से क्रान्तिकारी कवि थे। इस रूप मे वह नयी चेतना के प्रतीक थे। उनके अनुवादो ने स्वच्छन्दतावाद का द्वार खोल दिया।

श्रीधर पाठक ने अपनी मौलिक रचनाओ मे प्रकृति निरीक्षण की एक नूतन दृष्टि का परिचय दिया है। उन्होने प्रकृति को आलम्बन रूप मे ग्रहण करके परम्परागत रूढ प्रकार के वर्णनो से आगे बढकर प्राकृतिक छटा का उन्मुक्त चित्रण किया है और प्रकृतिजन्य आनद की मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

श्रीधर पाठक प्राकृतिक सौन्दर्य, स्वदेश प्रेम तथा समाज सुधार की भावनाओ के कवि थे। छायावादी काव्य का पूर्व रूप उनकी रचनाओ मे देखा जा सकता है। प्रकृति वर्णन मे उन्होने अपनी स्वच्छन्द परम्परा का परिचय दिया, जिसे रोमाटिक परम्परा के अतर्गत रखा जा सकता है।

प्रारभिक स्वच्छन्दतावादी कवियो मे अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' का स्थान महत्वपूर्ण है। खडीबोली को काव्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले कवियो मे हरिऔध का नाम आदर से लिया जाता है। कवि के रूप मे उन्हे सर्वाधिक प्रसिद्धि 'प्रिय प्रवास' के कारण मिली। यह खडीबोली मे रचित प्रथम महाकाव्य है। इसमे कवि ने कृष्ण सम्बन्धी चित्रण मे युगानुरूप परिवर्तन करते हुये उनके अलौकिक चरित्र को लौकिक रूप मे चित्रित किया है। हरिऔध ने कृष्ण के रूप मे शक्ति और शील से सम्पन्न, मानवतादर्श का प्रतीक और लोक–कल्याण की भावना से ओत–प्रोत व्यक्तित्व रचा है। राधा का चित्रण लोक सेविका, कृष्ण की अनन्य उपासिका तथा ब्रज की आराध्य देवी के रूप मे किया है। हरिऔध ने राधा को मध्ययुगीन चहारदीवारी से निकालकर आधुनिक युग की सजग और लोकहित से समन्वित नारी के रूप मे गढा है।

प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी कवियो मे रामनरेश त्रिपाठी का नाम महत्वपूर्ण है। श्रीधर पाठक ने जिस स्वच्छन्दतावाद को जन्म दिया था, रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी रचनाओ द्वारा उस परम्परा को विकसित किया और सम्पन्न बनाया। देश–प्रेम और राष्ट्रीयता की अनुभूतियॉ उनकी रचनाओ का मुख्य विषय रही हैं। हिन्दी कविता के मच पर वह राष्ट्रीय भावनाओ के गायक के रूप मे बहुत लोकप्रिय हुए।

रामनरेश त्रिपाठी ने अपने काव्य मे परम्पराओ के निर्वाह की अपेक्षा नवीन प्रवृत्तियो को अपनाने के प्रति अधिक आग्रह दिखाया है। अपने समकालीनो से पृथक्, इतिहास से दूर अपनी कल्पना के बल पर कथावस्तु का निर्माण कर उन्होने अपने समय की गतिविधियो को समेटने का प्रयत्न किया। कल्पना–प्रसूत कथा के कारण कवि को अपनी स्वच्छन्द भावना के प्रकाशन मे मदद मिली। उन्होने अपने काव्यो का प्रारम्भ मगलाचरण से न करके प्रकृति के मगलमय, उल्लासमय वातावरण से किया है। यह वातावरण उनके काव्य मे औत्सुक्य और जिज्ञासा का सृजन करता है। उनके काव्यो मे प्रेम की पीठिका पर राष्ट्रीय चेतना का मार्मिक उद्घाटन किया गया है, जो मानवीय आदर्शों को समेट कर मर्म का स्पर्श करने वाला बन गया है।

रामनरेश त्रिपाठी के बाद मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का विवेचन किया गया है। गुप्त जी मे राष्ट्रीय स्वर प्रधान था। उन्होने अपने समसामयिक, नैतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय आकांक्षाओ को वाणी देकर खडीबोली को युगीन चेतना से जोडा। वे जिस राष्ट्रीय चेतना को लेकर काव्य क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए उसमे पुराने मूल्यो मे अटूट आस्था होने के बावजूद वर्तमान की समस्याओ के प्रति पूर्ण जागरूकता थी।

गुप्त जी की प्रमुख कृतियो का विवेचन भी किया गया है। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'साकेत' महाकाव्य है। 'साकेत' का प्रणयन मूलत· उर्मिला के चरित्र को प्रकाश मे लाने के लिए किया गया था। इसकी कथावस्तु का कोमल ताना–बाना प्रधान पात्र उर्मिला को सम्बद्ध करते हुए और सभी घटनाओ को साकेत मे केन्द्रित करते हुए बुना गया है। 'राम का चरित' इस प्रबध काव्य का आधार फलक है। इसकी नव्यता है कि यह राम और सीता के स्थान पर परम्परा से हटकर उर्मिला और

लक्ष्मण की प्रेम कथा है। नारी के चरित्र की महान व्याख्या करना 'साकेत' का लक्ष्य रहा है। इस काव्य मे मैथिलीशरण गुप्त की खडीबोली काव्योपयुक्तता एव लोकप्रियता के सोपान पर चढती हुई दिखाई देती है। 'साकेत' खडीबोली का एक समर्थ और मौलिक महाकाव्य है। खडीबोली को काव्यभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित करने के पीछे गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना थी। उनकी कविता का मूल स्वर राष्ट्रीय एव सास्कृतिक है। उन्होंने प्राचीन भारत का गौरवगान अत्यन्त ओजस्वी वाणी मे किया और उसे आधुनिक सदर्भो से जोडा। उनके काव्य मे मानवता की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है।

पंचम अध्याय का शीर्षक है – 'छायावादी काव्य'। यह काव्य धारा हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की सर्वोत्तम निष्पत्ति है। छायावाद मुख्यत जयशकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा के काव्यो का मुख्य स्वर रहा है।

छायावाद के प्रमुख कवियों मे पहला नाम जयशकर प्रसाद का आता है। प्रस्तुत अध्याय मे उनकी काव्य रचनाओ पर दृष्टि डालते हुए उनकी काव्यगत विशिष्टताओ का विवेचन किया गया है। प्रसाद ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत 'कलाधर' उपनाम से ब्रजभाषा में कविता लिखकर की। प्रसाद को अपने जीवन के आरभ मे एक वैभवशाली सामन्ती परिवेश मिला था। इन्ही सस्कारो के कारण उनकी भाषा मे सस्कृत बहुलता आयी। प्रसाद का पारिवारिक परिवेश ऐसा था जिसमे उन्हे विद्वानो एव कलाकारो के सपर्क मे आने का अवसर मिला। प्रसाद को विद्यालय में विधिवत शिक्षा ग्रहण करने का कम अवसर मिल पाया था। इस अभाव की पूर्ति उन्होने विद्वानो एव कलाकारो के सानिध्य मे रहकर की। काव्य के सदर्भ मे प्रसाद ने अपनी आरभिक कृतियो मे पुराणो तथा अति प्राचीन कथाओ से सामग्री प्राप्त की। उन्होने क्रमश. अपने अध्ययन क्रम का विकास किया और पुराणो के मिथकीय ससार से आगे बढकर इतिहास की जटिलताओ में प्रवेश किया। उस समय देश मे राष्ट्रीय भावना तीव्रतर होती जा रही थी। बुद्धिजीवी वर्ग अपने इतिहास को एक प्रकार का पुनर्जीवन प्रदान कर रहा था। भारतीय मनीषा के सक्रिय योगदान के फलस्वरूप उन्नीसवी शती में नवजागरण आया। प्राचीन परम्पराओं को नये सिरे से देखने की चेष्टा की गयी। प्रसाद का नाट्य साहित्य इसका उदाहरण है।

प्रसाद की राष्ट्रीयता सास्कृतिक थी। वह भारत को आर्यो का आदि देश तथा जन्म भूमि घोषित करते है।

ब्रजभाषा में काव्य–रचना की शुरुआत करने वाले प्रसाद ने शीघ्र ही खडीबोली को अपना लिया। उन्होने ब्रजभाषा मे अभिव्यक्ति की नयी सभावनाओ को तलाशकर उसका खडीबोली को काव्यभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित करने मे उपयोग किया। प्रसाद अपने कवि व्यक्तित्व को बराबर विकसित करते चलते हैं। यह विकास उनकी रचनाओ के क्रम मे देखा जा सकता है। 'कानन कुसुम' की कविताओ मे रोमानी वातावरण के निर्माण मे प्रसाद प्रकृति का उपयोग करके अपनी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति का सकेत करते है। फिर भी इन रचनाओ मे उनकी स्वच्छन्दवादिता पूरी तरह खुलकर नहीं आ पाती। 'कानन कुसुम' तक आकर वे खडीबोली का आधार ग्रहण कर लेते हैं। खडीबोली का आधार ग्रहण कर लेने के कारण ये कविताये सहज ही परम्परामुक्त हैं। 'झरना' सग्रह तक आते–आते कवि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का स्पष्ट उद्घोष कर देता है। यहॉ सौन्दर्य और प्रेम की सम्मिलित अनुभूतियो से निर्मित भाव जगत मे कवि की वैयक्तिक अनुभूतियॉ गीति के रूप मे अभिव्यक्त होती हैं। 'झरना' छायावादी काव्य के आगमन की सूचना देता है।

प्रसाद का अगली रचना 'ऑसू' स्वच्छन्दतावादी काव्य के इतिहास मे एक नये मोड की सूचना देती है। यहॉ आकर प्रसाद अपने कवि व्यक्तित्व का विस्तार करते है। यह उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का प्रकाशन है। 'ऑसू' मे कवि अपनी नितान्त निजी और वैयक्तिक प्रेमानुभूति को साहस के साथ अभिव्यक्त करता है। 'ऑसू' यह सकेत करता है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य वैयक्तिक अनुभूतियो का सक्षम प्रयोग करता हुआ जीवन की अन्य दिशाओ का समावेश भी स्वय मे कर सकता है। यहॉ प्रसाद स्वय को पहचानते हैं। 'ऑसू' मे मानवीय भावनाओ की समर्थ अभिव्यक्ति है।

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का चरम विकास कर प्रसाद अपनी प्रौढतम कृति 'कामायनी' का सृजन करते है, जिसमे उनकी सारी साधना और चिन्तन का निचोड है। वर्णन प्रधान महाकाव्यो की परम्परा से अलग पथ निर्मित करते हुए प्रसाद मानव मनोवेगो के विश्लेषण को आधार बनाते हैं। 'कामायनी' के बहुत से सर्गों के नाम मानव मनोभावो पर आधारित हैं। अन्तर्जगत के चित्रण मे इस महाकाव्य ने

काव्य–जगत को नई दिशा दी है। पात्रो की उदात्तता की दृष्टि से कामायनी उच्चकोटि की है। सृष्टि के आदि युग के चित्रण के बावजूद कामायनी के समाधान सार्वकालिक और सार्वदेशिक हैं। महाकाव्यो मे उद्देश्य की महानता सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। इस दृष्टि से कामायनी विश्व साहित्य मे अप्रतिम है। वैसे तो महान उद्देश्य सभी महाकाव्यो मे होते हैं किन्तु वे प्राय विशिष्ट धर्म, विशिष्ट वर्ग या विशिष्ट सस्कृति के लोगो के लिए होते हैं, किन्तु प्रसाद ने सारी सीमाओ को लाघकर मानव मात्र के लिए सदेश दिया है और वह सदेश भी अन्धविश्वास पूर्ण, धर्म, पुराण या इस तरह की किसी अन्य भित्ति पर आधारित न होकर विज्ञान और मनोविज्ञान से अनुमोदित है। आज मनुष्य बौद्धिक और भौतिक अतिरेक से पीडित और स्वार्थ की कारा मे बन्द होने के कारण बडी असहायावस्था मे तथा अशान्त है। प्रसाद इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सामजस्य एव बुद्धि एव हृदय के समन्वय द्वारा प्रेम के 'स्व' की परिधि विस्तृत करके 'स्व' और 'पर' के भेद मिटाकर हर प्रकार की समरसता स्थापित करने का संदेश देते हैं। इसी पथ पर चलकर शाश्वत मानव मूल्यो की प्रतिष्ठा हो सकेगी और टूटा तथा अस्वस्थ मानव–जीवन स्वस्थ, पूर्ण और शान्त हो सकेगा।

छायावाद के दूसरे कवि हैं– सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। अपने विद्रोही स्वर और असमझौतावादी रुख के कारण निराला का छायावादी कवियो मे एक विशिष्ट स्थान है। अपने कृतित्व के आरंभ मे उन्हे प्रकाशको, सम्पादको एव आलोचको के विरोध का सामना करना पडा। निराला को आलोचको से अधिक उनके पाठको ने स्वीकारा।

निराला के जीवन और उनकी रचना मे अन्तर्विरोध कम है। उन्होने जैसा जीवन जिया, वैसा ही लिखा भी। फिर भी अपनी वैयक्तिक अनुभूतियो को उन्होने अपनी रचना मे एक सीमा से अधिक प्रक्षेपित नहीं होने दिया। जीवन के उतार चढावो में वे वृहत्तर समाज से जुडने की सामर्थ्य बढा लेते थे, जिस कारण अन्तर्मुखी होने से बच जाते थे। उनका जीवन सघर्ष भरा था, जिसे उन्होने मौन भाव से स्वीकारा था। वे अपने जीवन के अतिम दिनों तक सृजनरत रहे। इस बीच भारतीय इतिहास ने कई आरोह–अवरोह देखे और आजादी भी आयी। बहुत से लेखकों ने सुविधा की नयी स्थितियो से समझौता कर लिया, पर निराला की सघर्ष गाथा स्वतत्रता प्राप्ति के बाद भी समाप्त नही हुई। उनके जीवन में

कुछ ऐसी घटनाये घटी, जिन्होने उन्हे कई बार तोडकर रख दिया, फिर भी बार–बार वे उनसे उबर जाते थे। भीतर का सकल्प, एक अदम्य जिजीविषा, जीवन से निरन्तर साक्षात्कार, वेदान्ती दृष्टि – इन सबने मिलकर उनकी लम्बी सृजन यात्रा के पाथेय दिया। उनकी आन्तरिक पीडाएँ कई बार कविताओ मे झाँकती है, पर उनके काव्य मे ऐसे क्षण बहुत कम मिलेगे जब कोई विषम परिस्थिति उन्हे पूरी तरह दबोच दे। उन्होने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियो को अपने रचनाकार पर कभी हावी नही होने दिया। हिन्दी साहित्य के स्वच्छन्दतावादी कवियो मे अपनी वैयक्तिक अनुभूतियो से ऊपर उठने की शक्ति सबसे अधिक निराला मे है।

निराला आधुनिक हिन्दी काव्य मे वसन्त के अग्रदूत है। उनका काव्य स्वच्छन्दतावाद को अर्थदीप्ति देता है, उसमे नये आयाम विकसित करता है और वैयक्तिक प्रतिक्रियाओ से लेकर प्रगति–प्रयोग तक जाता है। वे मूलत. स्वच्छन्दतावादी व्यक्तित्व के रचनाकार है, पर इस रोमानी आन्दोलन के जितने पक्ष उनकी रचनाओ मे उजागर हुये हैं उतने किसी मे नही प्राप्त होते। उन्होने स्वच्छन्दतावादी काव्य को विस्तृत आयाम दिये। इसलिए हिन्दी प्रगतिवाद उनमे अपना प्रस्थान बिन्दु स्वीकार करता है और नया हिन्दी काव्य उनमे अपना पूर्वाभास देखता है। निराला की कृतियो मे भारतीय नवजागरण पूरी सर्जनात्मकता मे प्रतिफलित है। कई भूमियो को स्पर्श करती हुई उनकी रचनाये वैविध्यपूर्ण है।

इस अध्याय मे निराला के काव्य संकलनो का भी विवेचन किया गया है। उनके प्रथम काव्य सकलन 'परिमल' से लेकर उनके काव्य 'तुलसीदास' तक के बीच की स्वच्छन्दतावादी भावभूमि वाली कविताओ को विवेचन का आधार बनाया गया है। 'परिमल' जहाँ निराला के कवि व्यक्तित्व की सभावनाओ के द्वार खोलती है वहीं 'सरोज स्मृति', 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसी कविताएँ उन्हे महाकवि की कोटि मे रखती हैं। निराला ने एक लम्बी और सार्थक काव्य यात्रा तय की। उनके काव्य के तेवर भी बदलते रहे हैं। उनके काव्य मे हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की अनेक सभावनाओ के प्रमाण मिलते हैं।

छायावाद के अगले कवि के रूप मे सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य का विवेचन किया गया है। अपनी समूची रचना सामर्थ्य के साथ वह एक तरफ छायावादी काव्यान्दोलन के प्रवर्तन मे अपना सहयोग देते है, दूसरी तरफ अपनी रचना धर्मिता के वैशिष्ट्य के साथ कलात्मक तथा भावात्मक दोनो दृष्टियो से छायावाद की प्रतिष्ठा मे अपना योगदान सुनिश्चित करते हैं। एक लम्बी काव्य यात्रा तय करने वाले पन्त को अनेक काव्यान्दोलनो को देखने का अवसर मिला है। अपनी प्रारभिक कविताओ के आधार पर वे प्रकृति के कवि कहलाये। प्रकृति का काव्यात्मक सश्लेष उनके काव्य मे रचनात्मक उत्कर्ष प्राप्त करता है। शुरू–शुरू मे पन्त प्रकृति के प्रति विस्मय विमुग्ध थे, पर धीरे–धीरे कवि के वैयक्तिक सवेदन उसमे सम्मिलित होते गये और एक रोमानी जगत निर्मित हुआ। पन्त की स्वच्छन्दतावादी चेतना की बनावट मे प्रकृति के प्रति उनकी बदलती प्रतिक्रियाओ का भी प्रभाव रहा है। जो प्रकृति आरम्भ मे पन्त के सम्मुख अपने स्वतन्त्र रूप मे उपस्थित थी, उसे उन्होने आगे चलकर प्रिया, सखी, सगिनि आदि के रूप मे देखा और यह उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का प्रकाशन कहा जायेगा। प्रकृति और मानवीय भावनाओं के सवाद की प्रक्रिया हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति मानी जाती है और इस दिशा मे पन्त का प्रदेय महत्वपूर्ण है।

प्रथम प्रकाशित कृति 'उच्छ्वास' से लेकर 'लोकायतन' तक की लम्बी काव्य यात्रा मे पन्त की रचनाओ मे कई बदलाव आये हैं। इसका कारण उनकी बदलती हुई विचारधारा है। अपने काव्य सकलनो की लम्बी भूमिकाओ मे वे क्रमश अपने बदलाव के औचित्य को प्रमाणित करते चलते है। इस तरह पन्त के काव्य के कई चरण आते हैं। 'वीणा' मे स्वच्छन्दतावादी कविता अपनी मुख्य प्रवृत्तियो के साथ सम्बोध–गीतो के रूप मे व्यक्त होती है। यहॉ कवि प्रकृति और मानव जीवन के सम्बन्ध का प्रश्न भी उठाता है। 'ग्रथि' पन्त की रोमाटिक वृत्तियो को एक प्रेम कथा के माध्यम से प्रकाश मे ले आती है। 'पल्लव' पन्त के काव्य का प्रौढ चरण है। इस सग्रह की भूमिका हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का घोषणा पत्र कही जाती है। स्वच्छन्दतावादी काव्य की नयी भूमि का परिचय पत 'पल्लव' की भूमिका मे देते हैं तथा अपनी रचनाओ मे इसे प्रमाणित भी करते हैं। किन्तु इसी सग्रह की 'परिवर्तन' जैसी कविताये पन्त के प्रकृति और रोमांस जगत से बाहर निकलकर वृहत्तर सदर्भों से जुड़ने की सूचना भी

देती है। 'गुजन' तक आते–आते पन्त की निजी अनुभूतियाँ और निजी जीवन प्रसंग उनकी कविताओ मे अधिक स्पष्ट होने लगते हैं। पन्त की रोमानी दुनिया का अधिकाश कल्पना द्वारा निर्मित होता है। उनकी समृद्ध कल्पना और प्रकृति को पास से देखी गयी अनुभूति ने उनके जीवन प्रसगो का मनोनुकूल प्रयोग करने मे सहायता दी। 'युगान्त' की कविताए नये मोड की सूचक हैं। यहाँ पन्त कल्पना लोक से बाहर निकलकर यथार्थ की कठोर भूमि पर आते हैं। 'युगान्त' की तरह ही 'युगवाणी' मे वे युग की सच्चाइयो से मुलाकात करते है। यहाँ से स्वच्छन्दतावादी कविता एक नयी दिशा की ओर मुडने का सकेत करती है।

छायावाद के कवि चतुष्टय की अतिम कडी के रूप मे महादेवी वर्मा के काव्य का विवेचन किया गया है। छायावाद के अन्य कवियो से भिन्न उनकी एक विशिष्टता है– वह अग्रेजी और बगला के रोमाटिक और रहस्यवादी काव्य से प्रभावित होती है। वह छायावाद के अन्तर्गत रहस्यवाद की कवयित्री मानी जाती है। वह रहस्यवाद को छायावाद का ही दूसरा चरण मानती है। इसका प्रथम चरण प्रकृति का वैविध्य और उसके सौन्दर्य का मानवीकरण है। जब स्वच्छन्दतावादी कवि प्रकृति–सौन्दर्य के प्रति समर्पित हुआ, तब रहस्यवाद की शुरुआत हुई। महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य से रहस्यवाद को जोडकर उसे आधुनिक रूप दिया और मध्य युगीन रहस्यवादी प्रवृत्तियो से उसके पृथक् व्यक्तित्व की घोषणा की। उन्होने आधुनिक रहस्यवाद को धर्म निरपेक्ष प्रमाणित किया और आत्म समर्पण को उसका प्रस्थान बिन्दु घोषित किया, अलौकिक तत्वो के होते हुए उनमे अनुभूति की तीव्रता को एक आवश्यक उपादान के रूप मे स्वीकार किया।

महादेवी वर्मा का समस्त काव्य वेदनामय है। यह वेदना लौकिक जगत से भिन्न आध्यात्मिक जगत की वेदना है, जो उसी के लिए सहज सवेद्य हो सकती है जिसने उस अनुभूति क्षेत्र मे प्रवेश किया हो। वैसे महादेवी इस वेदना को उस दुख की सज्ञा देती हैं जो सारे ससार को एक सूत्र में बॉधे रखने की क्षमता रखता है। इसी आध्यात्मिक वेदना की दिशा मे प्रथम काव्य कृति 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक महादेवी वर्मा के काव्य की सूक्ष्म एव विवृत भवानुभूतियो का विकास और प्रसार दिखाई देता है।

षष्टम अध्याय का शीर्षक है – 'उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य'। इसके अन्तर्गत प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता के दौर मे अन्त सलिला की भॉति प्रवाहित स्वच्छन्दतावादी काव्य का विवेचन किया गया है। इस समय के रोमाटिक साहित्य मे कथ्य और शिल्प के दृष्टिकोण मे अन्तर आ जाता है। माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवशराय 'बच्चन', रामधारी सिह 'दिनकर' तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्यो को आधार बनाकर उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य का विवेचन किया गया है।

सर्वप्रथम माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य का विवेचन किया गया है। उनकी पूरी काव्य–चेतना हमारे राष्ट्रीय इतिहास के उस दौर मे सक्रिय हुई थी, जब अपने देश की पराधीनता की प्रतीति के कारण क्रान्तिशील राष्ट्रीयता प्रबुद्ध, ईमानदार और संवेदनशील भारतीय का सबसे मूल्यवान और सार्थक गुण था। सत्ता से असहमति अब विरोध और विद्रोह का रूप ले चुकी थी। तत्कालीन साहित्य की महत्वपूर्ण प्रेरणा विद्रोही राष्ट्रीयता हो गयी थी। माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने लिये 'एक भारतीय आत्मा' उपनाम चुना। वे अपने समय के सच्चे भारतीय नागरिक एव सच्चे साहित्यकार दोनो की सच्ची भूमिका मे उतरते हैं। उन्होने कविता या कारा के स्थान पर कविता और कारा दोनो को स्वीकार किया। कविता लिखकर वे कैदी बने और कैदी बनकर कवितायें लिखीं।

स्वच्छन्दतावाद के कई कोण माखनलाल जी की रचनाओ मे उभरते हैं। उनकी कवितायें राष्ट्र के प्रति एक आतुरता भरी भावुकता से ओत–प्रोत हैं, जिसकी बनावट मे एक भारतीय आत्मा की रोमानी प्रवृत्ति अपनी भूमिका अदा करती है। उनकी कवितायें केवल देश प्रेम के भावोच्छ्वासो से सन्तुष्ट नहीं होती, वहाँ राष्ट्रीय चेतना का एक सपूर्ण बिम्ब मौजूद है। कवि राष्ट्र को उसकी समग्रता मे देखता है और उसके चित्र बनाता है। वह अपने व्यक्तित्व के साथ वहाँ उपस्थित है, वक्तव्यो के साथ नहीं।

माखनलाल जी ने स्वच्छन्दतावाद के लगभग समानान्तर यात्रा की, इसलिए उनकी चेतना मे रोमानी तत्व सहज भाव से आ गये, थोडा वे राष्ट्रीय चेतना की ओर, थोडा आध्यात्मिकता की ओर, पर उनमे रोमानी प्रवृत्तियाँ बनी रही। सयोग से वे इतिहास के उस मोड पर अपनी रचना लेकर उपस्थित हुये जब स्वच्छन्दतावादी काव्य अपने सर्वोत्तम से गुजर रहा था, इसलिए उसकी ताजगी से उनका परिचय हुआ। उन्होंने गीतों का माध्यम चुना पर कोशिश यह थी कि वे एक नया मुहावरा अपनायें।

उन्होने प्रतीको की एक नयी दुनिया तलाशने मे मेहनत की और भाषा की सहजता को पकडा। भाषा का नया मुहावरा तलाश कर माखनलाल जी ने स्वच्छन्दतावादी काव्य के कुछ तत्व अकाल कवलित होने से बचा लिया। उनका काव्य स्वच्छन्दतावाद से अपनी यात्रा आरभ करके उसके भीतर नयी सभावनाये जगाता है।

अगले कवि के रूप मे हरिवशराय 'बच्चन' के काव्य का विवेचन किया गया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की नयी भगिमा और नये रुपायन की अभिव्यक्ति जिन कवियो के काव्य मे हुई है उनमे बच्चन का स्थान शीर्ष पर है। बच्चन का काव्य जहॉ प्रगीतों की एक समृद्ध परम्परा का सूत्रपात करता है, वहॉ दूसरी ओर वह कवि की काव्यानुभूतियो के तारतम्यमूलक विकास का निरुपण भी करता है। बच्चन के काव्य का आरभ आध्यात्मिकता की प्रतिक्रिया के रूप मे लौकिकता के गायक के रूप मे होता है। उन्होने अपने युग मे हतप्राय और जागतिक सघर्ष के चक्र मे पिसती हुई युवा भावनाओ के स्वरो को सहेजा, युवा मन की इन्द्रजालिक मायानगरी को पहचाना और उसके अवचेतन मे दबी हुई अतृप्त कामनाओ का स्पर्श करते हुये उन्हें मानसिक परितोष प्रदान करने का उपक्रम किया। उनका काव्य अतृप्ति के बोध और उसकी मनोमयी परितुष्टि का काव्य है। उनका काव्य युवाओ मे बहुत लोकप्रिय हुआ। उनके काव्य की लोकप्रियता का रहस्य यह है कि उन्होने अपने ही मन की अनुभूतियो को व्यापक जन–मानस की अनुभूतियो के रूप मे रूपान्तरित करने का प्रयास किया। इसको भावना का उदात्तीकरण भी कहा जा सकता है। उदात्तीकरण की प्रक्रिया सरल नही होती, अपितु कवि को उसके कुशल सम्पादन के लिए अनेकानेक अग्नि परीक्षाओ से गुजरना पडता है। सबसे पहले उसे व्यक्ति–मन की सकीर्णता का परिहार करते हुये इतनी व्यापकता देनी होती है, जिसके अन्तराल मे युगमानस की भावनायें खुलकर खेलने का विशाल प्रागण प्राप्त कर सके। दूसरे स्थान पर उसके सामने अनुभूति के रूपायन की समस्या का सामना करना पडता है। तीसरे स्तर पर कवि का दायित्व अपेक्षाकृत अधिक बढ जाता है। यह अभिव्यक्ति का स्तर है। व्यक्ति–मन की अनुभूतियॉ प्रकृत रूप मे अनिवार्यत जटिल होती है और उसकी यथावत अभिव्यक्ति का आग्रह जटिल कवियो के एक दल के निर्माण मे प्रतिफलित हो सकता है, जो अभिव्यक्ति मे अनुभूति की जटिलता को अक्षत बनाये रखना चाहते हैं। परन्तु बच्चन

जटिल नहीं ऋजु अभिव्यक्ति के आकाक्षी थे। वे व्यक्ति की अनुभूति को सामूहिकता की पीठिका पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इसलिए उन्होने अपनी भाव भगिमा को ऋजु और सरल बनाया, जिससे वह लोक मानस का स्पर्श कर सके।

बच्चन के काव्य जीवन मे अनेक मोड आये और बडी सहजता से वे अपनी अनुभूति को काव्य रूप देते हैं। उनकी काव्य प्रतिभा के क्रमिक विकास के परिप्रेक्ष्य मे उनकी काव्य कृतियो की क्रमिक विवेचना भी प्रस्तुत अध्याय मे की गयी है।

अगले कवि के रूप मे रामधारी सिह 'दिनकर' का अध्ययन किया गया है। उत्तर स्वच्छन्दतावादी कवियो मे रामधारी सिह 'दिनकर' का विशिष्ट स्थान है। छायावाद की उपलब्धियॉ उन्हे विरासत मे मिली, पर उनके काव्योत्कर्ष का उषकाल छायावाद की रगभरी सध्या का समय था। दिनकर मे रोमास और राष्ट्रीय चेतना की सम्मिलित प्रवृत्तियॉ मिलती है, और सच्चाई तो यह है कि एक को स्वस्थ भूमि देकर और दूसरे को सास्कृतिक दिशा देकर दोनो के सम्मिलन से उन्होने अपनी काव्य यात्रा पूरी की। एक ओर जहॉ 'उर्वशी' मे उनकी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति आदर्शीकृत होती है, वही 'कुरुक्षेत्र' मे सास्कृतिक चेतना मौजूद है। उनकी आरभिक कविताओ मे श्रृगार और हुकार की सम्मिलित भूमि देखी जा सकती है। वह कभी 'रेशमी नगर' जैसी कविताये लिखते है जिसमे दिल्ली के नये भोग–विलास का जिक्र है और कभी आक्रोशी मुद्रा मे आने पर 'परशुराम की प्रतीक्षा'।

दिनकर की प्रारभिक रचनाये अधिकतर भावावेश प्रेरित है। यदि रोमाटिक काव्य के विषय मे यह मान्यता स्वीकार कर ली जाय कि वह सम्भावनाओ को देखकर नहीं चलता, उसमे वाछनीय–अवाछनीय, सम्भावना–असम्भावना का प्रश्न नहीं उठता तो यही कहा जा सकता है कि दिनकर की प्रारभिक दृष्टि रोमाटिक कवि की ही रही है। दिनकर की राष्ट्रीय चेतना प्रारभ मे अतीत के प्रति मोह और वेदना के रूप मे अभिव्यक्त हुई है। अतीत की ओर आसक्ति से देखने की प्रवृत्ति को दिनकर ने छायावादी सस्कार माना है। आगे चलकर उनकी राष्ट्रीय चेतना के मूल्यो का स्थिरीकरण होता है। वे अतीत को छोडकर वर्तमान से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय जनता के विकट सघात से उद्वेलित होकर दिनकर की काव्य–चेतना अग्नि की चिनगारियो से

स्वप्न सजाने को आगे बढी, वह स्वप्न जिसमे सिन्धु का गर्जन और प्रलय की हुकार थी, जहाँ मौन हाहाकार विश्व को हिला देने को व्यग्र हो रहा था।

दिनकर की काव्य–प्रेरणा मे वैयक्तिक और समष्टिगत अनेक विरोधी और अविरोधी तत्व साथ–साथ विद्यमान रहे हैं। क्रान्तिकारी और राष्ट्रीय कवि के पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के बाद भी वे वैयक्तिक भावनाओ को सार्वजनिक रूप से जनता के समक्ष रखते हैं। राग–विराग, कर्मवाद, पलायनवाद एव आस्था–अनास्था का द्वन्द्व भी उनकी रचनाओ में चित्रित है, जिसमे वे अपने जीवन पर किये गये प्रयोगो और उसके फलस्वरूप प्राप्त अनुभूतियो को अभिव्यक्त करते हैं।

दिनकर के बाद बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य का अध्ययन किया गया है। नवीन की कृतियो का प्रकाशन देर से होने के कारण उनका उचित मूल्याकन नहीं हो सका। नवीन जी ने सन् 1917 ई0 से जब लिखना प्रारभ किया था, वह समय छायावाद का उन्मेष काल था और जब सन् 1936 ई0 मे उनका प्रथम काव्य सग्रह प्रकाशित हुआ, छायावादी कविता का अवसान हो रहा था। इतिहास के क्रम मे उनकी रचनाये पीछे छूट गयी।

नवीन जी मे एक राजनीतिक और एक साहित्यिक दोनो का व्यक्तित्व समाहित है। उनका जीवन सघर्षमय था। नयी मान्यताओ की प्राय प्रतिष्ठा के लिए उन्होने सर्वत्र सघर्ष किया। उनके साहित्य मे उनका युग और जीवन गुंजायमान है। वे सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। अपने काव्य–सग्रहो के आरभ मे उन्होने प्राय· लम्बी भूमिकाये लिखी है। काव्य और कला पर नवीन जी की विचारधारा से अवगत होने के लिए ये भूमिकाए अत्यन्त उपादेय तथा महत्वपूर्ण हैं। राष्ट्रीयता, श्रृगार एवं प्रेम, अध्यात्म, सामाजिक सुधार आदि उनकी कविताओ के मुख्य विषय है। उनका राष्ट्रीय काव्य इस अर्थ मे महत्वपूर्ण है कि उन्होने राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं को न सिर्फ प्रत्यक्ष देखा है बल्कि उसमे सक्रिय भूमिका निभाई है। उनकी राष्ट्रीयता मे सांस्कृतिक पक्ष प्रबल है। प्राचीन गौरव तथा सस्कृति के प्रति उनके मन मे आदर भाव था। उसे वे सास्कृतिक राष्ट्रवाद से जोडकर देखते थे। अतीत गौरव के साथ ही उन्होंने देश की वर्तमान दशा को भी अपने काव्य का विषय बनाया। अतीत जहाँ मार्ग दर्शन तथा ज्योति लहर प्रदान करता है वहाँ वर्तमान चिन्ता, आक्रोश तथा निदान की ओर

उन्मुख करता है। उनकी वर्तमान दशा सम्बन्धी रचनाओ मे वेग और तेजस्विता के दर्शन होते है। उनका ध्यान हमारी राजनीतिक स्थिति के साथ–साथ सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियो की ओर भी गया। वैभव तथा दर्पपूर्ण विगत भारत की वर्तमान दुर्गति ने कवि के मानस को उद्वेलित कर दिया था। इन कविताओ ने छायावाद के युग मे नूतन भावधारा का प्रणयन किया। स्वाधीन भारत मे आकर नवीन जी की राष्ट्रीय भावना सास्कृतिक क्षेत्रो मे अपना प्रसार करती है। उनकी प्रसिद्धि का मूल आधार उनका राष्ट्रीय सास्कृतिक काव्य है।

नवीन जी की दार्शनिक और प्रेम कविताओ का भी विवेचन किया गया है। उनका समग्र प्रेम काव्य अपने आलम्बन के सम्बोधन, स्मरण एव विरह से आपूर्ण है। कवि ने पग–पग पर प्रेम के आलम्बन के प्रति अपनी सरल, निष्कपट, मार्मिक और कारुणिक प्रणयाभिव्यक्ति की है। नवीन जी के काव्य की परिणति उनकी आध्यात्मिक रचनाओ मे हुई है। उनका दार्शनिक काव्य उनके जीवन तथा अध्ययन की उपज है। उनका दार्शनिक व्यक्तित्व आत्मा के अस्तित्व की गुत्थी सुलझाने के लिये प्रयत्नशील है।

इस प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, बच्चन तथा नवीन जैसे कवि स्वच्छन्दतावाद को प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता के दौर मे भी जीवित रखते है। किन्तु अपने उत्कर्ष तक पहुँचकर स्वच्छन्दतावाद मे उतार आना स्वाभाविक था। देश की परिस्थितियाँ स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के अनुकूल नही रह गयी थी। फिर भी स्वच्छन्दतावादी कवि अपने समय की चेतना से जुडने की कोशिश करते है और इस आन्दोलन को लम्बे समय तक जीवित रखने मे सफल रहे। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के अन्त मे 'समापन' शीर्षक के अन्तर्गत इसका विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के माध्यम से हिन्दी कविता के इस सबसे समर्थ आन्दोलन को नये सिरे से जॉचने–परखने का प्रयास किया गया है। स्वच्छन्दतावादी कवियो की एक लम्बी श्रृखला है तथा स्वच्छन्दतावाद का विपुल एवं समृद्ध साहित्य है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में बारह स्वच्छन्दतावादी कवियो के काव्य का विवेचन किया गया है। इनके काव्यो मे स्वच्छन्दतावाद का स्पष्ट चित्र उभरता है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे स्वच्छन्दतावादी काव्य–चिन्तकों के विचार तथा उनके मतो में आपसी सहमति और

असहमति के स्वरो के विवेचन का प्रयास किया गया है। इन सहमति और असहमति के दो छोरो के बीच कुछ नये स्थलो की तरफ भी सकेत किया गया है, जो वाद विवाद सवाद की प्रक्रिया को आगे बढाने के लिए अनिवार्य है। इससे यदि स्वच्छन्दतावादी काव्य चितन मे कुछ नये आयाम जुड सके तो शोधकर्ता का श्रम सार्थक होगा। इसी प्रत्याशा मे यह शोध–प्रबन्ध विद्वज्जनो के समक्ष प्रस्तुत है।

राकेश सिंह
राकेश सिह

अध्याय–1

अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का परिचय

अध्याय–1

अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का परिचय

रोमांटिसिज्म–शब्द: उद्भव और विकास

हिन्दी मे 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द अग्रेजी के 'रोमाटिसिज्म' शब्द के पर्यायवाची के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। अत. हिन्दी के स्वच्छन्दतावाद को समझने के लिए अग्रेजी के रोमाटिसिज्म शब्द के उद्भव एव विकास को समझना आवश्यक है।

रोमाटिक (Romantic) तथा रोमांटिसिज्म (Romanticism) शब्दो का उद्भव मूल शब्द रोमास (Romance) से हुआ है। प्राचीन रोमन साम्राज्य मे राज्य की सरकारी भाषा को लिग्वा लैटिना (Lingua Latina) कहा जाता था। रोमन साम्राज्य के जनपदो मे बोली जाने वाली बोली को लिग्वा रोमानिका (Lingua Romanica) के नाम से जाना जाता था। इसी लिग्वा रोमानिका शब्द से रोमास (Romance) अथवा रोमाटिक (Romantic) शब्दो का उद्भव माना जाता है।

भाषा विज्ञान के विशेषज्ञ डब्ल्यू0 डी0 एलॉक (W.D Elock) ने प्रतिपादित किया है कि ईसा की तीसरी शताब्दी से पूर्व रोमास (Romance) शब्द रोम मे रहने वाले लोगो के लिए प्रयुक्त किया जाता था। यह शब्द बाद मे रोमानिया (Romania) शब्द के रूप मे विकसित हुआ। धीरे–धीरे यह रोमन साम्राज्य के बाहर भी फैल गया। यह रोमन साम्राज्य के बाहर प्रयुक्त होने वाली एक भाषा बारबेरी (Barberi) के विपरीत एक भाषा विशेष के रूप मे प्रयुक्त होने लगा। धीरे–धीरे बारबेरी को जर्मन प्रान्त मे रहने वाले कबीलाई लोर्गों की भाषा समझा जाने लगा। लैटिन को अपने ढग से बोलने वालो को रेमानी (Romani) कहा गया। यही शब्द बाद में रोमानिस (Romanis) के रूप मे प्रचलन मे आया। धीर–धीरे यह शब्द तत्कालीन लोकप्रिय लैटिन अपभ्रश (Popular Latin Varnacular) भाषा के पर्यायवाची के रूप मे प्रयोग किया जाने लगा। उच्चारण करने मे भिन्नता के कारण यह शब्द प्राचीन फ्रेच भाषा मे रोमाज (Romanz) के रूप में प्रचलित हुआ। यही प्राचीन फ्रेच भाषा जब साहित्य की भाषा बनी , तो यह शब्द

भाषा के लिए प्रयोग किये जाने वाले सकुचित अर्थ को छोडकर रोमांस भाषा मे लिखी जाने वाली सभी रचनाओ के लिए प्रचलित हो गया और इसे साहित्य के प्रकार–विशेष के रूप मे मान्यता मिल गयी।[1]

रोमास शब्द के सम्बन्ध मे एफ0 एल0 लुकास ने जो खोज की है, वह इस प्रकार है– 'फ्रेच भाषा मे रोमास शब्द इस प्रकार के साहित्य का द्योतक था जो मध्यकाल के वीरो के विलक्षण, साहसपूर्ण कार्यो की कथा को गद्य या पद्य में रूपायित किया करता था। किन्तु बाद मे गद्य का अत्यधिक प्रचार होने के कारण वह मात्र गद्य कथा रह गया।'[2]

वेबेस्टर्स की 'डिक्शनरी ऑफ इग्लिश लैंग्वेज' मे रोमास के अर्थ पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। वहॉ रोमांस शब्द की व्याख्या इस प्रकार है– 'रोमास मूलत प्रारम्भिक फ्रेच अथवा प्रोवेन्सल आदि रोमाटिक बोलियों मे से किसी मे लिखी गयी गद्य – पद्यात्मक गाथा अर्थात् आधुनिक यूरोप (तत्कालीन रोमाटिक युग) के साहित्य का कोई लोकप्रिय वीरकाव्य तथा आश्चर्यजनक पद्य या गद्यमय कहानी × × × × × शौर्य, वीरता तथा धर्म – इन तीनो से मध्ययुगीन कथा – साहित्य प्रकट होता है, विशेषकर रोमास नाम से समझा जाने वाला कथा साहित्य। × × × × × उपन्यास का एक प्रकार जो दैनिक जीवन से उतना सम्बन्धित नही होता है जितना कि असाधारण घटनाओ से और प्राय अत्यधिक साहसिक कार्यों या साहसिक घटनाओ या काल्पनिक समाज के चित्रण से। × × × × × साहित्य मे आश्चर्यजनक और रहस्यमय का मिश्रण, अद्भुत और रहस्यवाद के प्रति मस्तिष्क की एक प्रवृत्ति या झुकाव, रोमांटिक कृत्य या मनोवृत्ति।'[3]

इस प्रकार शुरू से ही रोमास के नाम से समझे जाने वाले साहित्य मे कथातत्व की प्रधानता रही–चाहे वह गद्य हो या पद्य। समय के साथ रोमास कथा साहित्य विशेष के लिए ही रूढ हो गया और अठारहवी शताब्दी तक रोमास ने एक पृथक् साहित्यिक विधा का रूप धारण कर लिया। धीरे–धीरे रोमांस कथाओ मे असाधारण प्रेम का योग होता गया। बहुत समय तक यूरोपीय साहित्य मे रोमास से तात्पर्य ऐसे साहित्य से माना जाता रहा, जिसमे जीवन के सहज, दुर्लभ, असम्भव, अद्भुत रोमासों की

पीठिका पर मानव कार्यो एव कृत्यो मे निहित उदात्त–अनुदात्त भावो मे सर्वथा आदर्श की स्थापना का भाव परिलक्षित होता है।[4]

यूरोपीय देशो की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो के अनुरूप जर्मनी, फ्रास, इग्लैण्ड आदि देशों के साहित्यकारो द्वारा ऐसे साहित्य का सृजन होने लगा, जिसमे रोमास की विशेषताए समाहित हों। रोमास की प्रवृत्तियो को अत्यधिक उत्कर्ष और कलात्मक रूप मिलने पर ऐसे साहित्य को रोमाटिक (Romantic) कहा जाने लगा। रोमाटिक शब्द का प्रयोग सबसे पहले फ्रेडरिक श्लेगल ने अठारहवी शताब्दी मे शास्त्रीयतावादी साहित्य (क्लासिक–Classic) से भिन्न साहित्य के लिए किया। तब से लेकर बीसवी शताब्दी तक क्लासिक के साथ रोमाटिक का प्रयोग होता रहा है। रोमाटिक का अर्थ रोमास से सम्बन्धित या उससे मिलता–जुलता, नियत्रणहीन, कल्पनामय, अतिशयोक्तिपूर्ण, तर्कयुक्त की अपेक्षा भावात्मक, यथार्थ की अपेक्षा आदर्श किया जाता है।

अठारहवी शताब्दी के अंतिम वर्षों मे फ्रास के दार्शनिक रूसो की स्वच्छन्द भाव धारा के प्रभाव से समस्त यूरोप मे रोमाटिक मूवमेट (Romantic Movement) या रोमाटिक रिवाइवल (Romantic Revival) [स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन या स्वच्छन्दतावादी पुनरावर्तन] नाम से एक आन्दोलन उठ खडा हुआ। इग्लैंड के साहित्य मे इस आन्दोलन का प्रारम्भ सन् 1798 ई0 मे वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) तथा कोलरिज (Coleridge) के 'लिरिकल बैलेड्स' (Lirical Ballads) नामक काव्य–संग्रह से हुआ। इस आन्दोलन का अस्तित्व सन् 1932 ई0 तक माना जाता है। इसी समय जर्मनी, फ्रास और रूस मे भी रोमाटिक आन्दोलन चलाया गया। अत 'रोमाटिक' युग विशेष का भी द्योतक बन गया।

धीरे–धीरे रोमाटिक साहित्य अपनी प्रवृत्ति– विशेष के कारण वाद के रूप में सामने आया। इस साहित्य को प्रवृत्ति – विशेष के कारण रोमाटिसिज्म (Romanticism) कहा गया। इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी का रोमांस (Romance) शब्द जो कि भाषा – विशेष के लिए प्रयुक्त किया जाता था, अठारहवी शताब्दी तक साहित्य– विशेष के लिए प्रयुक्त होने लगा। यह पूरा साहित्यिक आन्दोलन रोमाटिसिज्म (Romanticism) के नाम से जाना गया।

'रोमाटिसिज्म' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग स्टेल द्वारा उत्तर के साहित्य को दक्षिण के साहित्य से एव व्यक्तिगत साहित्य की विषयपरक साहित्य से भिन्नता एव प्रतिकूलता को समझाने के लिए किया गया। अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे अग्रेजी साहित्य मे वाद के रूप मे रोमाटिसिज्म नाम से इसका प्रयोग उदारतापूर्वक होने लगा। अपने नये रूप मे यह अग्रेजी साहित्य की अनेक काव्यगत विशेषताओ को अभिव्यक्त करने मे समर्थ माना गया। आगे चलकर अग्रेजी साहित्य मे रोमाटिसिज्म का प्रयोग अनेक प्रकार से किया गया। रोमाटिसिज्म शब्द का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि उसके वास्तविक रूप की परीक्षा करना कठिन हो गया।[5]

रोमांटिसिज्म की विभिन्न परिभाषाएँ

रोमाटिक शब्द के विविध अर्थों के समान रोमाटिसिज्म की परिभाषाए भी विविधतापूर्ण रही हैं। रोमाटिसिज्म की परिभाषा देने का सर्वप्रथम प्रयास जर्मनी के फ्रेडरिक श्लेगल ने किया । श्लेगल की दृष्टि मे 'रोमाटिसिज्म' 'मनुष्य की पूर्णता के लिए कभी न प्राप्त होने वाली महत्वाकाक्षा' है। उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक रोमाटिसिज्म की इतनी अधिक परिभाषाए दी गयी कि इस शब्द का स्वरूप ही अनिश्चित हो गया। फिर भी रोमाटिसिज्म की कुछ विशिष्ट परिभाषाओ पर विचार करना आवश्यक है, जिससे इसके साहित्यिक, सास्कृतिक स्वरूप को समझने मे मदद मिले।

विक्टर ह्यूगो ने रोमाटिसिज्म को साहित्य मे स्वतत्र भावना माना है।[6] थियोडर वाट्स डटन ने काव्य और कला मे इसे स्वतत्र भावना का पुनर्जन्म कहा है।[7] प्रो0 लैसलेस एबरक्रोम्बी के अनुसार 'रोमाटिसिज्म' मन की उस प्रवृत्ति का नाम है जिसके माध्यम से वह बाहरी दुनिया से सम्बन्ध विच्छेद कर अपने अतस के तत्वो की ओर उन्मुख होता है।[8] वाल्टर पेटर के अनुसार सौन्दर्य के साथ विचित्रता का सयोग कला मे रोमाटिक विशिष्टता का निर्माण करता है। प्रत्येक कलाकृति मे सौन्दर्य की आकाक्षा एक स्थायी तत्व होती है और इस आकाक्षा के साथ कौतूहल का सम्मिलन रोमाटिक अभिरूचि का निर्माण करता है।[9] एफ0 एल0 लुकास के मतानुसार रोमाटिक साहित्य जीवन का स्वप्निल चित्र है, जो समाज तथा वास्तविक जगत द्वारा वर्जित एव कुठित आन्तरिक इच्छाओं की पूर्ति एव तृप्ति करता है।[10] प्रो0 कजामिया ने रोमांटिसिज्म को कल्पनात्मक दृष्टि के प्रयोग द्वारा प्रेरित और निर्दिष्ट भावनात्मक जीवन की

अतिशयता माना है जो बदले मे उस प्रयोग को प्रेरित और नियत्रित करती है, अर्थात् रोमानी चेतना भावुकता प्रधान जीवन का अतिरेक है, जो कल्पना के द्वारा प्रेरित और संचालित होती है।[11] ए0 सी0 रिकेट लिखते हैं– 'रोमाटिसिज्म साधारणत प्रखर या तीव्र अनुभूतियो एव तीव्र कल्पनात्मक भावनाओ या सवेगो की कला के रूप मे अभिव्यक्ति है। × × × × × साहित्य के क्षेत्र मे सामान्यत इसका अर्थ गुणो की अपेक्षा दोषो को ही व्यक्त करता है, क्योकि इसका प्रयोग प्राय अतिशयता और भावुकता के पर्यायवाची अर्थ मे किया जाता है।'[12]

इरविंग बैविट का कथन है कि 'क्लासिक और रोमाटिक को सही रूप मे परिभाषित करने के लिए हमें केन्द्रित या नैतिक कल्पना को तथा विक्षिप्त कल्पना को एक समझने के भ्रम मे नहीं पडना चाहिए। अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दी मे प्रवाहित भावात्मक रचनाओ की मुख्य धारा इसी भ्रम से ग्रस्त है।'[13] उनकी मान्यता है कि सारा रोमांटिक आन्दोलन अज्ञान की प्रशसा से तथा उन लोगो की प्रशसा से भरा है जो अज्ञान मे डूबे हैं, जैसे–जगली लोग, किसान, बालक। सी0 एच0 हरफोर्ड ने रोमाटिसिज्म को कलात्मक अनुभूतियो का असाधारण विकास माना है।[14] डॉ0 हेज ने भावप्रवणता को स्वच्छन्दतावाद का मूल तत्व माना है।[15] स्टडार्ड के अनुसार नवीन विधान, नवीन तथ्य, अनुरूपता और स्वरूप से विदा लेना ही स्वच्छन्दतावाद है।[16]

प्रो0 हरबर्ट ग्रियर्सन के मतानुसार 'रोमाटिक कला का सार यह है कि इसमे भावना की महत्ता रूप से अधिक होती है, बल्कि भावना ही रूप को विचित्र, अनिश्चित सौन्दर्य तथा निश्चित वैषम्य प्रदान करती है। इसकी प्रवृत्ति प्रगीतात्मक और भावावेशपूर्ण होती है।[17] इस सम्बन्ध मे प्रो0 सेट्सबरी की दृष्टि भाव– सम्प्रेषण पर केन्द्रित रही है। उनका कथन है कि शास्त्रीय रचनाओ मे भाव–सम्प्रेषण प्रत्यक्षत होता है और उसमें रूप का यथासभव अनुमान किया जाता है। स्वच्छन्द रचनाओ मे भाव–सम्प्रेषण पाठक की अनुमान शक्ति पर छोड दिया जाता है, जिसमे केवल सकेत और प्रतीक सहायक होते हैं।[18]

रोमाटिसिज्म की कुछ कोशगत परिभाषाए इस प्रकार हैं–

'न्यू स्टैंडर्ड डिक्सनरी ऑफ इग्लिश लैंग्वेज' मे रोमाटिसिज्म को शास्त्रीय शैली के विरूद्ध मध्यकालीन कला का पुनर्विकास कहा गया है।[19]

वेबेस्टर की 'न्यू इण्टरनेशनल डिक्सनरी ऑफ इग्लिश लैग्वेज' मे रोमाटिसिज्म को सन् 1798 ई0 के आस–पास शास्त्रीयता के विरूद्ध मध्यकालीन आदर्श की ओर उन्मुख जर्मनी, इग्लैड और फ्रास मे विकसित आन्दोलन कहा गया है।[20]

'द शार्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्सनरी' मे रोमाटिसिज्म को व्याख्यायित करते हुए लिखा गया है कि यह एक रोमाटिक फैसी या विचार हो सकता है। यह रोमास अथवा रोमांटिक दृष्टि की ओर उन्मुख एक प्रवृत्ति हो सकती है, और एक रोमाटिक सम्प्रदाय की कला, साहित्य तथा सगीत की विशेषताओ का द्योतक हो सकता है।[21]

विद्वानो द्वारा रोमांटिसिज्म की दी गयी परिभाषाओ तथा कोशगत परिभाषाओ मे कई भिन्नताए हैं। इन परिभाषाओ मे से कोई परिभाषा रोमाटिसिज्म के साथ पूर्ण न्याय नही कर पाती। इनमे से कुछ परिभाषाए स्पष्ट रूप से रोमाटिसिज्म की विरोधी है और उस प्रकार के साहित्य की हीनता की तरफ संकेत करती है। कुछ परिभाषाएं ऐसी हैं, जिन्हे थोडे से साहित्यकारो के साहित्य पर लागू किया जा सकता है। कुछ परिभाषाओ में रोमाटिक कवियो के भावो और विचारो पर प्रकाश डाला गया है। किसी भी परिभाषा मे समग्र रोमाटिक कवियो के काव्य को परिभाषित नही किया जा सका। दरअसल रोमाटिक आन्दोलन अर्थात् रोमांटिसिज्म इतना विविधतापूर्ण है कि उसे किसी एक परिभाषा मे बॉध पाना सभव नही है। एक परिभाषा उसकी पूरी प्रकृति को ठीक प्रकार से व्याख्यायित नही कर सकती। अठारहवीं शताब्दी के अतिम वर्षों से लेकर उन्नीसवी शताब्दी के प्रारभिक चरण मे परिवर्तन को उन्मुख अनेक प्रकार की प्रवृत्तियो के लिए प्रयोग किया जाने वाला यह एक व्यापक शब्द है। इस शब्द का आशय समय एव स्थान के अनुसार बदलता रहा है।[22]

यदि हम इन परिभाषाओ पर ध्यान दे तो पता चलता है कि सामान्यत. सभी परिभाषाओ मे काव्य के कथ्य और शिल्प–विधान मे परम्परागत बन्धनो से मुक्ति पर बल दिया गया है। इन परिभाषाओ के

सामान्य तत्वो के आधार पर कहा जा सकता है कि रोमाटिसिज्म शास्त्रीयता के विरूद्ध विकसित पाश्चात्य चितन है। यह पाश्चात्य चितन काव्य मे जिन प्रवृत्तियो को लेकर अवतरित हुआ उनमे रूढि–मुक्तता, भाषा की सहजता, सौन्दर्य के प्रति पवित्र आकर्षण, प्रकृति के प्रति भावात्मक लगाव, मानवीय सवेदना और कल्पना की उन्मुक्त उडान तथा भावुकता प्रमुख है।

रोमांटिसिज्मः युग परिस्थितियाँ एवं प्रेरणा स्रोत

यूरोप मे रोमाटिसिज्म पुनर्जागरण के साथ आया। पुनर्जागरण ने समूचे यूरोप के जीवन को परिवर्तित कर दिया। पुनर्जागरण ने मानव जीवन के सारे पक्षो को प्रभावित किया। पुनर्जागरण ने एक सास्कृतिक आन्दोलन के रूप मे साहित्य, कला तथा दर्शन को भी प्रभावित किया। तमाम पुरानी मान्यताओ एव परम्पराओ का खण्डन किया गया। वैज्ञानिक अनुसधानो से धार्मिक कट्टरता को बहुत बडा धक्का लगा। सोलहवी शताब्दी तक आते –आते सामन्तवाद लगभग बिखर गया। पुनर्जागरण यूरोप मे मानवतावाद की स्थापना करने मे समर्थ हुआ। यही मानवतावाद रोमाटिसिज्म लाने का कारण बना। अठारहवी शताब्दी मे आते–आते रोमाटिक आन्दोलन मे तेजी आ गयी।

अठारहवी– उन्नीसवी शताब्दी यूरोप मे प्रगति और परिवर्तन के लिए विख्यात है। अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे युरोप मे तीन महत्वपूर्ण क्रान्तियॉ हुईं, जिसने सारे ससार को प्रभावित किया। ये तीन क्रान्तियॉ थी– अमेरिका की क्रान्ति, फ्रास की क्राति, औद्योगिक क्रान्ति। यूरोपीय रोमाटिसिज्म को समझने के लिए इन तीनो क्रान्तियो की परिस्थितियो एव प्रभावों को जानना आवश्यक है।

अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम

सन् 1756 ई0 से सन् 1763 ई0 तक फ्रास और इग्लैण्ड के मध्य एक सप्तवर्षीय युद्ध लडा गया। इस युद्ध मे इग्लैण्ड विजयी हुआ। युद्ध की समाप्ति पर सन् 1763 ई0 मे 'पेरिस की सधि' हुई । इस सधि के अनुसार फ्रास ने इंग्लैण्ड को अमेरिका मे कनाडा तथा मिसीसिपी नदी के पूर्व का प्रदेश सौप दिया। भारत मे फ्रासीसी कुछ बन्दरगाहो को छोडकर शेष प्रदेशो से हट गये और इन प्रदेशो पर अंग्रेजो का अधिकार हो गया। इस सफलता से अंग्रेजी साम्राज्यवाद का विस्तार हुआ। इस युद्ध का परिणाम इतना प्रभावकारी सिद्ध हुआ कि अग्रेजी साम्राज्य का यश पूरी दुनिया मे फैल गया। किन्तु अंग्रेजो की यह

स्थिति अधिक समय तक स्थिर न रह सकी। कुछ समय बाद अग्रेजी साम्राज्य की क्षुद्र एव स्वार्थी नीतियो के कारण उसका अमेरिका मे अपनी बस्तियो के साथ ही सघर्ष प्रारभ हो गया। अमेरिकनो की मॉगो को अग्रेजी साम्राज्यवादियो ने क्रूरतापूर्वक कुचल दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिका में अग्रेजी साम्राज्य के विरूद्ध प्रभावी संघर्ष प्रारंभ हो गया। अमेरिकनो ने फिलाडेल्फिया मे 4 जुलाई, सन् 1776 ई0 को एक 'द्विमहाद्वीपीय समिति' की बैठक बुलाकर 'स्वतत्रता के घोषणा–पत्र' का अनुमोदन किया। इस घोषणा–पत्र का मुख्य उद्देश्य यह प्रदर्शित करना था कि जब कोई सरकार मनुष्य को उसके नैतिक अधिकारों से वंचित करे तो जनता को ऐसी सरकार को बदलने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। घोषणा–पत्र मे बलपूर्वक यह घोषित किया गया– 'ईश्वर ने सब मनुष्यो को समान बनाया है। ईश्वर ने उन्हे कुछ ऐसे अधिकार दिये हैं जिन्हे उनसे कोई छीन नहीं सकता। इन अधिकारो मे जीवन, स्वतत्रता और सुख के लिए प्रयत्न शामिल है।'[23] इस घोषणा–पत्र मे इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया कि सत्ता का मूल स्रोत जनता है और दृढता पूर्वक कहा गया कि जनता को अपनी सरकार बनाने का पूरा अधिकार है। घोषणा–पत्र में यह भी कहा गया कि ब्रिटेन की सरकार ने अमेरिका के उपनिवेशो पर अत्याचार किये हैं। घोषणा–पत्र में कहा गया –'अतएव हम सयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि समस्त उपनिवेशो के नागरिकों के नाम से विश्व के सर्वोच्च न्यायाधीश को यह निवेदन करते है कि अब हम स्वतन्त्र राज्य के निवासी हैं। इसके साथ ही हम इस समय ब्रिटिश सम्राट के प्रति समस्त निष्ठा से मुक्त हो चुके हैं तथा हमारे व ब्रिटेन के मध्य अब किसी प्रकार का राजनीतिक सम्बन्ध शेष नहीं है। अत हम युद्ध, शान्ति, संधि, व्यापार एव अन्य सभी मामलो मे आधिकारिक रूप से निर्णय लेने को स्वतन्त्र है, जो एक स्वतंत्र राज्य के अधिकार होते हैं।'[24]

इस घोषणा–पत्र के अन्तर्गत अमेरिकनो ने ब्रिटिश पार्लियामेट मे अपने प्रतिनिधित्व के समावेश पर जोर दिया और करों का विरोध करते हुए 'बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं' का नारा बुलन्द किया। अमेरिकनों के प्रतिनिधित्व का ब्रिटिश पार्लियामेन्ट मे समावेश न होने पर जार्ज वाशिंगटन के सेनापतित्व मे युद्ध छेड दिया गया। फलस्वरूप सन् 1783 ई0 में 'पेरिस की सधि' हुई जिसमे इग्लैण्ड ने तेरह

अमेरिकी बस्तियो को स्वतत्रता प्रदान की। 21 जून सन् 1788 ई0 को नया सविधान लागू हुआ और मार्च 1789 ई0 मे जार्ज वाशिगटन के नेतृत्व मे नयी सरकार का गठन हुआ।

अमेरिका की क्रान्ति विश्व इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओ में से एक थी। इस क्राति ने पूरे यूरोप मे उपनिवेश विरोधी क्रान्तिकारियो को नया जीवन दिया।

फ्रांसीसी क्रांति

किसी भी देश में होने वाली क्रान्ति के बीज उस देश की जनता की स्थिति और मनोदशा मे निहित रहते हैं। असतोष को जन्म देने वाली भौतिक परिस्थितियॉ क्रान्ति हेतु आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करती है तथा बौद्धिक चेतना बहुजन को उन परिस्थितियो से मुक्ति पाने हेतु प्रेरित करती है।

रोमांटिक आन्दोलन को तेज करने मे फ्रांसीसी क्राति का बडा योगदान है। फ्रासीसी क्रान्ति को पाश्चात्य रोमांटिसिज्म का प्रस्थान बिन्दु स्वीकार किया जाता है। सम्भव है इस क्राति के मूल मे सन् 1776 ई0 की उस अमेरिकी क्राति की भी प्रेरणा रही हो, जब अमेरिकी जनता ने अपने ही पूर्वजो की जन्मभूमि ब्रिटेन से स्वतन्त्र होने की घोषणा की। परन्तु फ्रासीसी क्राति जिसका आरंभ 1789 ई0 मे हुआ, वाल्टेयर तथा रूसो के विचारो को लेकर आगे बढी।[25]

फ्रासीसी साम्राज्य में दो प्रकार के लोग थे। प्रथम– सभी प्रकार की सुविधाए तथा सम्मान प्राप्त कुलीन वर्ग और पादरी, दूसरे– सभी प्रकार की सुविधाओ से वचित, सम्मान विहीन मजदूर और कृषक। दूसरी श्रेणी के लोगों को सेना, चर्च और राजकीय नौकरियो मे कोई उच्च्य पद नही दिया जाता था। मजदूर कारखानो के पूॅजीपति स्वामियो से पीडित थे तथा कृषक जागीरदारो से। जागीरदारो, पादरियो तथा राजा द्वारा लगाये गये करो का भुगतान करते–करते कृषकों के पास कभी–कभी खाने को भी नहीं बचता था। फ्रास ने अमेरिका के स्वतंत्रता सग्राम मे वहॉ की जनता की सहायता की थी। इस युद्ध मे भाग लेने वाले फ्रासीसी युवक वहॉ से बहुत सी प्रेरणाए लेकर फ्रास लौटे। उन्होने अपने देश मे भी इसे कार्यान्वित करने का बीडा उठाया। देश की सोचनीय दशा को देखकर विद्वान लोगो ने भी आलोचना–प्रत्यालोचना द्वारा दशा सुधारने का प्रयास किया। वाल्टेयर और रूसो के साहित्य ने समाज की ऑखें खोल दी। यद्यपि रूसो ने क्राति का पाठ नहीं पढाया, शायद उसे इस प्रकार की क्रांति की आशा भी नही

थी, किन्तु उसकी पुस्तको और विचारो ने मनुष्यो के मस्तिष्को मे इस प्रकार के बीजबपन कर दिए जिनसे क्राति अकुरित हुई।[26]

यह प्रश्न विवादास्पद है कि बौद्धिक आन्दोलन फ्रास की राज्य क्राति के लिए कहॉ तक उत्तरदायी था। प्राय बौद्धिक चेतना को क्राति की आत्मा कहा जाता है और क्राति का श्रेय दार्शनिको, लेखको तथा प्रबुद्ध वर्ग को दे दिया जाता है। स्वय नेपोलियन का कथन था– 'यदि रूसो न हुआ होता तो फ्रासीसी क्राति सम्भव न होती।' रूसो ने अपनी पुस्तक 'सोशल कान्ट्रेक्ट' (सामाजिक अनुबन्ध) मे सामाजिक परिवेश के प्रति घोर असन्तोष व्यक्त किया है। उसका विचार था कि अपनी आदिम अवस्था मे मनुष्य वर्तमान की अपेक्षा कहीं अधिक सन्तुष्ट रहा होगा, क्योकि वह शोषण मुक्त था। उसका बहु उद्धृत वाक्य– 'मनुष्य स्वतत्र जन्मा है, किन्तु हर जगह वह जजीरो से जकडा है', जो कि उसकी पुस्तक 'सोशल कान्ट्रेक्ट' से लिया गया है, इसने फ्रांस मे क्राति का बीजारोपण किया। रूसो ने स्वतत्रता, समानता और बन्धुत्व का जो नारा दिया वह फ्रासीसी क्राति का आप्तवाक्य बन गया।[27]

जार्ज एलन ने लिखा है– 'फ्रास की क्राति होने का कारण वही के लोगो का दुख तथा उन पर होने वाले अत्याचार नहीं थे बल्कि उसका कारण बुद्धिवादी वर्ग के विचार थे। यह वर्ग समाज, राज्य तथा प्रशासन मे व्याप्त असगतियो को समाप्त करने के लिए कृत सकल्प था।'[28] फ्रासीसी कवि एव उपन्यासकार एफ0 आर0 शातोब्रियॉ ने लिखा है–' फ्रासीसी क्राति बौद्धिक आन्दोलन तथा भौतिक दुखो के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुयी थी। बौद्धिक आन्दोलन ने ही भौतिक दुखो का अधिक व्यापक रूप से विरोध किया था।'[29]

क्राति के विचारको के योगदान के परिणाम पर विवाद हो सकता है, किन्तु क्राति की पूर्वपीठिका तैयार करने मे तथा उसकी सूचना देने तथा क्रान्ति की मानसिकता बनाने मे उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता। अपनी पृष्ठभूमि मे वैचारिक क्रान्ति की परम्परा लिए रहने के कारण इस क्रान्ति का प्रभाव सम्पूर्ण इतिहास, जीवन, संस्कृति, साहित्य तथा कला आदि सभी क्षेत्रो पर पडा।

फ्रास की क्राति सन् 1789 ई0 में शुरू हुई। नेपोलियन को तीनो कौंसिलो की राष्ट्रीय समिति का प्रधान चुना गया। नेपोलियन के नेतृत्व में समिति ने उपयोगी विधान बनाने की योजना बनायी, किन्तु यह

योजना असफल रही। राष्ट्रीय समिति और राजा मे सघर्ष चल ही रहा था कि पेरिस की भीड ने क्राति के प्रवाह मे जबर्दस्त हस्तक्षेप करके इसे एक निर्णायक मोड दिया। 14 जुलाई , 1789 ई0 को जनता ने बास्टिल के बन्दीगृह पर आक्रमण करके बन्दियो को मुक्त कर दिया। संघर्ष और क्रान्ति से उत्पन्न देश की सकटमय स्थिति देखकर कुलीन और पादरियों ने अपनी सुविधाओ को राष्ट्रीय समिति को अर्पित कर दिया। सम्राट लुई सोलहवे तथा पादरियो को विवश होकर साधारण कोटि के लोगो को भी नागरिक की कोटि मे गिने जाने और स्टेट जनरल (State General) में सम्मिलित होने का आदेश देना पडा। 26 अगस्त, 1789 ई0 को नेशनल असेम्बली द्वारा 'मानव एव नागरिक अधिकारो' की घोषणा की गयी। 20 सितम्बर 1791 ई0 को नेशनल असेम्बली को समाप्त कर दिया गया। इसके बाद नेशनल कन्वेंशन (1792 ई0 – 1795 ई0) का समय आता है। उसने फ्रास को गणराज्य घोषित किया । सन् 1792 ई0 मे आस्ट्रिया और फ्रांस के युद्ध में फ्रांस की पराजय हुयी। फ्रांसीसियों ने अपने राजा के शत्रु पक्ष से मिल जाने का भ्रम करके उसके महल पर आक्रमण कर दिया। सम्राट लुई सोलहवें और राज परिवार के सदस्यो को बंदी बना लिया गया। आगे चलकर फ्रांसीसियो ने आस्ट्रिया और प्रशा की सेनाओ को परास्त किया। 21 सितम्बर, 1792 ई0 को नेशनल कन्वेशन (National Convention) की बैठक हुई, जिसमे फ्रास मे जनतंत्र की घोषणा की गई। लुई सोलहवे पर देशद्रोह का मुकदमा चलाया गया तथा 22 जनवरी, 1793 ई0 को लुई सोलहवे को प्राण दण्ड दे दिया गया। लुई सोलहवे की रानी तथा राजपक्ष के अन्य कई लोगों को भी प्राणदण्ड दे दिया गया। परन्तु बाद मे नेशनल कन्वेंशन के शासन को 'आतक का राज्य' कहा गया क्योंकि सर्वहारा वर्ग उस समय भी पीडित किया जाता रहा। 1793 ई0 मे 'प्रजातांत्रिक संविधान' नामक एक नया सविधान बना, जो 1795 ई0 के अन्त मे लागू हुआ। 'आतक का राज्य' समाप्त हो कर 'डाइरेक्टरी' का शासन प्रारम्भ हुआ। नेपोलियन को 'डाइरेक्टरी' के शासन मे सेनापति का पद मिला। धीरे–धीरे अपनी शक्ति बढाकर नेपोलियन सम्राट बन गया। क्रान्ति के बाद सभी नागरिकों को स्वतंत्रता मिली और सबको मतदान का अधिकार दिया गया। शिक्षा का प्रबन्ध सम्राट ने अपने हाथ मे ले लिया। कुलीनों और पादरियों की सामन्तशाही सदा के लिए समाप्त हो गयी।

सन् 1789 ई0 की फ्रास की क्रान्ति घरेलू मुशीबतो से निपटने वाला राष्ट्रीय आन्दोलन मात्र नही था। यूरोप के सभी देशो मे इस क्रान्ति के अनेक समर्थक थे और इस अर्थ मे शुरू से ही क्रान्ति का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय था। सारे यूरोप का शिक्षित वर्ग क्रान्ति की घटनाओ को बडी दिलचस्पी से अध्ययन कर रहा था। सन् 1789 ई0 के जिस नवयुग के आगमन ने बहुत से व्यक्तियो को सम्मोहित कर दिया था, उसमे कवि वर्ड्सवर्थ भी था। क्रान्ति की घटनाओ के स्वागत मे उसने निम्न पक्तियॉ लिखी–

'उस नवप्रभात मे जीवित होना ही वरदान था,
और युवा होना तो स्वर्गिक ही था।'[30]

औद्योगिक क्रान्ति

यूरोप के इतिहास मे सत्रहवीं शताब्दी इग्लैण्ड के सम्राट और पार्लियामेट के सघर्षों के लिए, अठाहरवीं शताब्दी इंग्लैण्ड और फ्रांस के युद्धो के लिए तथा उन्नीसवीं शताब्दी विज्ञान के विकास के लिए प्रसिद्ध है।[31] मध्य युग में स्थिर सामन्ती समाज के सकीर्ण दृष्टिकोण ने यूरोप मे विज्ञान मे कोई महत्वपूर्ण विकास नहीं होने दिया। किन्तु कृषि योग्य भूमि के विस्तार और उसके बेहतर उपयोग करने तथा कामगारों की कमी के कारण पशुओं, हवा और पानी की शक्ति का प्रयोग शुरू हुआ। उत्तर मध्ययुग मे बडे तकनीकी सुधार होने से कृषि व अन्य वस्तुओ का बडे पैमाने पर उत्पादन होने लगा। अतिरिक्त उत्पाद ने आगे उत्पादन को बढावा दिया। धीरे–धीरे किसानो से बलपूर्वक काम करने पर आधारित वशानुगत सामंती व्यवस्था का स्थान व्यापारी समाज ने ले लिया, जिसमे उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन एव मुद्रा द्वारा भुगतान प्रमुख हो गया। इससे व्यापार के तीव्र विस्तार को बढावा मिला, जिसमे जहाजरानी व नौ संचालनो मे सुधार से और अधिक वृद्धि हुई। व्यापार के विश्वव्यापी विस्तार ने व्यापारी वर्ग को ताकतवर बना दिया। कालान्तर में व्यापारी वर्ग सामन्तो और जमींदारो को सत्ता से हटाने में सफल हो गया। सत्रहवीं शताब्दी से ही नये पूॅजीवादी तरीको से उत्पादन की आगे उन्नति के लिए तैयारी हो चुकी थी। उत्पादन, व्यापार और व्यवसाय पर सांमती और शाही प्रतिबन्ध हट चुके थे। बुर्जुआ वर्ग को बडे राजनीतिक, धार्मिक और बौद्धिक संघर्ष के बाद ही पूजीवादी अर्थव्यवस्था विकसित करने मे प्रारम्भिक विजय मिल सकी । ब्रिटेन मे अठारहवीं शताब्दी तक शहरों के मध्य वर्ग के लोग सामती सीमाओ से पूरी

तरह से मुक्त हो चुके थे। वे सारी दुनिया मे अपने उत्पादो के लिए बढते बाजारो की पुर्ति करने के लिए उसमे पूँजी लगा सकते थे। अब सामती अर्थव्यवस्था पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे तब्दील हो रही थी। उस समय के महान तकनीकी अविष्कारो ने परिवर्तन को प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि अठारहवी शताब्दी के मध्य तक वस्तुओ के उत्पादन मे धीरे–धीरे होने वाले परिवर्तनो ने एक तीव्र परिवर्तन को जन्म दिया। मुख्य बात यह है कि सोलहवीं और सत्रहवी शताब्दी के दौरान प्रयोगात्मक विज्ञान के नये तरीको का आम जीवन मे प्रसार शुरू हो गया था। उनके उपयोग ने नयी तकनीक विकसित कर उत्पादन के साधनो मे काफी परिवर्तन कर दिया, जिसे हम औद्योगिक क्रान्ति कहते हैं।[32]

औद्योगिक क्रान्ति का विचारधारा पर भी उल्लेखनीय प्रभाव पडा। अठारहवी शताब्दी मे यूरोप मे उदारवाद का प्रचार था, जिसका आधार वैयक्तिक स्वतत्रता का सिद्धात था। इस शताब्दी के अनेक दार्शनिको और विचारको ने इसे जन्म दिया और फ्रासीसी क्रान्ति ने इसका पोषण किया। इंग्लैण्ड मे एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'द वेल्थ ऑफ नेशन्स' मे व्यापार और व्यवसाय पर राज्य का नियत्रण व्यर्थ बताकर उनको स्वतंत्र छोडने की नीति का समर्थन किया।

औद्योगिक क्रान्ति ने यूरोप की प्राचीन सस्कृति को पूर्णत बदल डाला। उसने जीवन–मूल्यो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किये, जीवन–दृष्टि मे युगान्तर स्थापित किया। इन सब का प्रभाव साहित्यिक मानदडों पर भी पडा तथा उसमे भी आमूल परिर्वतन हुये।

रोमांटिक आन्दोलन की विकास यात्रा

सदियो से परम्परा प्रियता और सामतशाही से ग्रस्त यूरोप में मानव विवेक कुठित हो गया था। अठारहवीं शताब्दी मे घटित होने वाली क्रान्तियो मे मनुष्य को सोचने के लिए विवश किया। क्रान्ति ने मनुष्य में निर्णय करने की नवीन दृष्टि प्रदान की । उसे पहली बार अपने व्यक्तित्व एव विचारधारा के मूल्य का अहसास हुआ। रूसो, वाल्टेयर, लेसिंग और टामसपेन आदि ने अपने मानवतावादी विचारो से विश्व बन्धुत्व की भावना को विकसित किया। काण्ट, हीगल, फिक्टे आदि के दर्शन ने प्रकृति एव मानव सम्बन्धो को परिभाषित कर उसे स्पष्ट किया।

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण मे साहित्य और कला के क्षेत्र मे यूरोप व्यापी रोमाटिक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन ने पश्चिमी यूरोप के देशो को विशेष रूप से प्रभावित किया। इस युग मे जर्मनी, फ्रास, इग्लैण्ड के साहित्य , कला और दार्शनिक विचारधारा मे तथा राजनीति मे विशेष परिवर्तन हुए। किन्तु सारे यूरोप मे यह रोमाटिक आन्दोलन एक जैसा नही था। फ्रास में यह आन्दोलन राजनीति से प्रेरित था, जर्मनी मे यह आन्दोलन दर्शन से प्रभावित था, इग्लैण्ड मे इस आन्दोलन का स्वरूप सामाजिक था।[33]

जर्मनी में रोमांटिक आन्दोलन

जर्मनी मे रोमाटिसिज्म का विकास इग्लैण्ड से पहले आरभ हो गया था। जर्मन काव्य मे रोमाटिसिज्म को प्रश्रय देने वाले प्रारभिक कवियों मे क्लापस्टाक (1724 ई0–1803 ई0), वीलैण्ड (1733 ई0–1813 ई0) और लेसिंग (1729 ई0–1781 ई0) के नाम प्रमुख है। क्लापस्टाक ने अनेक सम्बोध गीतियो (Odes) तथा मेसियस (Messias) नामक महाकाव्य की रचना की। उसकी रचनाओ मे स्थान स्थान पर उसके मानवतावादी दृष्टिकोण, सौन्दर्यकामिता की झलक मिलती है। वीलैण्ड की प्रमुख कृति 'ओवेरॉन' है। यह एक रोमांटिक कृति है। लेसिग ने भी अपनी काव्य–कृतियो, नाट्य–रचनाओ के माध्यम से रोमांटिक धारा मे महत्वपूर्ण योगदान दिया।

जर्मनी में श्लेगल बन्धुओं फ्रेडरिक श्लेगल (1759 ई0–1805 ई0) तथा आगस्ट विल्हेम (1767 ई0 –1845 ई0) को जर्मन रोमाटिक आन्दोलन का प्रवर्तक माना जाता है। फ्रेडरिक श्लेगल ने रोमाटिक काव्य को प्रगतिशील सार्वदेशिक कहा। श्लेगल बन्धुओ ने क्लासिज्म और रोमाटिसिज्म को विरोधी अर्थो मे प्रयुक्त किया।

जर्मनी मे चले 'Sturan Und Drang' (Storm and Pressure) नामक आन्दोलन ने प्राचीन रूढियों से मुक्ति तथा नवीन स्वातन्त्र्य भावना को सरक्षण देना अपना लक्ष्य बनाया। इस आन्दोलन के अनुयायी साहित्य–क्षेत्र मे और उसी प्रकार जीवन मे सभी प्रकार के बन्धनो से घृणा करते थे और प्रकृति द्वारा प्राप्त प्रेरणा से चालित होने का समर्थन करते थे। इस आन्दोलन ने जर्मनी के प्रकृति–प्रेमी भावुक कलाकारों को अपनी ओर आकृष्ट किया।

जर्मनी मे रोमाटिक प्रवृत्तियो के विकास मे साहित्यकार गेटे (1749 ई0–1832 ई0) का भी महत्वपूर्ण योगदान है। उसकी काव्य कृतियो 'Die Loidan Jungen Werthers' और 'Fouste' (फॉउस्ट) मे सौन्दर्य से उद्‌भूत कोमल भावनाओ के साथ–साथ प्रकृति के मार्मिक चित्रो की भी अभिव्यक्ति हुई है। वास्तव मे गेटे तीव्र रोमाटिक सवेदन के कवि थे। यद्यपि अपनी प्रौढावस्था मे गेटे ने रोमाटिसिज्म को 'रोग' की सज्ञा दी और उसकी अतिवादिता की भर्त्सना की, तथापि इसमे सदेह नहीं कि उसकी युवावस्था की रचनाए स्वाभाविक रोमाटिक भावनाओ से ओत–प्रोत है।

जर्मन रोमांटिसिज्म की प्रमुख विशेषता उसकी देसी उपज है, जिसके पीछे राष्ट्रीय आकाक्षाएँ सक्रिय दिखाई देती हैं। एक अन्य विशेषता, रोमाटिसिज्म के संपूर्ण इतिहास मे जर्मनी की विशिष्टता प्रकाशित करती है, वह उसका वैविध्यपूर्ण रूप है। यूरोप के अन्य देशो मे रोमाटिक आन्दोलन की चेतना साहित्य और विशेष रूप से काव्य में ही अधिक जागरूक एव सक्रिय रही, परन्तु जर्मनी मे रोमाटिसिज्म ने साहित्य की विभिन्न विधाओ के अतिरिक्त अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमो को भी प्रभावित किया।[34] जर्मन रोमाटिक चेतना की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम दर्शन था। जर्मन रोमाटिक धारा का मुख्य उद्‌देश्य तर्क, बुद्धिवाद एव विज्ञानवाद के अतिरेक को नियत्रित कर धर्म एव आध्यात्मिक दृष्टि की प्रतिष्ठापना रहा है। उसकी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने बौद्धिकता और तार्किकता का विरोध कर अनुभूति और अन्तर्दृष्टि पर बल दिया। इस प्रकार उसने यूरोप के रोमाटिक काव्य को समुचित दार्शनिक पीठिका प्रदान की।

फ्रांस में रोमांटिक आन्दोलन

फ्रांस मे रोमाटिक आन्दोलन की शुरूआत रूसो से मानी जाती है। इस आन्दोलन के प्रथम चरण मे एक ओर वैचारिक आन्दोलनों का जोर था, तो दूसरी ओर फ्रास राजनीतिक विप्लव से गुजर रहा था। जिस फ्रांसीसी क्रान्ति ने विश्व–बन्धुत्व प्रधान मानवता का समर्थन किया था, उसी क्रान्ति के वातावरण मे उत्पन्न नेपोलियन अन्य देशों की स्वतंत्रता का तेजी से अपहरण करने लगा। नेपोलियन के शासन के विरूद्ध अन्य देशों में राष्ट्रीयता की भावना पनपी। फ्रास में भी प्राचीन और नवीन के बीच सघर्ष चलता रहा। साहित्यकारो ने अतीत को महत्व दिया और ऐतिहासिक लेखन की ओर आकर्षित हुए। अपनी

राजनीतिक प्रतिबद्धताओ के कारण एक न होने के बावजूद विचारको ने अभिव्यक्ति की स्वतत्रता की मॉग की।

विक्टर ह्यूगो (1802 ई0–1885 ई0) ने फ्रासीसी रोमाटिक आन्दोलन के दक्षिणपथी और वामपथी विचारो को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया। विक्टर ह्यूगो पर रूसो का बहुत प्रभाव पडा था। चौदह वर्ष की अवस्था मे ही उसने एक दुखान्त नाटक लिख डाला था। बीस वर्ष की अवस्था मे ही उसका प्रथम काव्य–सग्रह प्रकाशित हो गया था। उसने लगभग बीस वर्षों तक कविता, नाटक, उपन्यास के क्षेत्र मे काम किया और फ्रांसीसी स्वच्छन्दतावाद का नेतृत्व किया। उसकी ख्याति एक उपन्यासकार के रूप मे अधिक है, पर फ्रास में वह कवि के रूप मे सम्मानित है। उसने काव्य के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण स्थापना की कि कवि विशिष्ट प्रातिभ–ज्ञान से सम्पन्न होता है और उसमे भावना की स्वतत्रता रहनी चाहिए। उसने राजनीति तथा इतिहास से स्वय को सम्बद्ध रखते हुए भी अपनी कविताओ मे कल्पना को प्रचुर प्रश्रय दिया। उसके सुन्दर गीतिकाव्यो के कारण उसे 'फ्रासीसी गायक' कहकर सम्बोधित किया गया। उसमें कल्पना का वेग, करूणा की शक्ति और दृष्टि का चमत्कार था। उसकी प्रतिभा घनिष्ठ रूप से मानवीयता से जुडी हुई थी और वह जीवन के सुख–दुख को अच्छी तरह समझता था।[35]

फ्रास के रोमाटिक आन्दोलन मे लैमर्तीन, विग्नी, म्यूजेत के नाम भी महत्वपूर्ण हैं। फ्रासीसी रोमाटिक काव्य ने रोमानी मुद्रा को अभिव्यक्ति देने के लिए सवेदन, कल्पना तथा भावावेग का आश्रय लिया और स्वय को जर्मनी , इग्लैण्ड, इटली और स्पेन की नयी प्रवृतियो से दूर नहीं रखा। स्टेण्डहल और बालजाक भी रोमाटिक आन्दोलन से जुडे थे। ये मूलत उपन्यासकार थे। समीक्षा को भी रोमाटिक आन्दोलन ने प्रभावित किया। उन्नीसवी शताब्दी मे रचनाओ का परीक्षण इसी दृष्टिकोण से किया गया। रोमाटिक प्रभाव में ही इस दृष्टिकोण का विकास हुआ कि रचना को समझने के लिए रचनाकार के परिवेश को भी जानना होगा। 'रचना को भीतर से जानना उसकी उचित समीक्षा है.'– यह रोमाटिक समीक्षा का मुख्य बिन्दु है।

फ्रास मे काव्य, नाटक उपन्यास समीक्षा आदि साहित्यिक विधाओ के अतिरिक्त रोमाटिक आन्दोलन ने इतिहास, धर्म, राजनीति, दर्शन आदि के सम्बन्ध मे विचार रखने वाले विचारको एवं लेखको

को भी प्रभावित किया। देश के राजनीतिक विप्लव के कारण फ्रास मे रोमाटिक आन्दोलन इग्लैण्ड की तुलना मे कुछ देर से सक्रिय हुआ और उसके रचनाकारो की सख्या भी सीमित है। पर यह ध्यान देने योग्य है कि फ्रास मे ही रोमांटिसिज्म के विचार का उद्भव हुआ। फ्रास चिन्तन के क्षेत्र मे अग्रणी रहा है। फ्रास के रोमांटिक आन्दोलन में प्रेरणा प्रातिभज्ञान, कल्पना, सौन्दर्यानुभूति आदि की प्रधानता है। इन्हे रोमाटिसिज्म का मूल तत्व माना जाता है।[36] फ्रांसीसी रोमाटिक आन्दोलन ने यूरोपीय रोमाटिक आन्दोलन को विस्तार दिया।

इंग्लैण्ड में रोमांटिक आन्दोलन

रोमाटिक आन्दोलन का पूर्ण विकास इग्लैण्ड मे हुआ। अग्रेजी साहित्य के इतिहास मे सन् 1798 ई0 से 1832 ई0 तक के काल को रोमांटिक युग (Romantic Age) कहते हैं। जानसन युग की कविता मे पोप युग की शास्त्रीय सम्प्रदाय की कविता से विलगाव के जो चिन्ह प्रकट होने लगे थे, वे रोमाटिक युग मे आकर नितान्त स्पष्ट हो गये। वर्ड्सवर्थ, कालरिज, सर वाल्टर स्कॉट, बायरन, शेली और कीट्स प्रभृति कवि रोमाटिक धारा के प्रमुख कवि है।

वर्ड्सवर्थ को अग्रेजी रोमाटिक धारा का प्रर्वतक माना जाता है। वर्ड्सवर्थ ने कालरिज के साथ मिलकर सन् 1798 ई0 में लिरिकल बैलेड्स (Lirical Ballads) का सम्पादन किया। यह घटना अंग्रेजी साहित्य के इतिहास मे एक युग प्रर्वतक साहित्यिक घटना है। इस काव्य सग्रह के प्रकाशन के साथ ही रोमाटिक युग की काव्य धारा का अभ्युदय हुआ। इस कृति मे रोमाटिसिज्म और प्रकृतवाद का पूर्ण विकास देखा जा सकता है। वस्तुत इस कृति के द्वारा वर्ड्सवर्थ ने विगत युग के काव्य की रूढियो , अन्य परम्पराओं तथा प्राचीन, कृत्रिम एवं अनावश्यक नियमो पर आक्रमण किया और उसकी मान्यताओं को चुनौती दी। इसका द्वितीय संस्करण सन् 1800 ई0 मे प्रकाशित हुआ। द्वितीय सस्करण मे वर्ड्सवर्थ द्वारा लिखी गयी भूमिका 'रोमांटिक कविता का मेनीफेस्टो' कहा जाता है। वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज ने रोमाटिक काव्य के लिए नयी भूमि तैयार की। 'लिरिकल बैलेड्स' के माध्यम से उन्होने नये युग के आगमन की सूचना दी तथा यह घोषणा की कि काव्य सर्जना ऐसी कला है जिसे कृत्रिम परम्पराओ के सकीर्ण बंधन

से बॉधा नही जा सकता। लिरिकल बैलेड्स के माध्यम से जिस रोमांटिक आदोलन का आरभ हुआ उसे बाद मे बायरन, शेली और कीट्स जैसी प्रतिभाओ ने चरम पर पहुचा दिया।[37]

विलियम वर्ड्सवर्थ

'लिरिकल बैलेड्स' मे सग्रहीत अधिकाश रचनाएँ वर्ड्सवर्थ (सन् 1770 ई0–1850 ई0) की थी। इस सग्रह की अतिम कविता 'लाइन्स रिटेन एबव टिन्टर्न एबे' (Lines Written Above Tintern Abbey) है, जो अग्रेजी काव्य की एक महान रचना मानी जाती है। वर्ड्सवर्थ की प्रमुख रचनाएँ 'एन इवनिंग वाक' (An Evening Walk), 'डिस्क्रिप्टिव स्केचेज' (Descriptive Sketches), 'दि रेक्ल्यूज' (अपूर्ण), 'दि प्रिल्यूड', 'दि डेफोडिल्स', 'दि सालीटरी रीपर', 'लूसी पोयम्स', 'ओड टू ड्यूटी', 'ओड ऑन दि इन्टीमेशन्स' 'ऑन इम्पारटेलिटी', 'कन्वेशन ऑफ सिन्ट्रा', 'दि एक्स करशन', 'लाओडामिआ' आदि है।

अंग्रेजी काव्य में वर्ड्सवर्थ ग्राम्य एव प्रकृति जीवन के श्रेष्ठतम कवि है। उन्हे अग्रेजी स्वच्छन्तावाद (English Romanticism) का प्रर्वतक माना जाता है। उनके द्वारा सम्पादित 'लिरिकल बैलेड्स' को अग्रेजी 'रोमाटिक आन्दोलन का घोषणा–पत्र' कहा जाता है। काव्य–शैली एवं काव्य–वस्तु सम्बन्धी वर्ड्सवर्थ के सिद्धान्त, परम्परा एव कृत्रिमता का विच्छेद करके स्वाभाविकता एव यथार्थता की स्थापना के समर्थन मे है। 'लिरिकल बैलेड्स' के दूसरे सस्करण की भूमिका मे उन्होने अपने काव्यादर्शों की व्याख्या करते हुए लिखा है –

'इन कविताओ मे हमारा प्रधान उद्देश्य था घटनाओ और परिस्थितियो का चयन साधारण जीवन से करना तथा उसके वर्णन मे आदि से अन्त तक ऐसी भाषा का चुनाव करना, जिसका व्यवहार लोग वास्तव मे करते हैं, और इसके साथ ही साथ उन्हे कल्पना का ऐसा पुट भी देना था, जिसके कारण साधारण वस्तुएँ भी अद्भुत रूप धारण कर ले।'[38]

वर्ड्सवर्थ की इस घोषणा मे तीन बाते मुख्य है–

1– वर्ड्सवर्थ अपनी कविताओं मे वर्ण्य विषय साधारण जीवन से लेने के पक्ष मे हैं, इस रूप मे उनकी रूचि निम्न श्रेणी के ग्रामीण जीवन में अधिक है।

2– उन्होने आगस्टन सम्प्रदाय के लेखको के आडम्बरपूर्ण और अस्वाभाविक वाक्‌जाल के स्थान पर उस भाषा का प्रयोग करना उपयुक्त समझा है, मनुष्य स्वभावत जिसका व्यवहार करते हैं।

3– वड्‌र्सवर्थ ने जीवन के शुष्क, भावना रहित और कल्पनाहीन वर्णन के विरोध मे उसे कल्पना के रग मे रगकर प्रस्तुत करने का समर्थन किया है।

वर्ड्सवर्थ ने अपनी कृतियो में अपनी अनुभूति, मनुष्य की सहज भावनाओ तथा जीवन के प्राथमिक सारभूत और निर्व्याज स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। उनकी सभी रचनाओ की प्रवृत्ति जीवन के सरलीकरण की ओर है।

सैमुअल टेलर कॉलरिज

कॉलरिज अंग्रेजी रोमाटिक युग के दूसरे उल्लेखनीय कवि हैं। वह 'लिरिकल बैलेड्स' के सहयोगी कवि है। उनकी काव्य समीक्षाओ को उनके काव्य की अपेक्षा अधिक महत्व मिला।

अन्य रोमाटिक कवियो की तुलना मे कॉलरिज बहुपठित तथा बहुश्रुत थे। उनकी रूचि आरम्भ से ही दर्शन, सौन्दर्यशास्त्र, धर्मशास्त्र, राजनीति तथा विज्ञान की ओर रही। अन्य रोमाटिक कवियो के विपरीत उन्होने अपनी काव्य दृष्टि के अर्न्तगत वैज्ञानिक रूपो को समाहित करने का प्रयत्न किया। बाइबिल और ओशियन प्रतीकों के आतिरिक्त उन्होंने हिब्रू, मिस्री एव भारतीय धर्मों एव दर्शनो के प्रतीको को भी अपने काव्य में ग्रहण किया । वे सपूर्ण विश्व को एक विशाल एव सगठित इकाई के रूप मे देखते थे। भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत के बीच सम्बन्ध स्थापन करने के प्रयास मे ही वे जीवन भर विविध रूपको और प्रतीको का प्रयोग करते रहे।

कॉलरिज की प्रमुख कविताऍ 'द एन्शिएण्ट मारिनर', 'क्रिस्टाबेल', 'कुबलाखान', 'लव डिजेक्शन एन ओड', 'फ्रांस एन ओड' हैं। उनके काव्य की सर्वोपरि विशेषता है, उनमे विद्यमान अति प्राकृतिक तत्व। उन्होंने अति प्राकृतिक घटनाओं को मनोवैज्ञानिक आकार प्रदान कर उन्हे एक अतीन्द्रिय तथ्य अथवा दृश्य के रूप मे प्रस्तुत किया है। कालॅरिज के काव्य मे वर्णित प्रत्येक पात्र अथवा घटना एक विचित्र रहस्यात्मकता से ओत–प्रोत है। उनकी अधिकाश कविताऍ स्वप्न का परिणाम हैं । वास्तविकता यह है कि

कॉलरिज स्वप्नो के ही कवि हैं। उन्होने स्वय कहा है– 'मेरी कितनी इच्छा है कि मै भारतीय देवता विष्णु के समान कमल के पुष्प पर विराजमान हो आनन्द सागर मे सतरण करूँ और दस लाख वर्षों की अवधि मे कुछ क्षणो के लिए यह जानने के लिए जागूँ कि मुझे दस लाख वर्ष और सोना है।'[39]

एक अन्य स्थान पर कॉलरिज का कथन है –'स्वप्न मेरे लिए छाया मात्र नही है, वरन् सार तत्व है और मेरे जीवन में दुर्घटना के समान है।'[40]

कालॅरिज की कविताओ मे मध्य युग के प्रति तीव्र आकर्षण दिखाई देता है। वस्तुत कॉलरिज की काव्य चेतना के निर्माण मे मध्ययुगीन पुराण, इतिहास, लोकगीत और दन्त कथाओ का महत्वपूर्ण योग है।

कॉलरिज की कविताओ की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, उनकी अतिशय कल्पनाशीलता। अपनी उत्कृष्ट कल्पनाशीलता के बल पर ही कॉलरिज ने अलौकिक ,अतिप्राकृतिक, रहस्यपूर्ण, विचित्र और असभाव्य को मूर्त सम्भाव्य और विश्वसनीय बना दिया है।

रोमांटिक युग के कवियो पर प्राय यह दोष लगाया जाता है कि वे पूर्ण रूपेण अहवादी हैं। किन्तु कॉलरिज पर यह दोष कदापि नहीं लगाया जा सकता । वे पूर्णतया मानवतावादी कवि हैं। उनकी 'दि एन्शिएट मारिनर' कविता अहंभाव के विरूद्ध एक प्रवचन है।[41]

कॉलरिज के काव्य मे प्राकृतिक सौन्दर्य का भी सूक्ष्म और हृदयग्राही चित्रण हुआ है। वर्ड्सवर्थ के समान ही कालॅरिज भी प्रकृति के अर्न्तगत एक दिव्य सत्ता की सस्थिति मानते हैं। उनके काव्य मे आद्यन्त संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है।

रोमांटिक युग की कविता को कॉलरिज का प्रदेय परिमाण मे अल्प होते हुए भी अत्यत मूल्यवान है। कॉलरिज का वास्तविक महत्व इस बात मे है कि उन्होने अपने काव्य मे विज्ञान और सृजनात्मक कल्पना का अपूर्व समन्वय किया है। भौतिक और आध्यात्मिक जगत के मध्य सम्बन्ध स्थापन ही उनकी काव्य कला का प्रधान लक्ष्य रहा है। इसी सदर्भ मे कॉलरिज का यथार्थ मूल्यांकन किया जा सकता है।

सर वाल्टर स्काट

वाल्टर स्काट के रूप में रोमांटिसिज्म को एक ऐसा व्याख्याता मिला, जो अपने युग मे अत्यधिक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली था। उसका बचपन सीमा प्रदेश के गॉवो में बीता। यहॉ उसने उस स्थान की

निर्जन और ऊबड़–खाबड भूमि से प्रेम करना सीखा और यही उसकी बाल कल्पना उन युद्धो की कथाओ द्वारा जाग्रत हुई, जिनमे उसके पूर्वजो ने स्वय भाग लिया था। बचपन से ही उसे प्राचीन लोक गाथाओ से प्रगाढ प्रेम हो गया और स्वेच्छा से उन्हे सग्रहीत करने लगा। बडे होने पर भी वह स्काटलैंड की घाटियो मे भ्रमण के लिए जाया करता था। जर्मनी के रोमाटिक साहित्य के प्रति भी वह आकृष्ट हुआ तथा उसने कुछ जर्मन लोकगाथाओ का अनुवाद भी किया। उसने 'दि मिन्स्ट्रेल्सी ऑव दि स्काटिश बार्डर' नाम से लोक गाथाओ को प्रकाशित कराया। उसकी अन्य प्रसिद्ध रोमाटिक कविताए है– 'मार्मियन', 'दि लेडी ऑफ दि लेक', 'रोकवी' आदि। यद्यपि उसकी शैली कही–कहीं उखडी और अस्पष्ट है तथापि उसमे आवेग, शक्ति एव स्वच्छन्दता है। उसके काव्य का महत्व रोमाटिक अतीत को पुनरुज्जीवित करने मे है।

लार्ड बायरन

बायरन रोमाटिक युग की द्वितीय पीढी का सर्वाधिक प्रतिनिधि कवि है। उसके साहित्य मे क्रान्ति की उस व्यापक, आवेग पूर्ण, किन्तु अशक्त भावना की अपेक्षाकृत सबसे अधिक अभिव्यक्ति हुई है, जो उस युग की एक प्रमुख विशेषता थी। उसके प्रारभिक कविता सकलन 'फ्यूगिटिव पीसेज', 'पोयम्स ऑन वेरियस अकेजन्स' वर्ष 1807 ई0 मे प्रकाशित हुए। इन रचनाओ के स्वागत से अभिप्रेरित होकर उसने 'आवर्स ऑफ आइडिलनेस' के नाम से अपना तृतीय सकलन प्रकाशित कराया। 'एडिनबरा रिव्यू' ने इस कृति की तीव्र आलोचना की। इस आलोचना का उत्तर बायरन ने अपनी 'इग्लिश वर्ड्स एण्ड स्कॉच रिव्यूअर्स' नामक व्यग्य रचना मे दिया। उसने यूरोप की यात्रा की। सन् 1812 ई0 मे 'चाइल्ड हैरोल्ड पिलिग्रिमेज', के प्रथम दो सर्गो मे अपनी यूरोप यात्रा का विशद एव रोचक वर्णन किया। इस कृति मे समाज द्वारा प्रताडित तथा निष्कासित, स्वप्नछिन्न, सवेदनशील, उदार, तेजस्वी और उदात्त यायावर का जो चरित्र उपस्थित किया है उसमे हम बायरानिक हीरो की रूपरेखा देख सकते हैं। रोमांटिक काव्य के विकास में बायारानिक हीरो का अत्यन्त महत्व है। चाइल्ड हैरोल्ड मे अनजान प्रदेशो के निवासियो, नये दृश्य प्रसगों और वातावरण का अकन जिस गरिमा और अभिनवता के साथ हुआ है, वह रोमांटिक भावधारा के अनुकूल ही है। 'चाइल्ड हैरोल्ड' के प्रकाशन के साथ ही बायरन को विशाल सफलता प्राप्त हुई। बायरन ने स्वय लिखा है– 'एक सुबह मैं उठा और अपने आप को प्रसिद्ध पाया।'[42]

सन् 1812 ई0 से 1816 ई0 तक बायरन ने अनेक पद्य–प्रेमाख्यानको की रचना की। इन प्रेमाख्यानकों मे 'दि कार्सेर', 'लारा', 'दि गिंयौर' 'दि ब्राइड ऑफ एवीडास' तथा 'दि सीज ऑफ कोरिन्थ' विशेष उल्लेखनीय है। 1816 ई0 तथा 1817 ई0 मे क्रमश 'चाइल्ड हैराल्ड्स पिलिग्रिमेज' के तीसरे और चौथे सर्गों का प्रकाशन हुआ। 'प्रिजनर ऑफ शिलान' का प्रकाशन भी वर्ष 1816 ई0 मे ही हुआ। 1817 ई0 मे बायरन ने 'वेम्पो' की रचना की। यह कृति इटालियन बरलेस्क (प्रहसन) की विशेषताओं से समन्वित है। इसमे सामाजिक रीति–रिवाजों एव परम्परागत नैतिक आदर्शों पर गहरा व्यग्य किया गया है। इस कविता की विषय वस्तु भी भिन्न है। इसमे एक ऐसी पत्नी की कहानी कही गयी है, जो अपने पति की अनुपस्थिति मे पर पुरुष से प्रेम करती है। इसकी शैली भी सहज औपचारिक और विनोद पूर्ण है। सन् 1822 ई0 मे 'विजन ऑफ जजमेट' नामक व्यग्य कविता का प्रकाशन हुआ। सन् 1819 ई0 से 1824 ई0 के बीच 'डान जुआन' (Don guan) नामक लम्बी कविता का प्रकाशन हुआ। इस रचना ने उन्हे यूरोप के महत्वपूर्ण कवियो की कोटि में पहुँचा दिया।

बायरन का साहित्य न केवल विशाल था वरन् रूप विधान मे भी विविधता लिए हुए था। किन्तु यह विविधता केवल बाहरी ही है। बायरन एक अहंवादी कवि था, उसने प्रत्येक रचना मे अपनी ही भावनाओ, दुखों और कार्य–व्यापारो का प्रत्यंकन किया है।

एक सिद्धातशास्त्री के रूप मे बायरन ने अपने को आगस्टन सम्प्रदाय का अनुयायी घोषित किया था और रोमाटिक काव्य धारा का विरोध करते हुए पोप की प्रशसा तथा वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज की भर्त्सना की थी। उसकी 'विजन ऑफ जजमेट' तथा 'डान जुआन' जैसी प्रौढ रचनाओ को अठारहवी शताब्दी की शास्त्रीय काव्य परम्परा के अन्तर्गत रखना ही उचित जान पडता है। फिर भी बायरन का रोमाटिक कवि के रूप मे अध्ययन करना दो कारणो से आवश्यक प्रतीत होता है। प्रथमत इसलिए कि बायरन रोमांटिक युग के दूसरे चरण में उत्पन्न हुए और इस ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। द्वितीयत. इसलिए भी कि बायरन की 'चाइल्ड्स हैराल्ड पिलिग्रिमेज', 'प्रिजनर ऑफ शिलान' तथा 'मेनफ्रेड' आदि रचनायें नि संदिग्ध रूप मे रोमांटिक युग की भावधारा को अभिव्यक्त करती हैं।

पी0 बी0 शेली

शेली अग्रेजी रोमाटिक युग के प्रतिनिधि कवि हैं। परिमाण की दृष्टि से शेली का साहित्य अत्यन्त विपुल है। उनकी प्रथम काव्य कृति है– 'क्वीनमेव', जिसका प्रकाशन सन् 1813 ई0 मे हुआ। इस कविता मे शेली की मानव कल्याण की आवेश पूर्ण भावना मुखरित हुई है। उनकी दूसरी काव्यकृति है– 'एलास्टर' या 'दि स्प्रिट ऑफ सालीट्यूड' जिसका प्रकाशन सन् 1816 ई0 मे हुआ। यह एक प्रकार की दार्शनिक आत्मकथा है। शेली की प्रमुख कृतियॉ हैं– 'दि रिवोल्ट ऑफ इस्लाम', 'जूलियन एण्ड मडालो', 'दि येन्सी' (नाटक), 'प्रोमेथ्यूज अन्बाउन्ड' (गीति नाट्य) 'एपिसाइकीडियन', 'ओड टु दि वेस्ट विन्ड', 'दि सेन्सिटिव प्लाण्ट', 'दि क्लाउड', 'टु ए स्काईलार्क' 'एडीनेस' आदि ।

शेली अपने व्यक्तित्व, स्वभाव, आचरण और व्यवहार से भी एक कवि ही था। उसकी भावनाएँ, मनोदशाएँ, अनुभूतियॉ व विचार सहज–स्वाभाविक रूप से कविता मे ही अभिव्यक्त होते थे। शेली एक अतिशय भावप्रवण एव सवेदनशील व्यक्ति था। वह सदैव इस संसार से दूर किसी कल्पना लोक मे विचरण किया करता था। वह एक स्वप्नद्रष्टा, कल्पनाजीवी और आदर्शवादी कवि था। जीवन की वास्तविकताओ से उसका कोई प्रयोजन न था। उसकी भावनाएँ, विचार और आदर्श ही उसके लिए सब कुछ थे। सभी प्रकार की भौतिक सत्ता, मनुष्यकृत नियम, सासारिकता, नैतिक बधन, धर्मान्धता, हठवादिता से उसे अतीव घृणा थी, क्योकि उसका विश्वास था कि इन बुराइयो ने ही मनुष्य की आध्यात्मिक दृष्टि को रुद्ध और विकृत कर दिया है। शेली की मान्यता थी कि प्रेम की महती शक्ति द्वारा ही इन बुराइयो का उन्मूलन हो सकता है। वस्तुत शेली ने अपना जीवन स्वतन्त्रता, सौन्दर्य और प्रेम की खोज मे ही समर्पित कर दिया। स्वतन्त्रता, सौन्दर्य और प्रेम उसके लिए पर्यायवाची थे।

शेली के काव्य मे प्रकृति का भी महत्वपूर्ण स्थान है। वह प्राकृतिक सौन्दर्य का उत्कृष्ट उपासक था और अपना अधिकांश समय प्रकृति के साहचर्य में ही व्यतीत करता था। इसी कारण उसके काव्य मे सरिताओं, सागरो, गहन वन प्रदेशों की नीरवता, शारदीय धूप, पर्वत श्रृगों पर मेघो का नर्तन, पुष्पो के अन्तर्गत वर्ण और पक्षियो के कलरव आदि के सजीव चित्र प्रस्तुत हुए हैं। प्रकृति शेली के लिए बौद्धिकता का स्रोत, प्रेम का प्रतीक और सौन्दर्य का आगार है।

शेली ग्रीक सस्कृति और साहित्य का उत्कृष्ट विद्वान था। वह ग्रीक दार्शनिक प्लेटो की विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित था। शेली की सामाजिक और राजनीतिक धारणाओ, साहित्य एव कविता सम्बन्धी स्थापनाओ तथा धार्मिक व नैतिक मान्यताओ की पृष्ठभूमि मे प्लेटो के सिद्धान्त ही हैं।

शेली के काव्य मे आदर्शवादिता, लोकमगलकारी भाव, नूतन चेतना, स्वाभाविकता और सगीतात्मकता का सुन्दर सामजस्य हुआ है। अग्रेजी साहित्य ही नही, विश्व की सभी भाषाओ के साहित्य पर शेली का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव पडा है।

जॉन कीट्स

रोमाटिक युग की द्वितीय पीढी के महत्वपूर्ण कवियो मे जॉन कीट्स अंतिम कवि है। छब्बीस वर्ष की अल्पायु मे ही जॉन कीट्स की मृत्यु हो गयी। उनका सम्पूर्ण साहित्यिक प्रदेय उनके पॉच–छ वर्षों के रचना का परिणाम है। उनका प्रथम काव्य सग्रह 1817 ई0 मे 'पोयम्स' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। कीट्स का मानना था कि प्रकृति काव्य की अत्यन्त प्रेरणा स्रोत है तथा यदि कोई व्यक्ति प्रकृति से पूर्ण साहचर्य स्थापित करना चाहता है तथा उसके सौन्दर्य और रहस्य का रसास्वादन करना चाहता है तो उसके लिए आवश्यक है कि वह मानव प्रकृति का अध्ययन करे। वस्तुत कविता मानव–जीवन की काव्यात्मक समीक्षा है।

सन् 1817 ई0 मे ही कीट्स की दूसरी कृति 'एण्डीमियन' प्रकाशित हुई। इसका कथानक एक प्राचीन यूनानी पौराणिक कथा पर आधारित है। सन् 1818 ई0 मे कीट्स की अगली रचना 'इजाबेला' या 'दि पार्ट ऑफ बेसिल' प्रकाशित हुई। यह करूण रस से ओत–प्रोत रचना है। इसकी प्रधान पात्रा इजाबेला के दो भाई अपनी बहन के प्रेमी लोरेन्जो की हत्या कर देते हैं और उसके शव को जगल मे छिपा देते हैं। लोरेन्जो का प्रेत इजाबेला को स्वप्न में इस जघन्य कृत्य की सूचना देता है। इजाबेल जगल से अपने प्रेमी के सिर को ले आती है और तुलसी के पात्र मे रख लेती है, किन्तु उसके भाई उर पात्र को चुरा ले जाते हैं। भग्नहृदया इजाबेला अन्त मे, मृत्यु को प्राप्त होती है। कथा में प्रवाह औ मर्मस्पर्शिता का गुण है। स्थान–स्थान पर सजीव बिम्बो का भी विन्यास हुआ है।

कीट्स की प्रमुख रचनाओ मे 'हाइपेरियन' (महाकाव्य), 'लैमिया' (प्रदीर्घ कविता), 'ईव ऑफ सैण्ट इग्निस' हैं। कीट्स के मृत्योपरात उसका 'ला वेल दाय सा मर्सी' नामक प्रगीतात्मक प्रेमाख्यानक प्रकाशित हुआ। इसे कीट्स की सर्वोत्कृष्ट कविता माना जाता है।[43] कीट्स की कला का चरम विकास उसके संबोध–गीतो में होता है। 'टु ए नाइटिंगेल', 'टु साइके', 'टु आटम' आदि सबोध गीत अत्यत समृद्ध रचनाएं हैं।

कीट्स विशुद्ध रूप से कलात्मक स्वभाव से सम्पन्न कवि थे। इसी कारण उन्होने सदैव कला और सौन्दर्य के ससार मे विचरण किया। वे राजनीतिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक मत मतान्तरो, वादो–प्रवादो तथा आन्दोलनो के प्रति सदैव उदासीन रहे और न उन्होने अपने काव्य मे तत्कालीन सामाजिक मनोदशा तथा जनजीवन की परिस्थितियो का कभी चित्रण ही किया। कीट्स के मतानुसार कविता का उद्देश्य किसी सामाजिक सिद्धान्त, धार्मिक उपदेश अथवा राजनीतिक वाद की अभिव्यक्ति करना न होकर सौन्दर्य का शोध करना है। कीट्स के जीवन और काव्य का मूलादर्श ही सौन्दर्यकामिता रहा है। 'एण्डीमियन' की विख्यात प्रथम पक्ति 'सुन्दरता की वस्तु सदा आनन्द विधायक है'– यह कीट्स के काव्य का प्रधान स्वर व्यंजित हुआ है।[44] कवि ने अपने एक पत्र मे लिखा है– 'मैंने समस्त वस्तुओ मे सौन्दर्य के सिद्धान्त से ही प्रेम किया है।'[45]

कीट्स के काव्य मे सर्वत्र पलायनवादी प्रकृति के दर्शन होते हैं। उसे आधुनिक संसार कठोर, भावना रहित, शुष्क तथा नीरस प्रतीत होता है। अतएव अपने स्वभाव के अनुसार उसने इस ससार से पलायन कर कल्पना लोक मे रमण का प्रयत्न किया।

रोमाटिक कालीन अन्य कवियो की तरह ही कीट्स भी प्राकृतिक सौन्दर्य का महान चित्रकार है अपनी कविता में उसने प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृश्यों का अत्यन्त सफलता पूर्वक अकन किया है।

तीव्र संवेदनशीलता तथा कल्पना–प्रवणता के कारण कीट्स अपनी अनुभूतियो को बिम्बो द्वा अभिव्यंजित करने में अत्यंत कुशल थे। उनके काव्य के रचना विधान पर दृष्टिपात करने पर यह बा सहज ही परिलक्षित होती है कि कीट्स एक सचेष्ट कलाकार थे। वे अपनी कविताओ को किसी क्षण द

विशिष्ट प्रेरणा के भरोसे न छोडकर उनमे निरन्तर परिष्कार व परिवर्तन करते रहते थे। कलागत सयम एव जागरूकता उनके काव्य को उनके समकालीन कवियो के काव्य से पृथक् कर देते है।

रोमाटिक युग की द्वितीय पीढी का अतिम कवि होने के कारण कीट्स का ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। इस सदर्भ मे विचारणीय बात यह है कि शैली एव छद आदि की दृष्टि से कीट्स अपने अन्य समकालीन कवियो की अपेक्षा अधिक रोमाटिक है। कीट्स का काव्य सौन्दर्य चेतना की ओर प्रवृत्त है।

रूस में रोमांटिक आन्दोलन

रोमाटिक आन्दोलन जर्मनी, फ्रास और इग्लैण्ड के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय देशो मे भी फैला। अग्रेजी और जर्मनी की रोमाटिक धारा का प्रभाव रूस पर भी पडा। रूस के प्रथम रोमाटिक कवि पुश्किन ने काव्य और कलाओ को रूढिवादिता की सीमा से बाहर निकालकर उसे स्वाभाविक बनाने का प्रयास किया।

अलेक्जेंडर पुश्किन

पुश्किन (1799 ई0–1837 ई0) को रूसी रोमाटिक आदोलन का आरभकर्ता माना जाता है। उसकी प्रमुख कृतियाँ 'कवि मित्र के लिए', 'ओड टु लिवर्टी', 'चादायेव के लिए', 'देश', 'काकेशस के कैदी', 'बाख्मीसराम का फौव्वारा', 'येत्गेनी अनेगिन', 'बोरिस गोदुनोव', 'मोजार्ट और सालेरी', 'काम्येनी गोस्त्र', 'प्लेग के समय भोज', 'दुब्रोवस्की', 'कप्तान की बेटी', हुक्म की बेगम आदि हैं।

पुश्किन की साहित्य यात्रा अपेक्षाकृत छोटी उम्र में ही शुरू हो गयी थी। उस समय का साहित्यिक वातावरण मुख्यत· उत्तर क्लासिज्म और रोमांटिसिज्म के सौन्दर्य बोध के वर्चस्व से प्रभावित था। निरंकुश सत्ता द्वारा नियंत्रित समाज मे रहते हुए रोमाटिक रूझान वाले कवि पुश्किन के लिए जीवन और कृतित्व का उद्देश्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता के सघर्ष मे देखना स्वाभाविक था। आरम्भिक रचनाओ मे स्वतन्त्रताकामी व्यक्ति ही उनकी चिंताओ के केद्र मे दिखाई देता है।

पुश्किन का रचना–ससार देश की सीमाओ मे कभी बँधा नहीं रहा। अपनी रचनाओ के उपयुक्त कथानको और चरित्रो के लिए वह निर्बाध रूप से कहीं भी जा सकते थे, शर्त सिर्फ यही रही कि ये चरित्र या कथानक उसकी सौन्दर्य और वैचारिक जरूरतो को पुरा कर सके।

व्यक्ति की स्वतन्त्रता पूरे समाज और राष्ट्र की स्वतत्रता से जुडी होती है– यह समझ पुश्किन को एक राष्ट्र के रूप मे रूस की ऐतिहासिक नियति को पहचानने के लिए प्रेरित करती है। शासक और जनता के पारस्परिक सबंधो का अध्ययन करते हुए पुश्किन इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि निर्णायक शक्ति अंतत· जन सामान्य ही है। अपने आक्रोश में यह गूगी और नासमझ जनता सत्ता के सारे छद्मो और आडम्बरो को उखाड फेकती है।

विश्व मे ऐसे कम ही कवि– लेखक हुए हैं जिनके कृतित्व का अपने देश के सास्कृतिक, साहित्यिक और आत्मिक जीवन से इतना अंतरग सम्बन्ध है जितना पुश्किन की रचनाओ का। पुश्किन की रचनाएं बचपन से बुढापे तक एक समान हर परिस्थिति मे सच्चे समझदार दोस्त की तरह साथ देती आयी हैं। बचपन में लोक कथाओं का ससार, किशोरावस्था मे प्रेमानुभूतियॉ, दाम्पत्य जीवन मे पति–पत्नी द्वारा एक दूसरे की भावनाओ को समझने और निभाने मे पथ प्रदर्शन और इससे बढकर मनुष्य के समृद्ध और जटिल अंतर्जगत् की सरचना को ध्यान मे रखना– ये गुण हैं पुश्किन की रचनाओ के, और यही गुण हैं, जिन्हे आत्मसात करने मे हरेक को पुश्किन का काव्य सतत प्रेरित करता है।

पुश्किन को अपने समय की काव्य भाषा की सीमाओ का पूरा अहसास था। भाषा की कृत्रिमता और अत्यधिक शैलीकृत रूप को अपनी रचनाओ में बदलने का वह जीवन भर प्रयास करते रहे।[46]

रोमांटिक आन्दोलन को अन्य कवियो ने भी आगे बढाया। गोगल ने यूक्रानियॉ और कासफ के निवासियों के ग्रामीण जीवन की कहानियो के आधार पर काव्य–रचना करके रोमाटिक काव्य को प्रोत्साहन दिया।

इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी मे जन्म लेकर रोमाटिक काव्य–आन्दोलन उन्नीसवीं शताब्दी संपूर्ण यूरोप मे फैल गया। इंग्लैण्ड में यह आन्दोलन सर्वाधिक उत्कृष्ट एव सफल रहा। वर्ड्सवर्थ, शेर्ल बायरन, कीट्स आदि रोमांटिक कवियो ने यूरोप ही नहीं, पूरे विश्व के साहित्य को प्रभावित किया।

रोमांटिक आन्दोलन का ह्रास

प्रत्येक युग का साहित्य अपने युग की परिस्थितियो से प्रभावित होता है। अत वह निश्चित ही युगीन वातावरण के अनुकूल अपना स्वरूप परिवर्तित करता रहता है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। अठारहवीं शताब्दी के जिस वातावरण ने रोमांटिक प्रवृत्तियो को जन्म दिया था, उन्नीसवीं शताब्दी मे वह शीघ्रता से परिवर्तित होने लगा था। रोमाटिक प्रवृत्तियो के विपरीत तर्क, उपयोगितावाद, भौतिकवाद, इत्यादि के नवीन प्रभाव सबल और सक्रिय हो उठे थे। सामतवादी व्यवस्था का अवसान हो चुका था और पूँजीवादी व्यवस्था स्थापित होकर उसके भयंकर परिणाम भी सामने आ चुके थे। औद्योगिक उन्नति के कारण शोषणकर्ता और शोषितो के नये वर्ग स्थापित हो चुके थे। वैज्ञानिक जीवन–दृष्टि ने मनुष्य को कल्पनाशील के स्थान पर तर्कशील बना दिया था। भावना की अपेक्षा दृश्यमान वस्तु – जगत का महत्व अधिक हो गया था। अत. यथार्थवादी साहित्य की उपयुक्त भूमि तैयार हो चुकी थी और इसी भूमि में कल्पना और भावना–प्रधान रोमाटिक प्रवृत्तियों का टिके रहना कठिन था।[47]

डार्विन के विकासवाद के वैज्ञानिक सिद्धांत ने मुनष्य को अन्य प्राणियो की भाँति एक विकसित जीव सिद्ध कर दिया। इस विचारधारा के प्रभाव से साहित्य मे प्रकृतवाद का जन्म हुआ, जिससे रोमाटिक भाव–धारा को गहरा धक्का लगा।

मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित होकर साहित्य मे समाजवादी यथार्थवाद का जन्म हुआ, जो कल्पना के प्रतिकूल ठोस व्यावहारिक सत्य पर आधारित था। रोमाटिक साहित्य भावना प्रधान था और बाह्य सामाजिक परिस्थितियो की उपेक्षा करता था। इसके विपरीत परवर्ती यथार्थवादी साहित्य ने बाह्य स्थूल जगत को ही मुख्य माना और भावजगत को नगण्य स्थान दिया। क्योकि यथार्थवादी साहित्य समकालीन वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुकूल था, फलस्वरूप रोमाटिक साहित्य का सृजन अवरुद्ध हो गया।

डार्विन और मार्क्स के अतिरिक्त मनोविश्लेषणशास्त्री फ्रायड की विचारधारा ने भी उन्नीसवीं शताब्दी को अत्यधिक प्रभावित किया। मनोविश्लेषणात्मक साहित्य अन्तर्दृष्टि प्रधान था, जिसमें मानस लोक का चित्रण विशेषत. किया गया। इसे अन्तश्चेतना का यर्थार्थवादी साहित्य भी कहा गया है।

डार्विन, मार्क्स और फ्रायड की विचारधाराओ के प्रभाव से विकसित यथार्थवादी साहित्य के प्रचार–प्रसार से रोमाटिक साहित्य का सृजन रूक गया।

जहॉ युगीन वातावरण मे अनुकूल साहित्य की संरचना मे परिवर्तन होना अनिवार्य है, वहॉ प्रकृति विशेष की अतिशयता भी उसके लिए उत्तरदायी है। एफ0 एल0 लुकास के शब्दों में– 'जिस प्रकार मदिरा का एक चषक मनुष्य की विचार शक्ति या प्रतिभा और पर्यवेक्षण शक्ति को तीव्र बनाकर शरीर मे स्फूर्ति का सचार कर सकता है, किन्तु उसके एक दर्जन गिलास का पान उसकी शक्ति को गिरा देता है। उसी प्रकार रोमाटिक प्रवृत्तियो का आनुपातिक प्रयोग साहित्य के लिए स्वास्थ्यकर था तो उनका अतिरेक हानिकर और प्रभावहीन बनाने वाला था। वास्तव मे रोमाटिसिज्म का ह्रास या पतन इसी बात का साक्षी है।'[48]

जिस प्रकार यूरोप का क्लासिक युग अपने शस्त्रीय अतिरेक के कारण अनुपयोगी होकर स्पन्दनहीन हो गया था, उसी प्रकार रोमाटिक युग की कल्पना और भावना के अतिरेक ने अव्यवस्था को जन्म दिया और रोमांटिक साहित्य जीवन निरपेक्ष हो गया। यह यथार्थ जीवन और वस्तु जगत से बहुत दूर जा पडा। निष्कर्षत कहा जा सकता है कि अन्य वादो की भॉति रोमाटिसिज्म (स्वच्छन्दतावाद) भी अपने अतिरेकी, विकृत एव अस्वस्थ रूप तथा प्रतिकूल युगीन परिस्थितियो के कारण टिका न रह सका।

रोमांटिसिज्म की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

सामान्य रूप से देखा जाता है कि साहित्य के क्षेत्र मे कोई भी वाद या सम्प्रदाय हमेशा के लिए टिका नहीं रह सकता। किसी सम्प्रदाय या वाद का निर्माण होता है, उसका उत्कर्ष काल आता है, फिर उसका विरोध शुरू होता है और एक नये साहित्यिक वाद का जन्म होता है। नया सम्प्रदाय पहले के विरोध मे जन्म लेता है, किन्तु वह उसकी प्रवृत्तियो या विशेषताओ से अपने को पूरी तरह मुक्त नहीं कर पाता। कई विरोधी साहित्यिक सम्प्रदाय या वाद एक ही समय प्रचलित रहते हैं। प्रत्येक वाद की कोई न कोई प्रवृत्ति किसी न किसी रूप मे अन्य वादो मे भी विद्यमान रहती है। इस तरह किसी वाद को दूसरे वाद से पूरी तरह पृथक् नही किया जा सकता। ऐसी स्थिति मे यह जरूरी हो जाता है कि अन्य वादो की भी प्रवृत्तियो से अवगत हुआ जाय।

स्वच्छन्दतावाद और अन्य वाद

स्वच्छन्दतावाद (रोमाटिसिज्म) को सही रूप मे समझने के लिए अन्य वादो से उसकी भिन्नता और समानता पर विचार करना आवश्यक है। शास्त्रीयतावाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद, प्रतीकवाद तथा रहस्यवाद आदि वादो (सिद्धान्तों) से स्वच्छन्दतावाद की तुलना करने पर इसकी मुख्य प्रवृत्तियो से अवगत हुआ जा सकता है।

स्वच्छन्दतावाद और शास्त्रीयतावाद

ऐसा माना जाता है कि शास्त्रीयतावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप स्वच्छन्दतावाद का उदय हुआ। स्थूल रूप से शास्त्रीयतावाद (Classicism) शब्द का प्रयोग कला और साहित्य की कुछ साधारण विशेषताओ ,जैसे–सरलता, नियत्रण एव क्रमबद्धता को सक्षिप्त रूप से अभिव्यक्त करने के लिये होता है। डॉ0 देवराज उपाध्याय के शब्दो मे–'क्लासिक शब्द का अर्थ है–सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय, गभीरतम अर्थात् ऐसी वस्तु जिसकी समता ससार की कोई वस्तु न कर सके। × × × × × जब हम क्लासिक शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा मतलब एक ऐसे काव्य से होता है जो अपनी महानता, ऊँचाई और गौरव मे ससार के अन्य काव्यो को पीछे छोड जाता हो। × × × × × भारत मे हम लोग कलात्मक, अनुकरणीय आदर्शों के लिए कालिदास, वाल्मीकि और तुलसीदास की ओर देखते हैं। यूरोप मे ग्रीक एव रोमन की श्रेष्ठ रचनाओ को क्लासिकल कहा जाता है, साथ ही साथ उनके आदर्शों को सामने रखकर उनके अनुकरण पर जिस साहित्य का सृजन होने लगा, उसे भी क्लासिकल कहा जाने लगा। इग्लैण्ड मे सन् 1660 ई0 से सन् 1798 ई0 तक का साहित्य–सृजन होमर, वर्जिल, हॉरेस और अरस्तू के आदर्शों पर हुआ। अतः इस काल को साहित्य का 'क्लासिकल युग' कहते हैं।'[49]

क्लासिक और रोमांटिक साहित्य का अन्तर करते हुये डॉ0 देवराज उपाध्याय ने लिखा है– 'क्लासिक साहित्य उसे कहते हैं जिसमे ईसा पूर्व पॉचवी शताब्दी के ग्रीक साहित्य से समानता हो। उसी तरह रोमाटिक शब्द उस साहित्य के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जिसमे तेरहवीं शताब्दी ए0 डी0 की रोमन भाषाओ से उत्पन्न साहित्य मे समानता पायी जाय। × × × × × यह स्पष्ट है कि दोनो

क्लासिक श्रेणी के साहित्य मे जो समानता है वह आकार प्रकार की है और रोमाटिक श्रेणी की कविताओ मे बाहरी परिधान की बात छोडकर समानता है– आन्तरिक स्पिरिट की।'[50]

स्कॉट जेम्स के अनुसार– 'शास्त्रीयवाद सदा मध्यम मार्ग की खोज मे रहता है, वहीं दूसरी ओर रोमाटिक अति की। क्लासिक को शक्ति पसद है, रोमाटिक को साहसिकता आकर्षित करती है। एक परम्परा की ओर देखता है, दूसरे में नूतनता की चाह होती है। एक पक्ष मे वे सब गुण–दोष आ सकते है जिनका सम्बन्ध चुस्ती, दुरूस्ती और औचित्य, सतुलन, सयम, गतानुगतिकता, अनुशासन, शान्ति, अनुभव आदि के साथ है। दूसरे के पक्ष मे उन गुण और दोषो का समावेश है जो आवेश, शक्ति, आकुलता, आध्यात्मिकता, कुतूहल, प्रक्षुब्धता, प्रगति, स्वातत्र्य, प्रयोगिता और उत्तेजकता की भावनाओ के साथ–साथ चला करते हैं।'[51]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दो मे – 'वह काव्य धारा जो काव्य और कला के व्यक्त सौन्दर्य–प्रसाधनो, सुन्दर शब्दो और आकृतियो आदि का आग्रह करके चलती है, क्लासिज्म की प्रतिनिधि कही जाती है। × × × × × इसी प्रकार जो काव्य धारा अत्यन्त अनियमित पद्धति, सयम रहित प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है, वह रोमाटिक गति की सूचक है। × × × × × भावना की अराजकता रोमाटिक काव्य का अतिवाद है और बाह्य रूप की सूक्ष्मातिसूक्ष्म पाबदी क्लासिकल काव्य का अतिवादी रूप है।'[52]

अस्तु, शास्त्रीयतावाद और स्वच्छन्दतावाद मे निम्नलिखित अतर किये जा सकते हैं –

1 स्वच्छन्दतावादी कवि संवेगो से परिचालित होता है, जबकि शास्त्रीयतावादी बुद्धि–तर्क का सहारा लेता है।

2 शास्त्रीयतावादी सामान्यीकरण पर बल देता है, जबकि स्वच्छन्दतावाद की विशिष्टता है– वैयक्तिकता बोध।

3 शास्त्रीयतावाद मे परम्परा के प्रति मोह है, उसके प्रति श्रद्धा है, जबकि स्वच्छन्दतावाद मे परम्परा के प्रति विद्रोह है।

4 शास्त्रीयतावादी प्रकृति को स्थूल पदार्थ मानता है, जबकि स्वच्छन्दतावादी प्रकृति मे असीम सत्ता के दर्शन करता है, मानव–मन पर उसके गहरे प्रभाव को स्वीकार करता है, उसे कल्पना और अनुभूति का उद्रेक करने वाला स्रोत मानता है।

5 शास्त्रीयतावाद का बल आडम्बरपूर्ण अभिव्यक्ति पर था, जबकि स्वच्छन्दतावादी कवि अपने भावो को सहजता से व्यक्त करने मे विश्वास करता है। शास्त्रीयतावादी काव्य अभिधामूलक है, जबकि स्वच्छन्दतावादी काव्य व्यंजनात्मक है।

6 शास्त्रीयतावादी कवि रूप–विधान और शिल्प पर अधिक ध्यान देता था, जबकि स्वच्छन्दतावादी कवि सवेग, भावोद्रेक और कल्पना का सहारा लेता है।

7 शास्त्रीयतावादी काव्य में सयम की प्रधानता है, जबकि स्वच्छन्दतावादी काव्य ने वर्जनाओ को तोडा है।

8 शास्त्रीयतावादी कवि जीवन और जगत् को यन्त्रवत् मानता था, जबकि स्वच्छन्दतावादी कवि के लिये जगत् आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण है।

9 शास्त्रीयतावादी कवि की विषय–वस्तु सीमित है, जबकि स्वच्छन्दतावादी कवि की विषयवस्तु असीम है।

10 शास्त्रीयतावाद कला प्रधान है, जबकि स्वच्छन्दतावाद भाव प्रधान है।

स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद

यथार्थवाद शब्द का प्रयोग आदर्शवाद और स्वच्छन्दतावाद के विरोध मे उन साहित्यिक कृतियो के लिए किया जाता है, जो वास्तविक जीवन की अनुकृति से निर्मित होती हैं और जो अपनी विषय–वस्तु वास्तविक जीवन से ग्रहण करती हैं। यथार्थवादी लेखक वह होता है जो वस्तून्मुखी दृष्टिकोण धारण करता है और अपनी रचना मे अपनी व्यक्तिगत भावनाओ और विचारो को सन्निविष्ट न करके अपनी विषय–वस्तु का निर्वाह छाया–विवरणात्मक अथवा हीन शैली मे धारण करता है। एच0 लेविन के अनुसार– 'साहित्य में यथार्थवाद उस पद्धति को कहते हैं जिसका उद्देश्य जीवन मे सभी वस्तुओ का पूर्ण निष्ठामय चित्रण एवं प्रकृति का प्रस्तुतीकरण है। यह प्रवृत्ति सौन्दर्य के लिए वास्तविकता के

आदर्शीकरण को, अभिव्यंजना के शैलीकरण को और आध्यात्मिक और अतिप्राकृतिक विषय वस्तु के निर्वाह को अस्वीकृत करती है।'[53] जार्ज लुकास और हॉवर्ड फास्ट भी यथार्थवादी साहित्य मे वास्तविकता के तटस्थ चित्रण को अनिवार्य मानते है। जिस प्रकार स्वच्छन्दतावाद शास्त्रीय पद्धति के बधन की अतिशयता के विरोध मे विकसित हुआ था, उसी प्रकार यथार्थवाद स्वच्छन्दतावाद की अतिशय कल्पनाशीलता के विरुद्ध उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे साहित्य और कला मे विकसित मनोवृत्ति थी।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दो मे– 'उन्नीसवीं शताब्दी मे, विशेषकर फ्रास के कलाकारो ने रोमाटिसिज्म की कल्पनाशीलता के विरुद्ध यथार्थ और वास्तविकता की पुकार उठायी और कथा साहित्य के अन्तर्गत यथार्थवाद, तथ्यवाद और प्रकृतवाद का प्रवेश कराया।'[54]

किन्तु व्यापक अर्थों मे यथार्थवाद केवल रोमाटिक कल्पना के विरुद्ध ही नही, अपितु उस युग की और भी अनेक प्रवृत्तियो के विरुद्ध उत्पन्न प्रतिक्रिया थी। पूँजीवादी व्यवस्था के भयकर परिणाम, वैज्ञानिक दृष्टि और डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त ने रोमाटिक भावधारा को गहरा धक्का दिया। मनुष्य की दृष्टि मे कल्पना अथवा भावना की अपेक्षा वस्तु–जगत का अधिक महत्व हो गया। यूरोप मे उन्नीसवी शताब्दी के इसी प्रकृतिवादी दृष्टिकोण से यथार्थवाद का आरम्भ होता है, जिसने आगे चलकर मार्क्स के समाजवाद और फ्रायड के मनोविज्ञान के प्रभावों को भी ग्रहण कर विभिन्न रूप धारण किये।[55]

कार्ल मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित होकर डार्विन के विचारो से उद्भूत प्रकृतिवाद के स्थान पर समाजवाद–यथार्थवाद की स्थापना हुई, जो प्रकृतिवाद की अपेक्षा समाज के लिए कही अधिक उपयोगी था। मार्क्सवाद द्वारा समाज के ऐतिहासिक विकास और उसकी वर्तमान स्थिति पर वैज्ञानिक प्रकाश पडा। इसमे भौतिकवादी जीवन दर्शन की प्रधानता थी, वस्तु–जगत (विशेषकर आर्थिक) को सर्वाधिक महत्व दिया गया और दृश्यमान बाह्य जगत को प्रधान स्थान। हिन्दी साहित्य मे यथार्थवादी प्रवृत्तियो का आविर्भाव मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित हिन्दी के प्रगतिवादी साहित्य मे हुआ।

जहॉ तक स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद मे अन्तर का प्रश्न है, प्रथम, कल्पना और भावजगत को महत्व देता है, तो द्वितीय दृष्टिगोचर एव अनुभवजन्य जगत को। प्रथम का उद्देश्य मानसिक और भावात्मक है, दूसरे का उद्देश्य भौतिक एवं व्यावहारिक। स्वच्छन्दतावादी साहित्य शुद्ध कलात्मक है,

यथार्थवादी साहित्य उपयोगिता प्रधान। स्वच्छन्दतावादी अपने विषयो का चुनाव असामान्य, असाधारण और अलौकिक वस्तुओ मे से करता है, यथार्थवादी सामान्य और साधारण को अपनाकर चलता है। स्वच्छन्दतावादी का दृष्टिकोण आत्मगत होता है, यथार्थवादी का समाजगत। स्वच्छन्दतावादी का सत्य काल्पनिक और काव्य का सत्य है और यथार्थवादी का ठोस भौतिकवादी। डॉ0 भगीरथ मिश्र के शब्दो मे– 'वह धारणा जिससे प्रेरित होकर साहित्यकार नित्य–प्रति, देखे–सुने, भले–बुरे चरित्रो और परिस्थितियो का चित्रण करता है। वह अनिवार्यतः यह ध्यान नहीं रखता कि ये चरित्र या परिस्थितियॉ मानव समाज की भलाई करेगी या बुराई, साहित्य मे यथार्थवाद कहलाती हैं।[56] भाषा और शैली के सम्बन्ध मे दोनो ही स्वच्छन्द है। किन्तु स्वच्छन्दतावादी की भाषा मे सौजन्य, औदात्य, सौष्ठव एव सौन्दर्य होता है, जबकि यथार्थवादी सरचना की भाषा शैली प्राय. विचार प्रधान, नीरस और शुष्क होती है। प्रकृति से अत्यधिक प्रेम होने के कारण स्वच्छन्दतावादी प्राय ग्रामीण जीवन को प्रधानता देता है, जबकि यथार्थवादी साहित्य मे नागरिक जीवन तथा उसमें श्रमिक वर्ग और उनकी समस्याओ के चित्रण द्वारा दलितो और शोषितों के प्रति विशेष सहानुभूति व्यक्त की जाती है । ग्रामीण जीवन के भी यही पक्ष यथार्थवादी साहित्य मे आते हैं।

स्वच्छन्दतावाद और आदर्शवाद

जीवन की श्रेष्ठ सभावनाओ की कल्पना आदर्शवाद है। आदर्श का स्वरूप–निर्माण देश काल की परिस्थितियो के अनुसार होता है। युग सत्य के अनुकूल सत् की प्रतिष्ठा और असत् की पराजय सकेतित करना आदर्शवादी कवियो का प्रधान उद्देश्य होता है। अपने जीवन की वर्तमान स्थिति और आस–पास के वातावरण से ऊबकर मनुष्य ने अपने जीवन के सुन्दर, सुखद और श्रेष्ठ रूप की कल्पना की, तभी आदर्श का जन्म हुआ। साहित्य मे आदर्शवाद की निम्नलिखित विशेषताए पायी जाती हैं–

1 मनोनुकूल भविष्य की कल्पना एवं जीवन को परिचालित करने वाली किसी अलौकिक शक्ति के प्रति आकर्षण ।

2 समाज मे प्रचलित मान्यताओ का समन्वय एव जीवन के पूर्णत्व का सन्देश।

3 स्वस्थ जीवन–निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन और प्रचार।

4 नैतिक बल और चारित्रिक दृढता के विकास की भावना।

5 जीवन पथ–दर्शन का आग्रह और तदनुकूल उपदेशात्मकता और नीतिमत्ता।

स्वच्छन्दतावाद और आदर्शवाद की तुलना से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दोनों मे कल्पना का प्राधान्य है और दोनो का अलौकिक शक्ति के प्रति आकर्षण है, किन्तु अन्य प्रवृत्तियॉ दोनो वादो मे एक सी नही है। आदर्शवाद समाज मे प्रचलित मान्यताओ मे समन्वय कराने का प्रयत्न करता है, जबकि स्वच्छन्दतावाद रूढियो का तीव्र विरोधी है। स्वच्छन्दतावाद मे नैतिकता, चारित्रिक दृढता और उपदेशात्मकता का नितान्त अभाव रहता है। आदर्शवाद मुख्यत उपयोगितावादी है। स्वच्छन्दतावाद 'कला कला के लिए' सिद्धात का पक्षधर होने के कारण शुद्ध आनन्दवादी है।

स्वच्छन्दतावाद और प्रतीकवाद

प्रस्तुत कथ्य को समर्थ अभिव्यजना देने के अभिप्राय से जब किसी समानधर्मी अथवा समानरूपी स्थूल अथवा सूक्ष्म, अप्रस्तुत से जो कथ्य नही होता, अभिहित किया जाता है। इस अप्रस्तुत को प्रतीक और समूची अभिव्यक्ति को प्रतीक योजना कहते हैं और ऐसी साकेतिक अभिव्यजना की विचारधारा को प्रतीकवाद के नाम से जाना–समझा जाता है। उन्नीसवी शताब्दी मे फ्रास और बेल्जियम मे यथार्थवाद, प्रकृतिवाद की प्रतिक्रिया मे प्रतीकवाद का आन्दोलन प्रारभ हुआ। अत विभिन्न देशो के साहित्य मे विविध प्रकार के प्रतीको का प्रयोग हुआ है। डॉ0 प्रेमनारायण शुक्ल ने काव्य मे प्रयुक्त समस्त प्रतीको को चार श्रेणियो मे विभक्त किया है–परम्परानुगत, देशगत, व्यक्तिगत, युगगत।[57] रहस्यात्मकता की भॉति प्रतीक–योजना भी स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्ति विशेष है।

स्वच्छन्दतावाद और रहस्यवाद

सृष्टि के अणु–अणु में व्याप्त किसी रहस्यमयी शक्ति की अनुभूति और उस परोक्ष सत्ता को जानने–समझने की आतुरता रहस्यवाद का मूल तत्व है। रहस्यवादी काव्य की निम्नलिखित विशेषताए है–

1 ज्ञात–अज्ञात प्रकृति की नियामक सत्ता के प्रति जिज्ञासा।

2 प्राकृतिक रहस्य–सौन्दर्य के प्रति विमुग्ध आकर्षण और उसमें अन्तर्निहित परोक्ष सत्ता के प्रति माधुर्य भावना।

3 प्रेम की पीर और प्रियतम की अनिर्वचनीयता।

4 दार्शनिकता और प्रतीकात्मकता।

इस प्रकार रहस्यवाद का सम्बन्ध अध्यात्म जगत से है। इसकी चिन्तन प्रणाली मे ब्रह्म का अनवरत ध्यान, उसी को समस्त सृष्टि मे व्याप्त पाने की भावना का ग्रहण प्रधान है।[58]

स्वच्छन्दतावाद और रहस्यवाद मे कोई विरोध नही है। स्वच्छन्दतावादी काव्य मे रहस्यात्मकता की सृष्टि प्रभूत मात्रा मे होती है। दोनो मे अन्तर यही है कि रहस्यवादी काव्य मे रहस्यानुभूति की व्यजना प्रमुख रूप से होती है, जबकि स्वच्छन्दतावादी रचनाकारो की यह प्रवृत्ति विशेष है। स्वच्छन्दतावाद मे रहस्यवाद के अतिरिक्त और भी बहुत सी विशेषताए हैं।

स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज्म) की विशेषताएँ

रोमाटिसिज्म के बारे मे आर्थर कॉम्पटन रिकेट (A.C. Ricket) ने 'अंग्रेजी साहित्य के इतिहास' मे लिखा है– 'रोमाटिसिज्म सामान्यत तीव्रतर जानकारी है। उच्च काल्पनिक भावना का कला या साहित्य के क्षेत्र मे एक स्पष्टीकरण है। रोमांटिसिज्म का प्रभाव दर्शन, इतिहास तथा साहित्य के विभिन्न अगो पर दिखाई देता है। उसका 'स्वच्छन्द' के रूप मे लगाया हुआ अर्थ गुण की अपेक्षा दोष का ही अधिक प्रदर्शन करता है। अमर्यादित्व और चैतन्य के पर्यायवाची के रूप मे भी इसका कई बार प्रयोग किया जाता है। रोमाटिसिज्म का आवश्यक तत्व औत्सुक्य और सौन्दर्य–प्रेम ही है। उसके परिणाम का सुप्त उद्‌गम मध्ययुग के अद्‌भुत सौन्दर्य तथा विविध वस्तुओ से सम्बन्धित निश्चित कल्पना मे पाया जाता है।[59] इस विवेचन से सिद्ध होता है कि औत्सुक्य और अद्‌भुद सौन्दर्य दोनो को रोमाटिसिज्म के अन्तर्गत महत्वपूर्ण माना जाता है।

वेर्सफील्ड के अनुसार–'रोमाटिक प्रवृत्ति यह है कि रचना मे समसामयिक जीवन की यथार्थता को व्यक्त किया जाय और ऐसा करने मे यदि प्राचीन मान्यताये खण्डित होती हैं तो उनकी चिन्ता न की जाय। जो लेखक रोमांटिक पद्धति का अनुसरण करते हैं उनकी वृत्तियो मे हम कुछ–कुछ नवीन पाने की आशा करते हैं। यह नवीनता मानव जाति के क्रमिक विकास का कारण और परिणाम दोनो ही होती है

और इसी के कारण साहित्य मानव जाति का एक अंग बन सका है।'[60] अर्थात् कोई भी साहित्यिक रचना आसमान से नीचे नही गिरती। उसे मानव जीवन को ही केन्द्र बिन्दु मानकर आगे बढना होता है।

डॉ0 प्रेम नारायण शुक्ल हिन्दी के रहस्यवादी एव छायावादी काव्य की रोमाटिक काल की अधिकाश प्रवृत्तियो से साम्य स्थापित करते हुए कहते है– 'नवीन छन्दो का विन्यास, प्रकृति प्रियता, ग्रामीण जीवन की झॉकी, यथार्थ की अपेक्षा काल्पनिक चित्रो का विधान, मनोवैज्ञानिकता, अतिशय भावुकता और प्राचीनता के प्रति विद्रोह आदि ऐसी कुछ बाते हैं, जो हिन्दी के रोमांटिक काव्य के स्वरूप का विधान करती हैं।'[61] तात्पर्य यह है कि नवीनता की कामना और विद्रोह की भावना रोमाटिक काव्य की निजी विशेषताए हैं।

मराठी समीक्षक के0 क्षीरसागर के मतानुसार 'रोमाटिक शब्द का रूपान्तरण एक ही शब्द में करना असभव है। मूल अग्रेजी सज्ञा मे जिन लक्षणो का अन्तर्भाव होता है उनको लेकर भिन्न–भिन्न शब्दो का प्रयोग किया जा सकता है। सौन्दर्यवाद, स्वातन्त्र्यवाद, नवीन्यवाद, अद्‌भुततावाद, भावनावाद–इनमे से प्रत्येक शब्द मे रोमाटिसिज्म का एक–एक लक्षण अतर्भूत हुआ है। 'सौन्दर्य मे अद्‌भुतता का निवास' ऐसा रोमाटिसिज्म का एक लक्षण बताया गया है, बल्कि अद्‌भुतता और सौन्दर्य इन दोनो का अन्तर्भाव रोमाटिक भूमिका मे होता है, ऐसा नहीं। इसका मुख्य कारण रोमाटिसिज्म एक शैली या सग्राम नहीं है। रोमाटिसिज्म जीवन की ओर देखने की एक मूलभूत दृष्टि है या अनुभव लेने का एक मार्ग है। रोमाटिक वृत्ति के व्यक्ति मे सौन्दर्य से पुलकित होने की शक्ति अन्यो से अधिक मात्रा मे दिखाई देती है और साथ ही साथ अद्‌भुतता के प्रति प्रेम भी रोमांटिक वृत्ति के व्यक्ति की एक विशेषता माननी होगी।'[62] इससे स्पष्ट है कि यह एक तीव्रतम जीवनानुभूति होती है, जिसमे प्रेम का अनन्य और असाधारण महत्व होता है। रोमाटिसिज्म की मूल प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुये के0 क्षीरसागर ने अपने मत की पुष्टि करते हुए कहा है –'स्वप्निल वृत्ति और संवेदना–पूजन रोमाटिक लोगो की सही विशेषताएं नहीं हैं तो उनकी सामर्थ्य उनकी लगन (Vearning) और भावनात्मक ईमानदारी (Sencerity) मे है।'[63] ये दो गुण इस प्रवृत्ति के मानो दो त्राण हैं। इनके अभाव में रोमांटिक साहित्य का कोई मूल्य नहीं है।

'रीडर्स इनसाइक्लोपीडिया' के अनुसार स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख विशेषताये हैं –व्यक्तिवादिता, प्रकृति–पूजा, स्वतन्त्र विचार और धार्मिक रहस्यवाद की ओर प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति, राजनीतिक सत्ता और सामाजिक परम्पराओ के प्रति विद्रोह, शारीरिक वासनाओ का उन्नयन, स्वान्त सुखाय, भावनाओ और उत्तेजनाओ को प्रोत्साहन तथा अलौकिक, दूषित, एकान्तिक और निर्दय के प्रति अविरल आकर्षण।'[64]

'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ अमेरिकाना' मे रोमाटिसिज्म की कुछ और विशेषताओ की ओर सकेत किया गया है– 'चूँकि स्वच्छन्दतावाद, भावात्मक जीवन मे जो कुछ विचित्र और रहस्यात्मक है उसे अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है, वह स्वभावत· अपनी सामग्री का आधार अतीत मे खोजता है और विशेषतया उस मध्य युग से सहानुभूति रखता है, जबकि भावनागत लालसाये शौर्य या साहसिकता के प्रति प्रेम और रहस्यात्मक बोध की अभिव्यक्ति करती थी। × × × × × अत अतीत के प्रति सहानुभूति और मानवता के प्रति नवीन रूचि रोमाटिसिज्म के चिन्ह हैं।[65]

एफ0 एल0 लुकास, बैविट, अर्नेस्ट वार्नबाम आदि पाश्चात्य विद्वानो ने रोमाटिक कविता को 'कल्पना प्रधान' कहा है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी भी स्वच्छन्दतावादी काव्य मे कल्पना की प्रधानता स्वीकार करते हैं।[66]

डॉ0 हरिकृष्ण पुरोहित के शब्दो मे– 'नव्य श्रेणिक काव्य की परम्परा का विरोध, प्रकृति–चित्रण, आदर्शात्मक विद्रोह, सौन्दर्यवाद, मद, अवसाद, अलौकिक तत्व तथा अतीत का काल्पनिक मनोरम चित्रण अग्रेजी रोमाटिक काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।'[67]

डॉ0 अजब सिह के अनुसार 'स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो की अभिव्यक्ति कवि की कल्पना, अनुभूति, व्यक्तिवाद, मानवतावाद, सौन्दर्य प्रेम, उदात्त तत्व, विस्मय और रहस्यानुभूति, विषाद और असन्तोष, विद्रोह और नवीनता, लोक साहित्य और लोकगीत, अतीत प्रेम (विशेषकर मध्ययुग), प्रकृति प्रेम, मानवीकरण, बिम्ब–विधान, प्रतीक–योजना और संगीतात्मकता आदि विविध रूपो मे हुई है।'[68]

डॉ0 शिवराम माली लिखते हैं कि 'स्वच्छन्दतावादी कलाकार अपने एक विशेष दृष्टिकोण को लेकर उस दृष्टिकोण के अनुसार कलाकृतियों को जन्म देता है। इन कलाकृतियो मे अद्‌भुतरम्यता, स्वप्न

रजन, कलात्मकता, कल्पना शक्ति का प्रस्फुटीकरण और सौन्दर्यवृत्ति का उत्कट आविष्कार उमड पडता है।'[69]

डॉ0 गगाचरण त्रिपाठी ने अपने 'काव्य तत्व' नामक ग्रथ मे 'सौन्दर्यवाद, विद्रोह की प्रवृत्ति अथवा प्रतिक्रियात्मकता, सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति, मानवतावाद, निराशावाद, रहस्यवाद, अतीत का गुणगान, कल्पना प्राधान्य, व्यक्तिवाद अथवा व्यक्तित्व का प्राधान्य, प्रकृति प्रेम, आतरिक प्रेरणा का महत्व, गतिशीलता की स्वीकृति आदि को स्वच्छन्दतावादी विशेषताओं के अन्तर्गत समाहित किया है।'[70]

डॉ0 शान्ति स्वरूप गुप्त ने अग्रेजी काव्य की स्वच्छन्दतावादी धारा की विशेषताओ को दर्शाते हुए 'विद्रोह की प्रवृत्ति, कृत्रितमा से मुक्ति, मध्य युग का प्रत्यावर्तन, कल्पना का प्राधान्य, अद्‌भुत तत्व, व्यक्तिवाद, सौन्दर्य–दृष्टि और ऐन्द्रियता तथा प्रकृति–प्रेम की प्रवृत्ति को गिनाया है।'[71]

निष्कर्षत- स्वच्छन्दतावादी साहित्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

रूढ़िवादिता के प्रति विद्रोह

स्वच्छन्दतावादी साहित्य का निर्माण ही शास्त्रीयतावाद के विरोध मे हुआ। स्वच्छन्दतावादी काव्य मे नीति, धर्म, साहित्यिक परम्पराओं और शास्त्रीयता के विरुद्ध विद्रोह का भाव मिलता है। स्वच्छन्दतावादी कवि किसी प्रकार के पूर्व निर्धारित काव्य नियमो से आबद्ध न रहकर अपनी निजी भावनाओ और अनुभूतियो के अनुरूप काव्य रचना करता है।

सौन्दर्यवादी दृष्टि

स्वच्छन्दतावाद मे सौन्दर्य–प्रेम और सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा– ये दो मुख्य तत्व है। स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार की दृष्टि मे सौन्दर्य ही सत्य है और सत्य ही सौन्दर्य है। उनके काव्य मे सौन्दर्य भावना सर्वत्र मिलती है। वर्ड्सवर्थ की कविता मे जहॉ सौन्दर्य की सूक्ष्म व अपार्थिव व्यंजना हुई है, वहॉ कीट्स की कविता मे रगीनी, यौवन व उल्लास के लिए ऐन्द्रिय चित्रण की प्रधानता है। शेली सपूर्ण प्रकृति को सौन्दर्यमयी पाता है।

व्यक्तिपरकता

आधुनिक साहित्य मे यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई देती है। इसमे साहित्यकार का सपूर्ण व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से प्रतिबिबित होता है। ऐसी कविता समाजगत कम और व्यक्तिगत अधिक होती है। इसमे कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियो का प्राधान्य रहता है। प्रबन्ध काव्य मे यदि नायक आत्म–केन्द्रित व्यक्ति होता है तो गीतिकाव्य मे कवि अपनी उदासी, निराशा, वेदना, व्यथा आदि का चित्रण करता है। काव्य मे विवेक के स्थान पर सवेग, भावुकता, आकांक्षा, आदर्शमयता होती है। वह अरूप की भावना मे रमता है और स्थूल से अधिक सूक्ष्म को महत्व देता है। उसमे गहन अनुभूति होती है और उसकी यह तीव्र अनुभूति ही उसे काव्य–सृजन की प्रेरणा देती है। इसी व्यक्तिवाद के प्राधान्य के कारण कवि अपने ही भावोन्माद में लिप्त रहता है, जिसकी अतिशयता से क्षुब्ध हो गेटे ने रोमांटिसिज्म को रोग कहा था (Romanticism was diseased)।

प्रकृति–प्रेम

स्वच्छन्दतावादी कवि का प्रकृति से विशेष अनुराग रहा है। प्रकृति–प्रेम के कारण कई साहित्यकारो को नयी प्रेरणा मिल चुकी है। उसके प्रकृति–चित्रण मे अत्मीयता होती है। उसमे अभिधात्मकता के स्थान पर व्यजनात्मकता अधिक रहती है। स्वच्छन्दतावादी कवि ने प्रकृति के मुक्त प्रागण मे स्वच्छद विहार किया। रूसो ने मानव को प्रकृति की ओर लौटने के लिए पुकारा था। स्वच्छन्दतावादी साहित्यकारों मे प्रकृति के प्रति आकर्षण अनेक रूपो मे व्यक्त हुआ है। सबसे पहले यह बनावटी सौन्दर्य के तिरस्कार और सहज प्राकृतिक रूपो के प्रति आकर्षण मे दिखाई देता है। औद्योगिक सभ्यता की विकृतियो तथा घुटन से व्याकुल इन सवेदनशील साहित्यकारो के लिए प्रकृति एक शरण स्थली थी। उसे उन्होंने बाह्य जीवन के सुदर परिवेश के रूप मे ही नही बल्कि जीवन के प्रेरणादायक तत्व के रूप मे देखा। प्रकृति के आध्यात्मिक प्रभाव को भी इन्होंने महसूस किया। वर्ड्सवर्थ ने अपनी कविता 'टिटर्न एबे' मे प्रकृति को धात्री, पथ प्रदर्शिका, सरक्षिका तथा अपने संपूर्ण नैतिक अस्तित्व की आत्मा के रूप में संबोधित किया है। प्रकृति के साथ इन रचनाकारो का सम्बन्ध रहस्यवाद तक पहुँचत है, जब वे इसके माध्यम से अपने अन्तर्जगत की पहचान करते हैं या चरम सत्ता का साक्षात्कार करते हैं

प्रकृति मे ये अपने भावो का प्रतिबिब भी देखते हैं और उसके रूपो तथा बिम्बो के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को समृद्ध भी करते हैं।

काल्पनिक व्यामोह

कल्पना को स्वच्छन्दतावाद मे बहुत महत्व मिला। स्वच्छन्दातावादी इस कटु–कठोर जगत से दूर रहना चाहता है, नवीन और अनुपम के प्रति आकृष्ट होता है। वह वास्तविकता से पलायन कर कल्पना–लोक मे विचरण करना चाहता है। सभी अग्रेजी रोमाटिक कवियो मे कल्पना का प्राधान्य होता है। वे जब कभी बाह्य, स्थूल जगत् या विचार–जगत के किसी पदार्थ के सपर्क मे आते हैं, उनकी कल्पना उन्हे दूसरे लोक मे ले जाती है। वे इस जगत को छोड किसी अद्‌भुत ऐन्द्रिय–जगत् मे विचरण करने लगते हैं। कॉलरिज ने सिद्धान्त के स्तर पर कल्पना का विस्तृत विवेचन किया और सामान्य व्यक्ति की कल्पना से बढकर कवि–कल्पना की महत्ता स्थापित की। कल्पना ने इस युग की रचनाओ मे भाषा तथा भाव के सौन्दर्य का आधान किया। किन्तु कही–कही यह जीवन और जगत के दुखो से हारे मन के पलायन का माध्यम भी बनी।

मध्ययुगीन आकर्षण एवं अद्‌भुत तत्व

स्वच्छन्दतावादी साहित्यकारो मे मध्ययुगीन गीतो, गाथाओ एव रोमानी कथाओ मे जबर्दस्त आकर्षण मिलता है। कल्पना का सहारा लेकर उन्होने उस युग की चित्रमयता तथा रोमान को सजीव किया। कॉलरिज और कीट्‌स की कविता तथा स्कॉट के उपन्यासो मे मध्ययुग का यह प्रत्यावर्तन सबसे अधिक प्रबल रूप मे दिखाई देता है।

मध्ययुगीन रोमान के प्रति आकर्षण अद्‌भुत तत्व के प्रति स्वच्छन्दतावादियो की रूचि से भी पुष्ट हुआ। वाल्टर पेटर ने स्वच्छन्दतावाद की एक विशेषता यह मानी है कि यह 'सौन्दर्य मे अद्‌भुत तत्व जोडता है' (Addition of strangeness to beauty)। वाट्‌स डण्टन ने इस प्रवृत्ति को अद्‌भुत का पुनर्जागरण (Renaisance of wonder) कहा है। अद्‌भुत तत्व के प्रति यह आकर्षण कई रूपो मे व्यक्त हुआ। अपने तीव्रतम रूप में यह अतिमानवीय या अलौकिक (Supernatural) तत्वों की चर्चा मे दिखाई देता है–विशेषकर कॉलरिज तथा स्कॉट की रचनाओं मे । अन्य रचनाकारो मे यह सामान्यत. कुतूहल,

विस्मय तथा रहस्य के भाव मे व्यक्त हुआ। इससे प्रेरित होकर उन्होने जाने–पहचाने जीवन सदर्भों तथा वस्तुओ को नयी दृष्टि से देखना आरभ किया।

भाषा–शैली तथा छंद की स्वतन्त्रता

स्वच्छन्दतावादी कवियो ने सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति को महत्व दिया। उनका स्वच्छन्दतावाद भाषा–शैली सम्बन्धी सिद्धातो मे भी अभिव्यक्त होता है। हालाकि इस दौर के रचनाकारो मे भाव, भाषा तथा शिल्प का अपार वैविध्य दृष्टिगोचर होता है, किन्तु एक बिन्दु पर सभी सहमत थे। सभी सायास शिल्प और बाह्य अलकरण के विरोधी थे। वे मानव के नैसर्गिक मूल भावो का चित्रण सहज तथा आडम्बरहीन भाषा–शैली मे करने के पक्षधर थे। वर्ड्सवर्थ ने तो आम बोलचाल की भाषा को ही काव्य भाषा के रूप मे स्वीकार करने का आग्रह किया।[72] इस अतिवाद को न स्वीकार करते हुए भी अन्य रचनाकारो ने काव्यास्वाद तथा भाव–संप्रेषण के लिये सहज, बनावट रहित भाषा की आवश्यकता को स्वीकारा।

भाषा की सहजता का तात्पर्य भावो या अभिव्यक्ति की सपाटता से नहीं है। सभी स्वच्छन्दतावादी रचनाकारो ने सूक्ष्म अर्थच्छायाओं को उद्घाटित करने के लिये भाषा और ध्वनि के सगीत का सुन्दर उपयोग किया है। सपाट गद्यात्मक कथन के स्थान पर वे सूक्ष्म व्यजना तथा साकेतिकता के महत्व पर बल देते थे, जिससे काव्य मे रहस्यात्मक सौन्दर्य और दार्शनिकता के साथ–साथ उसकी अभिव्यजना शक्ति भी बढ जाती है।

छद के सदर्भ में भी इस युग के कवि का स्वातन्त्र्य–भाव स्पष्ट होता है। पिछले युग के सधे–बँधे, अनुशासित, तुकांत, हीरोइक कपलेट के स्थान पर इन्होने कोमल मधुर गीति (लिरिक) या फिर मुक्त छंद (ब्लैक वर्स) को अपनाया और उसकी अपार क्षमता को उद्घाटित किया। अपने मिजाज के अनुसार ही स्वच्छन्दतावादियो ने अन्य छन्दो का भी प्रयोग किया।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1 डब्ल्यू0 डी0 एलोक (W D. Elock-) – The Roman Language, Page-17-18

2 एफ0 एल0 लुकास (F. L. Lucas) – The Decline and fall of the Romantic Ideal, Page-16-17

3 Webester's New Twentieth Century Dictionary of English Language.

4 हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम भाग) – सपादक–डा0 धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ –188

5 डॉ0 जगदीश गुप्त – स्वच्छन्दतावादी काव्य की दार्शनिक विवेचना, पृष्ठ–4

6 विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo) – '(Romanticism is) liberalism in Literature '

7 वाट्स डटन (Watts Dunton) – 'The Renaisance of the feeling of wonder in poetry and art.' (A. C. Ricket – A History of English Literature from earliest time to 1916), Page-239

8 एल0 एबरक्रोम्बी (L. Abercrombie) – Romanticism, Page-22

9 पेटर्स एसेज – सपादक–एम0 एम0 सक्सेना, पृष्ठ–96

10 एफ0 एल0 लुकास – The Decline and fall of the Romantic Ideal, Page-36

11 प्रो0 कजामियाँ (Pro. Cazamian) – A History of English Literature, Page-997

12 ए0 सी0 रिकेट – A History of English Literature from earliest time to 1916), Page-92

13 इरविग वैबिट – Rousseau and Romanticism, Page-354

14. सी0 एच0 हरफोर्ड – The Age of Wordsworth, Page-14

15 डॉ0 हेज (Dr. Hadge) – 'The essence of Romanticism is inspiration.'

16 स्टडार्ड (Stoddard) – 'Romanticism is its noblest expression is a departure from law, fact, from harmony, from perspective in quest of new fact, a new harmony, a new perspective.'

17 हरबर्ट ग्रियर्सन – The background of English Literature, Page-225

18 जार्ज सेट्सबरी – A Histrory of English Criticism, Page-415

19 New Standard Dictionary of English Literature (Vall-3), Page-2129

20 Webester's New International Dictionary of the English Language (Vall-2), Page-2164

21 The shorter Oxford English Dictionary (Vall-2), Page-1750

22 Dictionary of world Literature - सपादक–जे0 टी0 शिप्ले, पृष्ठ– 352

23 'We hold these truths to be self evident : that all men are created equal, that they are endowed by their creater with certain unalienable rights, that among these are life, liberty and pursuit of happiness.......... '

(उद्धृत–जैन एवं माथुर–विश्व इतिहास–1500 ई0–1950 ई0), पृष्ठ– 204

24 जैन एव माथुर – विश्व इतिहास (1500 ई0–1950 ई0), पृष्ठ–204

25 डॉ0 प्रेमशकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ– 5–6

26 प0 जवाहर लाल नेहरू – The Glimpses of world History, Page-338

27 डॉ0 प्रेमशकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–6

28 जार्ज एलन – French Revolution (Part-1), Page-22

29 जैन एवं माथुर–विश्व इतिहास (1500 ई0–1950 ई0), पृष्ठ– 228

30 'Bliss it was in that dawn to be alive

But to be young was very heaven.'

–(Wordsworth – The Prelude)

31 डॉ0 रामचन्द्र मिश्र–श्रीधर पाठक और हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –412

32. जैन एवं माथुर–विश्व इतिहास (1500 ई0–1950 ई0), पृष्ठ–326

33 डॉ0 फूल बिहारी शर्मा–हिन्दी की स्वच्छन्द समीक्षा, पृष्ठ–37

34 डॉ0 प्रेमशंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–23

35 एल0 कजामियाँ – ए हिस्ट्री ऑफ फ्रेंच लिटरेचर, पृष्ठ–311

36 डॉ0 प्रेमशकर–हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –25–26

37 वही, पृष्ठ–41

38 'The principal object proposed in these poems was to choose incidents and situations from common life, and to relate or describe them through out, as far as this was possible in a selection of language really used by men, and at the same time to throw over them a certain colouring of a imagination, whereby ordinary things should be presented to the mind in an unusal aspect '

– Wordsworth : Preface to the second Edition of Lyrical Ballads (The Political works of Wordsworth, Page-935)

39. 'I should much wish, like the Indian Vishnu to float about along an infinite ocean, cradled in the flower of the lotus, and wake once in a million years for a few minutes just to know that I was going to sleep a million years more.

- Coleridge

40. 'Dreems with me are no shadows but the very substances and foot-thick calamities of my life.' - Coleridge

41. 'But is Ancient Mariner, that invaluable example egotistic is it not, on the contrary a sermon against egotism.'

- F.L. Lucas – The Decline and fall of the Romantic Ideal, Page-20

42. 'I woke up one morning and found my self famous.' - Lord Byron

43. '............ ....the masterpiece, not only among the shorter poems of Keats, but even (if any single master-piece must be choosen among them all).'

- Sidney Colvin

44. 'A thing of beauty is a joy for ever' – John Keats (Endymion)

45. 'I have loved the principle beauty in all things.' - John Keats.

46 प्रो0 बरयाम सिह – परिशिष्ट–2, अलेक्सान्द्र पुश्किन की प्रेम–कविताए

(ओ, मेरे बसन्त के वर्ष । – अनुवाद–कुमार कौस्तुभ), पृष्ठ–90–91

47 डॉ0 कमल कुमारी जौहरी–हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास, पृष्ठ–74

48 एफ0 एल0 लुकास – The Decline and fall of Romantic Ideal, Page-102

49 डॉ0 देवराज उपाध्याय – रोमाटिक साहित्य शास्त्र (भूमिका–डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी), पृष्ठ–8

50 वही, पृष्ठ –22

51 आर0 ए0 स्कॉट जेम्स – The Making of the Literature, Page-210-211

52 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य, पृष्ठ– 440

53 एच0 लेविन – Comperative Literature, Page-284

54 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य, पृष्ठ– 447

55 डॉ0 कमल कुमारी जौहरी – हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास, पृष्ठ– 75

56 डॉ0 भगीरथ मिश्र – हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ–422

57 डॉ0 प्रेमनारायण शुक्ल – हिन्दी साहित्य मे विविध वाद, पृष्ठ–472

58 वही, पृष्ठ–453

59 ए0 सी0 रिकेट – A History of English Literature, Page-292

60 वेर्सफील्ड – साहित्य का मूल्याकन (अनुवाद–डॉ0 रामचन्द्र तिवारी), पृष्ठ–14

61 डॉ0 प्रेमनारायण शुक्ल – हिन्दी साहित्य मे विविध वाद, पृष्ठ–459

62 के0 क्षीरसागर – टीका विवेक, पृष्ठ– 220

63 वही, पृष्ठ–309

64. Readers Encyclopaedia, Page-943

65 Encyclopaedia Americana (Vall-23), Page-655-656

66 डॉ0 देवराज उपाध्याय – रोमाटिक साहित्य शास्त्र (भूमिका–डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी), पृष्ठ–2

67 डॉ0 हरिकृष्ण पुरोहित – आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव, पृष्ठ–181

68 डॉ0 अजब सिह – आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियॉ, पृष्ठ–14

69. डॉ0 शिवराम माली – स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान, पृष्ठ–26

70. डॉ0 गगा चरण त्रिपाठी – काव्य तत्व, पृष्ठ–157

71 डॉ0 शान्ति स्वरूप गुप्त – पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, पृष्ठ–195–199

72 डॉ0 विक्रमादित्य राय–वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज समीक्षा सिद्धान्त, पृष्ठ–39

अध्याय–2

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद : स्वरूप विश्लेषण

अध्याय–2

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद : स्वरूप विश्लेषण

स्वच्छन्दतावाद : शब्द और आशय

'स्वच्छन्द' शब्द सस्कृत के विशेषण 'स्व' मे धातु 'छन्द' के योग से बना है। 'स्व' का अर्थ है–स्वय की अर्थात् अपनी और 'छन्द' का अर्थ है–इच्छा, इस प्रकार 'स्वच्छन्द' का अर्थ हुआ–स्वय की इच्छानुसार अथवा स्वतन्त्र रुचि के अनुसार। 'स्वच्छन्द' से ही भावात्मक सज्ञा 'स्वच्छन्दता' रूप निर्मित हुआ। अत स्वच्छन्दता का सामान्य अर्थ हुआ–स्वाधीनता, स्वतन्त्रता, आजादी।[1]

हिन्दी साहित्य मे स्वच्छन्दता (स्वच्छन्दतावाद) शब्द का प्रयोग अग्रेजी के 'रोमाटिसिज्म' (Romanticism) के अर्थ मे हुआ है। यह नितान्त भिन्न प्रश्न है कि स्वच्छन्दतावाद शब्द 'रोमाटिसिज्म' का पर्यायवाची शब्द है या नही, परन्तु इस शब्द का प्रयोग 'रोमाटिसिज्म' के पर्यायवाची शब्द के रूप मे अधिक मात्रा मे हुआ है। सर्वप्रथम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'आधुनिक काल काव्य खण्ड – नयी धारा – द्वितीय उत्थान' के सन्दर्भ में 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द का प्रयोग अग्रेजी शब्द रोमाटिसिज्म के पर्याय के रूप मे किया।[2] यह शब्द हिन्दी साहित्य मे अग्रेजी के रोमाटिक साहित्य की समान प्रवृत्तियो को लक्ष्य करके प्रयोग किया गया है। कुछ ऐसे विद्वान हैं जो 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द का प्रयोग करने पर आपत्ति करते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस शब्द को अग्रेजी शब्द 'रोमाटिसिज्म' के लिये प्रयोग किये जाने पर आपत्ति करते हुए लिखा है–'कुछ विद्वानो ने हिन्दी मे इसे स्वच्छन्दतावाद कहा है। परन्तु यह शब्द उस सपूर्ण साहित्य की आत्मा को प्रकट करने मे समर्थ नहीं है।'[3] किन्तु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रोमाटिसिज्म के लिए हिन्दी मे कोई दूसरा पर्यायवाची शब्द भी नही सुझाया है। डॉ0 रामधारी सिह 'दिनकर' ने रोमांटिसिज्म को हिन्दी मे 'रोमांसवाद' कहा है।[4] डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल ने भी इसे 'रोमासवाद' कहा है। उन्होने लिखा है– 'हिन्दी मे आविर्भूत इस स्वच्छन्दतावाद या रोमासवाद के मूल तत्व प्राय वे ही थे जो अंग्रेजी कविता के रोमांसवाद मे प्राप्त होते है।'[5]

अत्यधिक व्यवहार मे आने के कारण रोमाटिसिज्म के हिन्दी अनुवाद मे स्वच्छन्दतावाद शब्द स्थिर हो गया है। स्वच्छन्दतावाद को आलोचको और लेखको ने रोमाटिसिज्म के अर्थ मे ग्रहण कर लिया है और वही अर्थ उसमे ध्वनित होने लगा है।[6]

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की परिभाषा

हिन्दी के विद्वानो ने स्वच्छन्दतावाद को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार–'सामाजिक बन्धनो को तोडकर जीवन मे स्वच्छन्द विचरण करने की लालसा ही स्वच्छन्दतावाद है।[7]

डॉ0 जगदीश गुप्त की परिभाषा इस प्रकार है–'स्वच्छन्द काव्य धारा अन्तश्चेतना मे उमडने वाले अनेक भावस्रोतो का सम्मिलित अविरल उद्याम प्रवाह है जो अव्यक्त प्रेरणा से अव्यक्त की मिलनोत्कठा मे निष्प्रयास कवि–कठ से फूट पडता है, जिसके तीव्र प्रवाह में पडकर रूढियो और परम्पराओं की भीमशिलाएं पिस–पिसकर बालुका कणो मे परिवर्तित हो जाती है, नियमो के कास–सिवार बह जाते है, छन्दो के कूल टूटने लगते हैं, जो उन्मुक्त प्रकृति के बीच विस्तृत भूखण्ड पर फैले वनो–उपवनो की अभिनव सौन्दर्य–सुषमा को प्रतिबिम्बित एव जन–जन–मन–रजन करता हुआ, अनियमित, वक्रगति से प्रवाहमान न जाने किस दिशा की ओर चला जाता है।'[8]

डॉ0 अजब सिह के शब्दो मे– 'स्वच्छन्दतावाद नवीन अनुभूति की भूमि पर पुरानी परम्पराओ और रूढियो से विद्रोह कर चेतन प्रकृति तथा लोकजीवन की अनुभूति को वाणी देता है। नये काव्य–रूपो, नयी शैलियो को पल्लवित और पुष्पित करता है। चेतन और अवचेतन, विषय और विषयी, अन्त और बाह्य, मानव और प्रकृति दो विरोधी तत्वो का समन्वय भी करता है तथा इसकी दुनिया पूरी तरह से नयी होती है।'[9]

डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा के अनुसार– 'हिन्दी स्वच्छन्दतावाद को हम चाहे जिस नाम से क्यो न पुकारे, पर वह कालक्रम मे आकस्मिक रूप से प्रकट हो जाने वाला एक काव्यगत आन्दोलन ही नहीं था, प्रत्युत् वह सचेतन मानवता का सहज आस्फालन था। मानवीय चेतना का यह आलोडन अनेक स्तरो पर एक साथ हुआ था। पश्चिम मे खुली आखो से इन्द्रजालिक अवतरण का अवलोकन हुआ था। किन्तु वही

मानवीय चेतना का यह स्फोट राजनीतिक धरातल पर कार्यान्वित हो रहा था। पश्चिमी राजनीति और सामाजिक विचारो के क्षेत्र मे हम बन्धन विमोचन की जिस द्रुत प्रक्रिया का दर्शन करते हैं, वही प्रक्रिया साहित्यिक स्तर पर रोमाटिसिज्म के रूप मे दिखाई पडती है। × × × × × हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का सम्बन्ध इतनी घनिष्ठता के साथ राजनीतिक चेतना के साथ नही जोडा जा सकता। वह मूलत आध्यात्मिक और सास्कृतिक मूल्यो के परिष्कार के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था।'[10]

डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार– 'रोमाटिक साहित्य की वास्तविक उत्सभूमि वह मानसिक गठन है जिसमे कल्पना के अविरल प्रवाह से घन सश्लिष्ट निविड आवेग की ही प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना के अविरल प्रवाह और निविड आवेग– ये दो घनीभूत मानसिक वृत्तियॉ इस व्यक्तित्व प्रधान साहित्यिक रूप की जननी हैं।'[11]

डॉ0 रामचन्द्र मिश्र ने विभिन्न परिभाषाओं के तत्वो का समन्वय करके स्वच्छन्दतावाद की परिभाषा इस प्रकार दी है– 'स्वच्छन्दतावादी काव्य, काव्य की वह विशेष सर्जना है जो कल्पना और आवेश से युक्त परम्परा विधान और बाह्यांग–नियंत्रण से विमुक्त और मानसिक सरलता और अकृत्रिमता से सम्पन्न मानसिक तथा लोकभूमि की भावनाओं से युक्त हो।'[12]

इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद की सामान्यत सभी परिभाषाओ मे काव्य के कथ्य और शिल्प–विधान मे परम्परागत बन्धनो से मुक्ति पर बल दिया गया है।

हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी काव्य–संरचना की परम्परा

सामान्यत. 'स्वच्छदतावाद' अभिधा आधुनिक हिन्दी काव्य के एक विशेष सोपान के लिए रूढ हो गयी है। इसलिए स्वच्छन्दतावाद कहने से आधुनिक काल की कविताओ, विशेषकर पश्चिम के रोमाटिक साहित्य से प्रेरणा लेकर हिन्दी मे लिखे गये साहित्य का बोध होता है। किन्तु स्वच्छन्दता किसी युग विशेष का गुण न होकर मनुष्य की आन्तरिकता से जुडा तत्व है। इसलिए स्वच्छन्दतावाद के तत्व आदिकालीन साहित्य से लेकर आधुनिक काल के साहित्य तक मिल सकते हैं। आदिकालीन स्वच्छन्द भावचर्या के उपासक कवियों और आधुनिक स्वच्छन्दतावादी काव्य की मूल चेतना मे समानता भी मिलती

है। दोनो युगो के काव्य नियमों और परम्परागत रूढियो का विरोध करते हुए उत्पन्न होते है। परन्तु शिल्प और अभिव्यजना की दृष्टि से उनमे पर्याप्त अन्तर भी दिखाई देता है। वस्तुत. प्रत्येक युग मे स्वच्छन्द और परम्परित काव्य रचनाए होती रही है।

हिन्दी स्वच्छन्द काव्य के आरभ –सूत्र सरहपा आदि सिद्धो की कविताओ मे खोजे जा सकते हैं और कबीर के काव्य मे उसका एक भव्य स्वरूप देखा जा सकता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि समस्त निराकारवादी कवियो का काव्य स्वच्छन्द है और सभी साकारोपासक कवियो ने परम्परित काव्य की रचना की है। वस्तुत परम्परा और स्वच्छन्दता के तत्व किसी सम्प्रदाय–विशेष के द्वारा नियमित नहीं होते। कवि का विशिष्ट व्यक्तित्व ही स्वच्छन्दता और परम्परा के आयामो की सृष्टि करता है। अत समस्त सिद्धो और नाथपथी योगियो के साहित्य को स्वच्छन्द नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक कवि अपनी चेतना के अनुसार परम्परित और स्वच्छन्द काव्य का सृजन करता है।

यदि भक्तिकाल के निर्गुण और सगुण विचारधाराओ से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करे तो हम पायेंगे कि इनमे भी स्वच्छदता के तत्व विद्यमान हैं। हम तुलसीदास को अभिजात्यवादी कवि मान सकते हैं, परन्तु सूरदास को अभिजात्यवादी कवि मानने मे सकोच होगा। सूरदास कृष्ण लीला के स्वच्छन्द गायक है। यह ठीक है कि सूरदास ने पुष्टि सम्प्रदाय को स्वीकार किया था तथा स्वामी वल्लभाचार्य के सरक्षण मे श्रीनाथ जी के मदिर में मुख्य कीर्तनिया थे, परन्तु सूरदास की वाणी स्वच्छन्दता के तत्वो से समन्वित है, उनके काव्य मे परम्परा का निर्वाह उतना नहीं हुआ है। इसी प्रकार यदि हम निर्गुण कवियो की कविताओ का अध्ययन करे तो कबीर को हम बेहिचक स्वच्छन्दतावादी कह सकते हैं, परन्तु मलिक मुहम्मद जायसी को हमे परम्परावादी कवियो के वर्ग मे रखना पडेगा।[13]

हिन्दी मे रीतिकाल मे भी रीतिबद्ध रचनाओ के अतिरिक्त स्वच्छन्द काव्य धारा की एक स्वस्थ परम्परा मिलती है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दो मे– 'उस (श्रृगार) काल मे स्वच्छन्द मनोवृत्ति वाले ऐसे कवियो का भी प्रादुर्भाव हुआ जो रीति के बन्धन तोड डालना चाहते थे। ये शास्त्र मे गिनायी गयी सूची तक ही सीमित रहने वाले नही थे। ये प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए हृदय का पूर्ण योग सगठित करने के अभिलाषी थे। रीतिबद्ध होकर एक ओर काव्य–रचना बहिर्वृत्ति के निरूपण मे व्यस्त थी, दूसरी

ओर इनके हृदय का वेग अन्तर्वृत्ति का अवकाश चाहता था। अत इन्होने रीति पद्धति का अतिक्रमण किया।'[14] इस तरह हिन्दी काव्य मे स्वच्छन्दतावाद के अकुर बोधा, ठाकुर और घनानन्द की कविताओ मे ही निकल चुके थे।[15] ये ऐसे भावुक कवि थे जिन्हे 'नजर की फास' ने चुभकर पीडा की अनुभूति करायी थी।[16] घनानन्द की स्वच्छन्द प्रवृत्ति को लक्ष्य करके रामधारी सिह 'दिनकर' ने लिखा है– 'यदि घनानन्द ने खडीबोली मे कविता लिखी होती तो सरलता से वे छायावाद के पूर्व पुरुष मान लिए गये होते।'[17]

रीति कालीन प्रेमोन्मत्त कवियो की स्वच्छन्द कविता पर श्रीकृष्ण की स्वच्छन्द लीला का प्रभाव था और रीतिबद्ध कवियो ने भी कृष्ण लीला से ही प्रेरणा ग्रहण की। किन्तु दोनो प्रकार के कवियो की प्रेरणा के मूल मे गहरा अन्तर है। रीतिबद्ध कवियो ने कृष्ण की लीलाओ का अत्यधिक श्रृगारी चित्रण करने मे प्रयोग किया, जबकि स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाले प्रेमोन्मत्त कवियो ने कृष्ण–लीलाओ को प्रेमाभिव्यजना का आधार बनाया। वस्तुत इनमे स्वच्छन्दता मूलक प्रवृत्ति प्रेम की प्रकृत भूमि पर आरूढ होने के लिए जगी थी, वासना के गड्ढे मे गिरने के लिए नही।[18] इन स्वच्छन्द कवियो पर सूफी मत की 'प्रेम की पीर' का प्रभाव भी विद्यमान था। प्रेम की पीर सूफी कवियो का प्रतिपाद्य विषय था। अत स्वच्छन्द कवियो ने प्रेम की यह पीर फारसी काव्य धारा की वेदना विवृत्ति के साथ सूफी कवियो से ही ली है।[19] रीतिकालीन स्वच्छन्द काव्य धारा पर जो भी प्रभाव रहे हो, किन्तु इतना नि सन्देह कहा जा सकता है कि वह पाश्चात्य प्रभाव से अछूती थी। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जैसे समीक्षक यह मानते हैं कि रीतिमुक्त धारा के कवि घनानन्द से हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का आरभ माना जा सकता है। परन्तु आज हम जिस अर्थ मे स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग करते हैं, उसमे संपूर्ण मानवता का आग्रह है, प्रेम भावना की वैयक्तिक अनुभूति का प्रकाशन तो उसका अश मात्र है।[20]

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद आधुनिक युग की उत्पत्ति है और उसमे देश की राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियो का योग है। आधुनिक काल मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओ से ही हिन्दी मे स्वच्छन्दवादिता का आभास मिलने लगता है। शताब्दियो से हिन्दी कविता भक्ति और श्रृंगार के रग मे रगी चली आ रही थी। उसमे 'चपल वार वनिता का क्रीत–विलास' और कृत्रिम श्रृगार ही अधिक था। अभिजात कुलवधू जैसी प्रकृत अंग – सुषमा और स्वाभाविक हृदय–सौन्दर्य की बहुत कमी थी।[21] केवल

चुबन और आलिगन, रति और विलास, रोमाच और स्वेद, स्वकीया और परकीया की कडियो मे जकडी हुई हिन्दी कविता को सर्वप्रथम भारतेन्दु ने लोक जीवन के राजपथ पर लाकर खडा कर दिया। × × × × × आर्थिक जीवन मे महगाई और अकाल, टैक्स और धन का विदेश प्रवाह, धार्मिक क्षेत्र मे बहुदेव पूजा और मत–मतान्तर के झगडे, सामाजिक क्षेत्र मे जाति–पॉति के टटे, खान–पान के पचडे और बाल विवाह, नैतिक क्षेत्र मे पारस्परिक कलह और विरोध, उद्यमहीनता और आलस्य, भाषा–भूषा–भेष की विस्तृति तथा राजनीतिक क्षेत्र मे पराधीनता और दासता–जीवन के ये विभिन्न स्वर उनकी वेणु से प्रस्तुत होने लगे थे। × × × × × ब्रजभाषा मे यह विषय की क्रान्ति थी।[22] छन्द के क्षेत्र मे भी भारतेन्दु ने लावनी, गजल, रेखता, कजली, कबीर आदि छन्दो मे नवीन प्रयोग किये। भारतेन्दु के अतिरिक्त ठाकुर जगमोहन सिह का मार्मिक चित्रण और उदात्त प्रेम का स्वरूप उनकी स्वच्छन्दवादिता का परिचायक है। इस प्रकार यद्यपि भारतेन्दु मे रोमाटिक तत्व उभरकर नही आ पाये थे, परन्तु आगे के विद्रोही युग की भूमिका प्रस्तुत कर दी थी।[23] इस युग मे ही समाज का यथार्थ चित्रण करने के उपरान्त कवि क्रमश व्यक्तिवादी हो गया था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प० श्रीधर पाठक को प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि घोषित करते हुए लिखा है– 'हरिश्चन्द्र के सहयोगियो मे काव्य धारा को नये–नये विषयो की ओर मोडने की प्रवृत्ति तो दिखाई पडी, पर भाषा ब्रज ही रहने दी गयी और पथ के ढॉचो, अभिव्यजना के ढग और प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि मे स्वच्छन्दतावाद के दर्शन न हुए। इस प्रकार की स्वच्छन्दता का आभास प० श्रीधर पाठक ने ही दिया। उन्होने प्रकृति के रूढिबद्ध रूपो तक ही न रहकर अपनी ऑखो से भी उसके रूपो को देखा।[24]

वस्तुत हिन्दी काव्य मे स्वच्छन्दवादिता का अवतरण श्रीधर पाठक द्वारा अनूदित 'एकान्तवासी योगी' काव्य से होता है। 'एकान्तवासी योगी' में भाषा, भाव, छन्द सभी का नूतन विधान सामने आया। 'कश्मीर–सुषमा', 'वनाष्टक' और 'साध्य अटन' के सवेदनशील प्रकृति–चित्रण ने पाठक जी की स्वच्छन्दवादिता को और भी पुष्ट किया। यद्यपि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की नीतिवादिता और उपदेशात्मक इतिवृत्तात्मकता स्वच्छन्दतावादी काव्य के लिए बाधक सिद्ध हुई, किन्तु पाठक जी अपने

काव्य द्वारा उसे सजीवनी प्रदान करते रहे। डॉ0 राम चन्द्र मिश्र के शब्दो मे– 'प0 श्रीधर पाठक अग्रेजी काव्य की पूर्व स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो से प्रभावित थे। अग्रेजी काव्य के उस काल मे जिस प्रकार कवि परम्परागत काव्य पद्धतियो को परित्यक्त कर वैयक्तिक अनुभूतियो के आधार पर काव्य क्षेत्र मे अपना नया ससार बसाना चाहते थे, उसी प्रकार हिन्दी की सामन्ती प्रवृत्तियो के विरोध मे पाठक जी ने स्वच्छन्दतावादी काव्य पद्धति को जन्म देकर एक नया प्रयोग प्रारभ किया।'[25]

राय देवीप्रसाद पूर्ण, प0 रामचन्द्र शुक्ल, रूपनारायण पाण्डेय, मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी', बदरी नारायण भट्ट, रामनरेश त्रिपाठी, तथा मुकुटधर पाण्डेय आदि ने पाठकोत्तर प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य परम्परा को प्रगति दी। हिन्दी कविता मे प्रकृति के प्राय मनोहर रूप का ही वर्णन किया जाता था। आग्ल रोमाटिक काव्य के प्रभाव से भयकर रूप का भी वर्णन किया जाने लगा।[26] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एडविन आर्नोल्ड के 'लाइट ऑफ एशिया' के अनुवाद 'बुद्धचरित' मे प्रकृति के आनन्ददायक और भयकर दोनो रूपो का चित्रण किया है। रूपनारायण पाण्डेय के काव्य मे दुखवाद और वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति हुई है। मन्नन द्विवेदी गजपुरी की कविताओ मे जन्मभूमि की हीनावस्था के प्रति अवसाद तथा सौन्दर्य का सूक्ष्म निरीक्षण उपलब्ध होता है। बदरी नारायण भट्ट के काव्य मे सजीव प्रकृति चित्रण, दुखवाद की भावना एव वैयक्तिक भावना का स्वरूप विद्यमान है।[27] रामनरेश त्रिपाठी के लौकिक प्रेम, व्यवहारिक राष्ट्रीयता, प्रासादिक भाषा का प्रयोग तथा प्रेम की उदात्त भावनाए बडी ही स्वाभाविक एव चित्ताकर्षक है। मुकुटधर पाण्डेय की कविताओ मे दुखवाद, अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा, रूप का आकर्षण तथा निष्काम भाव से प्रकृति–दर्शन, प्रासादिक एव मधुर शैली का प्राधान्य है।

आरंभिक स्वच्छन्दतावादी कविता यद्यपि द्विवेदी युग मे रची गयी थी, किन्तु वह उस युग की केवल एक प्रवृत्ति थी। यही नहीं आरंभिक स्वच्छन्दतावादी कविता स्वय द्विवेदी जी के प्रभाव से मुक्त होकर लिखी गयी थी।

स्वच्छन्दतावाद का व्यापक प्रसार छायावादी कविता के माध्यम से हुआ। हिन्दी के छायावादी काव्य की अग्रेजी के रोमांटिक साहित्य से अत्यधिक तदनुरूपता उस पर रोमाटिक प्रभाव को सिद्ध करती

है। फिर भी छायावाद का विकास भारतीय परिस्थितियो मे हुआ। इसने भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक जागरण से प्रेरणा ली।

स्वच्छन्दतावाद और छायावाद

स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को लेकर अनेक विवाद हैं। कुछ लोग दोनो को एक मानते हैं, कुछ दोनो मे अन्तर करते हैं। छायावाद का नामकरण सन् 1920 ई0 तक हो चुका था। मुकुटधर पाण्डेय ने 1920 ई0 मे जबलपुर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'श्री शारदा' के जुलाई, सितबर, नवम्बर तथा दिसम्बर के अकों मे 'छायावाद' शीर्षक से एक लेखमाला छपवायी थी। इस लेखमाला के अत मे मुकुटधर पाण्डेय ने लिखा है–'छायावाद की आवश्यकता हम इसलिए समझते हैं कि उससे कवियो को भाव–प्रकाशन का एक नया मार्ग मिलेगा। इस प्रकार के अनेक मार्गों– अनेक रीतियो का होना ही उन्नत साहित्य का लक्षण है।'[28]

डॉ0 नामवर सिह ने छायावाद के सम्बन्ध मे लिखा है– 'छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के 'रोमाटिक' उत्थान की वह काव्य–धारा है जो लगभग ईस्वी सन् 1918 से 36 (उच्छ्वास से युगान्त) तक की प्रमुख युगवाणी रही, जिसमे प्रसाद, निराला, पत, महादेवी प्रभृति मुख्य कवि हुए और सामान्य रूप से भावोच्छ्वास–प्रेरित स्वच्छन्द कल्पना–वैभव की वह 'स्वच्छद प्रवृत्ति' है जो देश–काल–गत वैशिष्ट्य के साथ ससार की सभी जातियो के विभिन्न उत्थानशील युगो की आशा–आकाक्षा मे निरन्तर व्यक्त होती रही है। स्वच्छन्दतावाद की उस सामान्य भाव–धारा की विशेष अभिव्यक्ति का नाम हिन्दी साहित्य मे छायावाद पडा।'[29]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्वच्छन्दतावाद और छायावाद में अन्तर किया है। उन्होने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे 'आधुनिक काल–काव्य खण्ड–नई धारा' के द्वितीय उत्थान के कवियो को स्वच्छन्दतावादी माना तथा इन कवियो की कविताओं को अग्रेजी रोमाटिसिज्म से जोडा।[30] उन्होने श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि को स्वच्छन्दतावादी कहा। इसी क्रम मे तृतीय उत्थान की कविताओ के विषय मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अग्रलिखित कथन दृष्टव्य है–

'द्वितीय उत्थान मे काव्य की नूतन परम्परा का अनेक विषयस्पर्शी प्रसार अवश्य हुआ, द्विवेदी जी के प्रभाव से एक ओर उसमे भाषा की सफाई आयी, दूसरी ओर उसका रूप गद्यवत रूखा, इतिवृत्तात्मक और अधिकतर बाह्यार्थ निरूपक हो गया। अत इस तृतीय उत्थान मे जो प्रतिवर्तन हुआ और पीछे छायावाद कहलाया, वह उसी द्वितीय उत्थान की कविता के विरुद्ध कहा जा सकता है। उसका प्रधान लक्ष्य काव्य शैली की ओर था, वस्तु विधान की ओर नही। अर्थभूमि या वस्तुभूमि का तो उसके भीतर बहुत सकोच हो गया। समन्वित विशाल भावनाओ को लेकर चलने की ओर ध्यान न रहा।'[31]

इस प्रकार आचार्य शुक्ल ने छायावाद को स्वच्छन्दतावाद के विरुद्ध उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आयी कविता समझा। उन्होने आगे लिखा है– 'गुप्तजी, मुकुटधर पाण्डेय आदि के द्वारा स्वच्छन्द नूतन धारा चली ही थी कि श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर की उन कविताओ की धूम हुई जो अधिकतर पाश्चात्य ढॉचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकर चली थीं, परन्तु ईसाई सतो के 'छायाभास' (फैंटामासा) तथा यूरोपीय काव्य क्षेत्र मे प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिबलिज्म) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बगला मे ऐसी कविताए छायावाद कही जाने लगी थीं। यह वाद क्या प्रकट हुआ, एक बने बनाये रास्ते का दरवाजा सा खुल पडा और हिन्दी के कुछ नये कवि एक बारगी झुक पडे। यह अपना क्रमश बनाया हुआ रास्ता नहीं था। इनका दूसरे साहित्य क्षेत्र मे प्रकट होना, कई कवियो का इस पर साथ–साथ चल पडना और कुछ दिनों तक इनके भीतर अग्रेजी और बगला की पदावली का जगह–जगह ज्यो का त्यो अनुवाद रखा जाना, ये बाते मार्ग की स्वतन्त्र उद्भावना नही सूचित करतीं। × × × × × छायावाद नाम चल पडने का परिणाम यह हुआ कि बहुत से कवि रहस्यात्मकता, अभिव्यजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तु–विन्यास की विश्रृखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य मानकर चले।'[32]

आचार्य शुक्ल ने छायावाद के बारे मे आगे कहा– 'प्रणय वासना का यह उद्‌गार आध्यात्मिक पर्दे तक ही छिपा न रह सका। हृदय की सारी काम वासनाए, इन्द्रियो के सुख–विलास की मधुर और रमणीय सामग्री के बीच बॅधी हुई रूढि पर व्यक्त होने लगी। अत. छायावाद शब्द का प्रयोग रहस्यवाद तक ही न रहकर काव्य शैली के सम्बन्ध मे भी प्रतीकवाद (सिबलिज्म) के अर्थ मे होने लगा।'[33]

आचार्य शुक्ल जी ने इस तरह स्वच्छन्दतावाद और छायावाद मे अतर किया। वे छायावाद को रोमाटिसिज्म कहने के पक्षधर नही थे। प्रसाद, पत, निराला को शेली इत्यादि से प्रभावित मानते हुए भी शुक्ल जी उन्हें रोमांटिक मानने से इनकार करते थे।[34]

आचार्य शुक्ल जी की धारणाओ का खण्डन करते हुए डॉ0 नामवर सिह ने लिखा है– 'उनके (शुक्ल के) अनुसार अज्ञात की जिज्ञासा ही सच्ची रहस्य भावना है। परन्तु उन्होने देखा कि छायावादी कवि उस जिज्ञासा को आध्यात्मिकता का रूप दे रहे हैं, इसलिये छायावादी रहस्य भावना को उन्होने साम्प्रदायिक तथा आध्यात्मिक रहस्यवाद समझ लिया। उन्हे छायावाद की इस आध्यात्मिकता का मूल स्रोत रवीन्द्रनाथ मे दिखाई पडा और चूँकि रवीन्द्रनाथ ब्राह्म थे और ब्राह्मो का मत ईसाई धर्म से ज्यादा मिलता था, इसलिए शुक्ल जी ने इन सबसे एक तरह का वादरायण सम्बन्ध स्थापित कर लिया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ईसाई धर्म की ही आध्यात्मिकता ब्राह्म माध्यम से हिन्दी कविता मे व्यक्त हो रही है। जब मूल भाव की एकसूत्रता स्थापित हो गयी तो उन्होने छायावाद के नाम के साथ भी उसका मेल मिला दिया। बुद्धि हो तो आदमी क्या नहीं कर सकता। उन्हे ईसाई मत मे छाया अर्थ देने वाला एक 'फैटसमैटा' शब्द भी मिल गया। बस फिर क्या था ? उन्होने छायावाद शब्द को उससे जोड दिया और साबित कर दिया कि छायावाद नाम और भावधारा दोनो दृष्टियो से यूरोप का प्रभाव है । इस तरह उन्होने हिन्दी छायावाद और ईसाई फैंटसमाटा के बीच बगला कडी की भी कल्पना कर डाली और कह चले कि बगला मे भी इन कविताओ को छायावाद कहते हैं। बगला मे छायावाद नामक कोई वाद या शब्द है या नही, इसकी छानबीन करना उनका प्रयोजन न था। उन्हे तो अपनी बात रखनी थी, रख दी, गलत हो चाहे सही। यह प्रवाद कि बगला में भी छायावाद नामक एक वाद है, बहुत दिनो बाद हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्मूल हुआ।'[35]

इस प्रकार डॉ0 नामवर सिह आचार्य शुक्ल जी के इस मत का खण्डन करते हैं कि छायावाद बगला रहस्यवाद से प्रभावित है जो कि स्वयं ईसाई रहस्यवाद से प्रभावित था। उन्होने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा छायावाद को 'अन्योक्ति काव्य' कहने तथा आचार्य शुक्ल जी द्वारा केवल अध्यात्म और रहस्यवाद को छायावाद की विषयवस्तु कहने का कडा प्रतिवाद किया। डॉ0 नामवर सिह ने बताया है कि

आगे चलकर रोमाटिसिज्म और छायावाद का द्वैत समाप्त हो गया। सामान्य पाठक छायावाद को रोमाटिसिज्म का पर्याय समझने लगे। कुछ लोग आचार्य शुक्ल जी द्वारा गढे हुए स्वच्छन्दतावाद को भी छायावाद का पर्याय अथवा अग मानने लगे तथा अन्य लोग स्वच्छन्दतावाद का द्वितीय उत्थान कहना अधिक युक्ति सगत मान चले।[36] डॉ0 नामवर सिह ने इसका प्रतिवाद किया है। उन्होने लिखा है– 'इस तरह प्रसाद, निराला, पत तथा महादेवी की कविताओ की चर्चा के सिलसिले मे अग्रेजी के मिस्टिसिज्म और रोमाटिसिज्म तथा हिन्दी के रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद शब्द आये। व्यवहार मे रहस्यवाद, मिस्टिसिज्म का पर्याय हो गया है और छायावाद तथा स्वच्छन्दतावाद रोमाटिसिज्म के। × × × × × जहॉ तक रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद शब्दो के शब्दार्थ और लोक प्रचलित भाव का सम्बन्ध है, इन तीनो मे निसन्देह थोडा–थोडा अतर है। रहस्यवाद अज्ञात की जिज्ञासा है, तो छायावाद चित्रण की सूक्ष्मता है और स्वच्छन्दतावाद प्राचीन रूढियो से मुक्ति की आकाक्षा।'[37]

डॉ0 नामवर सिंह ने रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद तीनो को एक ही काव्य धारा की विविध प्रवृत्तियॉ माना। उन्होने कहा है–'जिस तरह अन्य साहित्यो मे अनेक प्रवृत्तियो के पुज रोमाटिक काव्य को एक सज्ञा 'रोमाटिसिज्म' दी गयी है। उसी तरह अनेक प्रवृत्तियो के पुज छायावादी काव्य को भी एक ही नाम देना चाहिये। कहना न होगा कि यह एक नाम छायावाद ही हो सकता है।'[38]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास' मे छायावाद के विषय मे लिखा है– 'इसी नवीन प्रकार की कविता को किसी ने छायावाद नाम दे दिया है। यह शब्द बिल्कुल नया है। यह भ्रम ही है कि इस प्रकार के काव्यो को बगला मे छायावाद कहा जाता था और वहीं से यह शब्द हिन्दी मे आया है। छायावाद शब्द केवल चल पडने के जोर से ही स्वीकारणीय हो सका है, नहीं तो इस श्रेणी की कविता की प्रकृति को प्रकट करने मे यह शब्द एकदम असमर्थ है। बहुत दिनो तक इस काव्य का उपहास किया गया है और बाद में भी इसे या तो चित्रभाषा–शैली या प्रतीक–पद्धति के रूप मे माना गया या फिर रहस्यवाद के अर्थ मे। उपहास और व्यग्यो का काफी विस्तृत साहित्य सूचित करता है कि औसत श्रेणी के सहृदय को इस कविता की महत्ता स्वीकार करने मे समय लगा है। वह पहले इसे

एकदम नवीन और अवाछनीय वस्तु समझता रहा। शैली रूप मे इसे स्वीकार करने वालो के मन मे भी इस श्रेणी की कविता के विषय मे विशेष गौरव का भाव नही हैं।'[39]

डॉ0 बच्चन सिह ने छायावाद शब्द को निरर्थक माना है और उस पूरे साहित्य को स्वच्छन्दतावाद के अन्तर्गत करने का आग्रह किया है। उन्होने लिखा है– 'छायावाद स्वय मे कोई अर्थ नही है। आधुनिक साहित्य का इतिहास लिखते समय यह बाधक सिद्ध होता है। कविताओ के लिये छायावादी काव्य कह दिया जाता है, पर उसी काल–खण्ड मे लिखे गए गद्य को छायावादी गद्य नही कहा जाता। × × × × × कुछ लोग इस काल–खण्ड की कविता को छायावादी तथा नाटक, कहानी आदि को स्वच्छन्दतावादी कहते है। इतिहास की अपनी विवशता है कि किसी एक काल–खण्ड की मुख्य प्रवृत्ति के आधार पर एक नाम दे। इस समय के साहित्य को केवल एक ही नाम दिया जा सकता है–स्वच्छन्दतावाद। × × × × × इस काल को स्वच्छन्दतावाद युग कहने से दो समस्याये हल हो जाती हैं– एक तो तत्कालीन गद्य –पद्य को एक ही शीर्षक के अन्तर्गत अधिक सार्थक ढग से विवेचित किया जा सकता है, दूसरे यह कि यह अन्य भारतीय और भारतीयेतर साहित्यो के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन (रोमाटिक मूवमेट्स) से जुड जाता है। अत छायावाद के स्थान पर इस नये शब्द के चयन की ऐतिहासिक आवश्यकता है।'[40]

डॉ0 प्रेमशकर ने भी 'छायावाद' शब्द को उस सपूर्ण काव्य–व्यक्तित्व को व्यक्त करने मे असमर्थ माना और स्वच्छन्दतावाद नाम देने की वकालत की । उन्होने लिखा है– 'जिसे हिन्दी मे छायावाद कहा जाता है, उसकी कहानी कम दिलचस्प नहीं। किसी ने बैठे–ठाले मजाक के तौर पर फिकरा कस दिया और यह नाम चल निकला। लोगो ने तहकीकात तक की जरूरत नहीं समझी । जैसे बार–बार इन्कारने पर प्रयोगवाद का लेबिल लगा दिया गया। छायावाद शब्द जिस रचना के लिये इस्तेमाल किया जाता है, मेरा विचार है कि वह उसके व्यक्तित्व के साथ न्याय नहीं करता और एक असमर्थ नाम है। × × × × × स्वच्छन्दतावाद रोमाटिसिज्म के लिए प्रयुक्त शब्द है, पर यदि छायावाद के पहले दौर मे कुछ

लोग इसे विदेशी काव्य का पिछलगुवा न मान लेते, तो सभव है उसे स्वच्छन्दतावाद नाम ही मिल जाता। मैं समझता हूँ यह अधिक सार्थक नाम है।'[41]

छायावाद नामकरण के सम्बन्ध मे डॉ0 नरेद्रदेव वर्मा का कथन है– 'छायावाद नाम से एक धूमिल, अस्त–व्यस्त और वायवी चितन और सृजन के प्रतीक का ही बोध कर पाते हैं। वस्तुत नामकरण का उद्देश्य किसी वस्तु को छिपाना या उसे छद्मवेशी बनाना नहीं होता। नामकरण की सार्थकता वस्तु के स्वभाव और उसकी व्यजना पर आधारित होती है। यह कहने की आवश्यकता नही है कि छायावाद की अभिधा बहुत कुछ अमूर्त और वायवी है तथा उसके द्वारा वस्तु स्थिति का यथावत् स्पष्टीकरण नही होता।'[42]

हिन्दी मे छायावाद शब्द का प्रचलन आकस्मिक है। आरभ मे जब छायावाद शब्द का प्रयोग किया गया तो इसका आशय अस्पष्टता और अमासलता आदि से था तथा सुमित्रानन्दन पंत की कविताओ को आधार बनाकर यह नामकरण किया गया।[43] छायावाद शब्द उस काव्य की सपूर्ण ध्वनि को व्यजित नहीं करता। द्विवेदी युगीन वर्णन प्रधान कविताओ की तुलना मे जब छायावाद की आरभिक रचनाये 'इन्दु' आदि पत्रिकाओ के माध्यम से सामने आयी होगी तो वे समीक्षको को बेपहचान लगी होगी और ऐसा लगभग हर महत्वपूर्ण रचना आन्दोलन के साथ होता है। 'छायावाद' शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे इन व्यक्तियो के अपने पूर्वाग्रह रहे होगे, जो उन्होने आरम्भिक रचनाओ के आधार पर बनाये होगे। इसका एक प्रमाण 'जुही की कली' का 'सरस्वती' के द्वार से लौट आना है।[44] यह कविता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को, जो कि 'सरस्वती' के सम्पादक थे, प्रभावित नही कर सकी थी।

छायावाद के सम्बन्ध मे समीक्षको की भिन्न–भिन्न मान्यताए हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावाद की परिभाषा देते हुए उसे 'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान' कहा। शाति प्रिय द्विवेदी, महादेवी वर्मा तथा डॉ0 नगेन्द्र ने उसे 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा। इन व्याख्याओं से उस समय के साहित्य के आन्तरिक सूत्र को पकड पाना संभव नही है। असल मे छायावाद एक अयाचित और अनुपयुक्त अभिधा है जिसे हिन्दी काव्य प्रवाह के आधुनिक उद्वेलन के ऊपर थोप दिया गया है। छायावाद की अभिधा उस नवोन्मेषमयी सौन्दर्योच्छ्वास की प्रगल्भ वेगवती

धारा के योग्य नही है, जो किसी परम्परित रूपाकार मे नहीं बॅधना चाहती, जिसे कथ्य और शिल्प के पूर्व निवेदित आयामो के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहती है, जो किसी भी प्रकार के बाह्य नियमो को स्वीकार नहीं करती। वस्तुत यह हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा है और स्वच्छन्दतावाद का अभिधेय ही इसके प्रति पूरी तरह से न्याय कर सकता है। जिसे हम छायावाद के नाम से जानते हैं, वह वस्तुत स्वच्छन्दतावाद ही है तथा जिसका उदय भी नियमो के प्रति विद्रोह की भावना से हुआ है।[45]

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य को मात्र अग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का अनुकरण नही मानना चाहिए। दोनो आन्दोलनो मे लगभग सौ वर्षों का अतर है। दोनो की मनोवृत्तियो मे अन्तर है। हिन्दी का स्वच्छन्दतावादी काव्य आध्यात्मिक भावबोध के सहारे विकसित हुआ है। इसकी जडे बहुत गहरी हैं।

प0 श्रीधर पाठक, अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी तथा जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', हरिवश राय बच्चन, रामधारी सिह 'दिनकर' आदि कवियो के काव्य को एक साथ स्वच्छन्दतावाद के अन्तर्गत ही समाहित किया जा सकता है। इन सबको छायावाद के अन्तर्गत एक साथ समाहित नहीं किया जा सकता।

स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति उस समय के समस्त साहित्य मे किसी न किसी रूप मे रही है, जबकि छायावाद नामकरण जिन विशेष काव्य रचनाओ के लिए दिया गया उनके अतिरिक्त इसमे और कविताओ को समाहित करना अनुपयुक्त होगा। यह सत्य है कि भारतीय स्वच्छन्दतावाद और पाश्चात्य रोमाटिसिज्म मे पर्याप्त अन्तर है, दोनो की भावभूमि और समय का अन्तर तो प्रत्यक्ष है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद भारतीय नवजागरण की साहित्यिक निष्पत्ति है और छायावादी काव्य हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की सर्वोत्तम निष्पत्ति है। छायावाद नामकरण इतना प्रचलित हो गया है और उस युग के काव्य–विशेष के लिए रूढ हो गया है कि अपनी अर्थगत अस्पष्टता के बावजूद वह हिन्दी काव्य के एक विशेष काल–खण्ड की कविता का बोध कराता है। अत गलत या सही, यदि छायावाद नाम चल पडा तो साहित्येतिहास से उसे खारिज करना सभव नही। साहित्यिक जगत इस नाम को स्वीकार कर चुका है। छायावाद नाम इतना ज्यादा प्रचलित हो गया है कि स्वच्छन्दतावाद शब्द इसके पीछे छिप गया है, फिर

भी छायावाद के पहले के साहित्य तथा छायावाद के बाद के साहित्य और छायावादी साहित्य– इन तीनो समयो के समस्त गद्य–पद्य साहित्य को एक साथ समझने के लिए स्वच्छन्दतावाद नामकरण की पहल की जानी चाहिये।

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का काल–विभाजन

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन काल–खण्डो मे विभाजित किया जा सकता है। ये काल–खण्ड क्रमश आरभ, उत्कर्ष और ह्रास के द्योतक भी है। यह विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है–

प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावाद (पूर्व स्वच्छन्दतावाद)

इसका समय 1900 ई0 से 1920 ई0 तक माना जा सकता है। यह स्वच्छन्दतावाद का उद्भव काल है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की शुरूआत प0 श्रीधर पाठक से मानी जाती है। प0 श्रीधर पाठक के अतिरिक्त अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त तथा रामनरेश त्रिपाठी आदि इस काल के प्रमुख कवि है।

स्वच्छन्दतावाद (छायावाद)

इसका समय 1920 ई0 से 1938 ई0 तक माना जा सकता है। छायावाद हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का उत्कर्ष काल है। इस काल के प्रमुख कवि जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा आदि हैं।

उत्तर स्वच्छन्दतावाद (नव स्वच्छन्दतावाद)

इसका समय 1938 ई0 से 1960 ई0 तक माना जा सकता है। इस काल में आकर स्वच्छन्दतावाद का समापन हो जाता है। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नई कविता आदि काव्यान्दोलन प्रारम्भ होते हैं। फिर भी किसी प्रवृत्ति के लिए समय की कोई विभाजक रेखा नही खीची जा सकती। साहित्य मे कई प्रवृत्तियॉ एक साथ चलती रहती हैं। इस काल के प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवियो में माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवश राय 'बच्चन', रामधारी सिह 'दिनकर', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि है।

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद–युग परिस्थितियाँ, प्रेरणा और प्रभाव

पश्चिमी साहित्य एवं विचारधारा

विश्व के इतिहास मे उन्नीसवी शताब्दी का महत्वपूर्ण स्थान है। पुनरूत्थानवादी आन्दोलनो के पश्चात् नवजागरण से उपजी चेतना का साहित्यिक रचनाओ मे समाहार इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आरभ होता है। विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति और बौद्धिकता के द्रुतगामी विकास ने स्थान और काल की इकाईयो को इतना समीप ला दिया है कि आज पाश्चात्य और पौर्वात्य की विभाजक –रेखाये धूमिल हो गयी हैं। पश्चिम के सम्पर्क से भारतीय जीवन और समाज मे जिस तर्कपूर्ण जीवन – दृष्टि का विकास हुआ है, उससे साहित्यकार भी प्रभूतत प्रभावित हुआ है। हमारी जीवन–पद्धति और चितन के क्रम मे भी आपातिक परिवर्तन परिलक्षित होता है। बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण से पश्चिमी चितन ने हमारे देश के ज्ञान की प्रत्येक धारा मे प्रवेश पा लिया था। इस चितन में साहित्यिक संरचना का क्रम भी अनुप्रेरित हुआ और नवीन साहित्यिक कृतियो मे आदर्शवाद, परम्परानुमोदन, भावुकता और काव्यशास्त्रीय प्रतिबद्धता के स्थान पर यथार्थवादी, समकालींन, तर्क प्रवण, स्वच्छन्दतावादी रचना–दृष्टि का विकास हुआ। साहित्यिक सरचना मे इस परिवर्तन क्रम को लक्षित करके हम पाश्चात्य प्रभाव को अनदेखा नहीं कर सकते और न ही पश्चिमी चितन का आदान किसी हीन भाव का द्योतक होना चाहिये। वास्तविकता यह है कि पाश्चात्य चितन के प्रभाव ने हमारी रचना –धर्मिता को नवीन आयाम प्रदान किये है और सृजन की सार्थकता प्रमाणित की है। आधुनिक युग मे सपूर्ण भारतीय साहित्य मे नवीन भावधाराओ एव चितन धाराओ का प्रवाह पश्चिमी साहित्य एवं विचारधारा के सपर्क से और भी वेग से प्रवाहमान हो चला है।

भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के आरंभ का काल देश में राजनैतिक संघर्षों और राष्ट्रीय आन्दोलन एव विद्रोह का काल रहा है। कई शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् संपूर्ण भारत की विद्रोही चेतना का विस्फोट सन् 1857 ई0 के प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम के रूप में प्रकट हुआ। भारत में भी प्राचीन एव नवीन के बीच संघर्ष चलने लगा। सन् 1857 ई0 में ईस्ट इडिया कपनी का अधिकार समाप्त हो गया और

ब्रिटिश क्राउन ने राज्य शासन का भार स्वय ग्रहण कर लिया। महारानी विक्टोरिया ने घोषणा की कि सभी जातियो एव धर्मों के प्रति पूर्ण न्याय किया जाएगा। भारतीयो के धार्मिक विषयो मे कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। शासन के द्वारा भी सभी का संरक्षण होगा और जनता का कल्याण ही सरकार का लक्ष्य होगा। देशी राजाओ की सुरक्षा एव स्वातन्त्र्य का ध्यान रखा जायेगा। उन्होने सरकार की राज्य विस्तार की नीति को भी छोडने की घोषणा की। इन घोषणाओ के फलस्वरूप भारतीय जनता मे सरकार के प्रति विश्वास की भावना जगने लगी। संपूर्ण भारत के वायुमडल मे एक प्रकार की आशा और प्रफुल्लता छा गयी। रेल, डाक, तार और शिक्षा आदि की व्यवस्था के कारण विदेशी सरकार के प्रति जनता मे कृतज्ञता की भावना उमड पडी।

किन्तु क्रमशः भारतीयो को यह विदित हुआ कि जो कुछ सरकार ने उनकी सुविधा के निमित्त किया है, वह सब केवल अभिनय मात्र था। इन सुधारो के पीछे कोई सद्भावना नहीं थी। भारतीयो को यह ज्ञात हो गया कि अग्रेजो ने देश भर मे रेलो का जाल केवल अपने स्वार्थ की दृष्टि से ही बिछाया था। रेलों के द्वारा भारत का कच्चा माल बडे–बडे नगरो तक शीघ्रता से पहुँचाया जा सकता था और वहॉ से जहाजो पर लादकर विदेशो मे पहुँचाया जा सकता था। इसका अन्य कारण यह भी रहा कि अवसर पडने पर अपनी सेना को रेलो द्वारा भारत के किसी भी कोने मे भेज सकते थे। ब्रिटेन की स्वार्थमयी व्यावसायिक वृत्ति अत्यन्त तीव्र हो गयी और उसने भारत मे अधिक पूँजी लगायी। ब्रिटेन ने भारत का आर्थिक शोषण करना शुरू किया। उसके इस कृत्य का खुलासा दादाभाई नौरोजी ने 'पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इडिया' नामक पुस्तक मे किया। उन्होने 'आर्थिक निकासी' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जिससे ब्रिटेन द्वारा भारत के शोषण का पर्दाफाश हुआ।

परिस्थितियो की कठोरता ने भारतीय जनता में अविश्वास एव विद्रोह की भावनाओं का सचार किया। ब्रिटिश शोषण के खिलाफ आन्दोलन छिड गया। इस देश व्यापी आन्दोलन का चरमोत्कर्ष उस समय लक्षित हुआ, जब सन् 1885 ई0 मे भारतीय जनता ने पहली बार एक राष्ट्रीय झडे के नीचे संगठित होकर इण्डियन नेशनल काग्रेस (भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस) की स्थापना की। आरभ मे अंग्रेजी सरकार कांग्रेस के कार्य–कलापों के प्रति उदासीन थी। एक अग्रेज अफसर ए0 ओ0 ह्यूम द्वारा स्थापित होने के

कारण अग्रेजी सरकार इसे सुरक्षा कपाट (सेफ्टी वाल्ब) मानकर चल रही थी। किन्तु शीघ्र ही वह इस सस्था की गतिविधियो को सतर्कता एव जागरूकता के साथ देखने लगी। काग्रेस सस्था द्वारा भारत की राष्ट्रीय चेतना का विकास हो रहा था। इसी समय भारत के राजनीतिक क्षेत्र मे एक आकस्मिक घटना घटी, जिसने भारत के स्नायुजाल मे विद्रोह की लपटो को भडकाने का काम किया। सन् 1905 ई0 मे तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने अपनी निरकुशता का परिचय देते हुए बगाल को दो भागो मे विभक्त कर दिया और इसकी घोषणा सरकारी गजट मे कर दी। अभिनव राष्ट्रीयता के प्रादुर्भाव–काल मे सरकार के इस कुकर्म ने भारतीय प्रतिष्ठा पर कुठाराघात किया और काग्रेस ने इसका वीरोचित विरोध किया। अखण्ड भारत की राष्ट्रीयता का प्रतीक 'वन्देमातरम्' का गीत जनता के अधरो पर गूँज उठा और स्वदेशी आन्दोलन देश भर मे व्याप्त हो गया। सन् 1905 ई0 मे एशिया के छोटे किन्तु सुसगठित देश जापान ने रूस जैसे विशाल यूरोपीय देश को पराजित कर दिया। इस घटना ने यह प्रमाणित किया कि अब यूरोपीय देश अजेय नही हैं। जापान की विजय ने पराधीन देशो में एक प्रकार का आत्मगौरव एव आत्मनिर्भरता की भावना प्रतिष्ठित कर दी। इसी समय तुर्की ने यूनानियो को पराजित किया। इसी तरह जर्मनी और इटली का राष्ट्रो के रूप मे सगठित होना, आयरलैण्ड का होमरूल आन्दोलन, फ्रास की राज्य क्रान्ति तथा अमेरिका का स्वतन्त्रता सग्राम– इन सभी ने भारत की सामान्य जनता को सगठन और राष्ट्रीयता का महत्व समझा दिया। फलस्वरूप सपूर्ण भारत–जाति अपने कुल, जाति एव धर्म के स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्रीयता की व्यापक भावना मे दीक्षित होने लगी थी। राष्ट्रीयता के विकास ने सपूर्ण देश के लिये एक देशीय भाषा की आवश्यकता का अनुभव कराया और आगे चलकर हिन्दी ऐसी भाषा के रूप मे सर्वमान्य हुई। इसी समय से काग्रेस ने भी आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास एव दृढता के साथ अपना कार्यक्रम प्रारंभ कर दिया।

लार्ड मिन्टो (1906 ई0 – 1910 ई0) के समय तक बग–भग से सम्बद्ध स्वदेशी आन्दोलन चलता रहा। वास्तव में बग–भग के पीछे हिन्दुओ और मुसलमानो को विभक्त करके उन पर शासन का षड्यन्त्र कार्य कर रहा था, क्योकि बगाल के पूर्वी भाग मे मुसलमान एव पश्चिमी भाग में हिन्दू अधिक थे। ब्रिटिश सरकार की निरकुशता ने काग्रेस में अतिवादियो को जन्म दिया, जो विद्रोह और सशस्त्र क्रान्ति का

समर्थन करने लगे। फलतः सन् 1906 ई0 मे कलकत्ता के अधिवेशन मे काग्रेस के नरमदल (मितवादी) एव गरमदल (अतिवादी) मे विभक्त होने की नौबत आयी। इतना होने के बाद भी सभापति दादाभाई नौरोजी ने यह घोषणा की कि 'स्वराज हमारा लक्ष्य है।' काग्रेस मे यह प्रस्ताव पास हुआ कि अब से काग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य है, शासन–सुधार मात्र नही। सन् 1907 ई0 मे सूरत अधिवेशन मे काग्रेस विभाजित हो गयी। नरमदल के नेता गोपाल कृष्ण गोखले थे और अतिवादियो के नेता बाल गगाधर तिलक हुए। गरमदल से प्रभावित होकर अनेक युवा क्रान्तिकारियो ने हिसक आन्दोलन का सहारा लिया। पजाब के गरमदल के नेता लाला लाजपत राय देश से निर्वासित कर दिये गये। बाल गगाधर तिलक को छ वर्ष की सजा मिली। सरकार ने भारत के समाचार पत्रो का स्वातन्त्र्य छीन लिया। इस प्रकार सरकार का दमन–चक्र जनता पर क्रूरता के साथ चल रहा था।

सन् 1906 ई0 में सर सैयद अहमद खॉ के अनुयायियो ने 'मुस्लिम लीग' की स्थापना की। सन् 1909 ई0 मे मिन्टों–मार्ले–सुधार प्रस्तुत किये गये, जिनके अनुसार कौसिलों से लेकर जिला बोर्डो तक मे प्रतिनिधि चुनाव द्वारा चुने जा सकते थे। इस समय तक अंग्रेज काग्रेस से किसी न किसी प्रकार समझौता करना चाहते थे। लार्ड हार्डिंग द्वितीय (1910 ई0 – 1916 ई0) अंग्रेजो की इस समझौतावादी नीति के प्रतिनिधि बनकर आये । कांग्रेस ने सन् 1910 ई0 के प्रयाग अधिवेशन मे उनके आगमन पर अपना सतोष प्रकट किया। हार्डिंग के उदार दृष्टिकोण के कारण भारत की राजनैतिक परिस्थितियो मे शान्ति छा गयी। बगाल का विभाजन रद्द कर दिया गया।

सन् 1914 ई0 मे प्रथम विश्व युद्ध शुरू हो गया। इस युद्ध मे भारत ने ब्रिटेन की सहायता अत्यन्त तत्परता के साथ की। सन् 1918 ई0 मे युद्ध समाप्त होने के बाद अग्रेजी सरकार ने भारत को उनकी सेवाओं के बदले कुछ नहीं दिया। सरकार की ओर से सन् 1919 ई0 मे 'माटेग्यू–चेम्सफोर्ड–सुधार पत्र' प्रस्तुत हुआ, जिससे भारतीय सतुष्ट नहीं थे। इसी अवसर पर क्रान्तिकारियो के दमन के लिये सरकार ने रौलेट एक्ट पास किया। महात्मा गांधी के नेतृत्व मे भारत की संपूर्ण जनता ने हडताल करके उसका घोर विरोध किया। सरकार ने दमन की नीति अपनायी। इस नीति की पराकाष्ठा उस समय दिखाई पडी, जब 13 अप्रैल, 1919 ई0 को पजाब के जलियॉवाला बाग में जनरल डायर ने नागरिकों की

शान्तिपूर्ण विशाल सभा पर बिना चेतावनी के गोली चलवा दी। सैकडो लोग गोलियो से भून डाले गये। सन् 1920 ई0 मे कलकत्ता काग्रेस मे गॉधी जी ने असहयोग आन्दोलन की योजना बनायी और उसी वर्ष दिसम्बर के नागपुर अधिवेशन मे शान्तिपूर्ण अहिसात्मक उपायो द्वारा स्वराज्य प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित हुआ। सरकारी स्कूलो, कालेजो तथा दफ्तरो का परित्याग, सरकारी उपाधियों का त्याग आदि कार्य इस आन्दोलन के प्रधान अग थे। खद्दर का उपयोग, चरखे का प्रयोग एव प्रचार शुरू हुआ। इस आन्दोलन मे काग्रेस और मुस्लिम लीग ने मिलकर कार्य किया और आन्दोलन की लहरे देशभर मे फैल गयी। सन् 1929 ई0 मे भारत के सपूर्ण स्वातन्त्र्य को ही काग्रेस ने अपना लक्ष्य घोषित किया। सन् 1930 ई0 मे गॉधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया। सन् 1931 ई0 मे भगत सिह और उनके दो साथियो को फॉसी दे दी गयी। इससे सपूर्ण देश स्तब्ध रह गया। तीन गोलमेज सम्मेलनो से भी कोई हल नहीं निकला। सन् 1939 ई0 से 1945 ई0 तक द्वितीय विश्वयुद्ध चला। इसी समय भारतीयो ने अपना सघर्ष तेज कर दिया। सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज के माध्यम से सशस्त्र सघर्ष चलाया। महात्मा गॉधी के नेतृत्व मे 'भारत छोडो आन्दोलन' चलाया गया। इन घटनाओ से भारत की स्वतन्त्रता का समय नजदीक आया। 15 अगस्त सन् 1947 ई0 को देश को आजादी मिली। स्वतत्रता सघर्ष सिर्फ एक राजनीतिक आदोलन ही नहीं था, यह सामाजिक–सास्कृतिक आन्दोलन भी था। राजनीतिक घटनाओ ने साहित्यिक आन्दोलनों को भी प्रभावित किया। स्वतन्त्रता हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य आन्दोलन का बहुत बडा मूल्य है।

सामाजिक परिस्थितियॉ (आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थितियॉ)

उन्नीसवी शताब्दी के अतिम दशको तथा बीसवी शताब्दी के प्रारभिक दशको मे भारत की सामाजिक परिस्थितियों ने स्वच्छन्दतावादी कवियो को प्रभावित किया। उन पर पाश्चात्य विचारधारा का भी प्रभाव पडा। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के साथ पाश्चात्य विचारधारा भारत मे प्रविष्ट हो गयी थी। समानता, विश्व बन्धुत्व की भावना तथा पाश्चात्य विचारो ने स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा के विकास मे योगदान दिया।

स्वच्छन्दतावादी काव्य के उद्भव और विकास को समकालीन आर्थिक परिस्थितियो ने भी प्रभावित किया। भारत मे पूँजीवाद को बल मिलने के पश्चात् नगरो का विकास होने लगा था। नगरो मे रहने वाले मध्यम वर्ग ने अपना अस्तित्व बनाये रखा। स्वच्छन्दतावाद के अधिकतर कवि इसी मध्य वर्ग के हैं और प्राय स्वच्छन्दतावादी काव्य मध्यवर्गीय चेतना का परिणाम समझा जाता है। दोनो विश्वयुद्धो के बीच भारत के आर्थिक सकट से भारतीय जनता मे जो निराशा छा गयी थी, उसका प्रभाव स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा पर पडा। अत- स्वच्छन्दतावादी काव्य मे अभिव्यक्त निराशा तथा वेदना की प्रवृत्ति कुछ हद तक युग की इन आर्थिक परिस्थितियो से प्रभावित जान पडती है।

कोई भी साहित्यिक आन्दोलन अपने युग की सामाजिक परिस्थितियो से प्रेरणा तथा प्रभाव ग्रहण करता है। कवि भी सामाजिक प्राणी है। अत वह उससे प्रभावित हुये बिना नही रह सकता। भारतीय सामाजिक नवजागरण के प्रवर्तन का प्रथम श्रेय पाश्चात्य सपर्क को है। अग्रेजो के शासन मे आने के उपरान्त ही यूरोप से भारत का सम्बन्ध घनिष्ठ हो गया। इस प्रकार पाश्चात्य सपर्क से भारत पर पाश्चात्य प्रभाव का पडना अत्यन्त स्वाभाविक ही है। अग्रेजो के भारत मे आने से पूर्व ही देशीय भाषाओ मे शिक्षा का सम्यक् प्रचार था। परन्तु इस शिक्षा पद्धति के अत्यन्त प्राचीन होने के कारण उसमे निर्जीवता आ गयी थी । अग्रेजों ने भारत मे अपने राज्य को सुस्थिर रखने तथा ईसाई धर्म का प्रचार करने की आवश्यकता का अनुभव किया। लार्ड मैकाले के परामर्श से लार्ड विलियम वेटिक ने अग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम होने की घोषणा की। राजा राममोहन राय आदि भारतीय नेताओ ने इस घोषणा का समर्थन किया। युवको मे भी अग्रेजी भाषा सीखने का उत्साह क्रमश बढने लगा। प्रत्येक अग्रेजी पढे–लिखे व्यक्ति को सरकारी नौकरी से प्राप्त होने वाली सुविधा और प्रतिष्ठा को देखकर असख्य युवक अग्रेजी शिक्षा की ओर उन्मुख हुए। शीघ्र ही अग्रेजी शिक्षा लोकप्रिय हो गयी। शिक्षा को बगाल और मद्रास मे अधिक प्रोत्साहन मिला। अग्रेजी शिक्षा के माध्यम से नवीन यूरोप के साथ भारत का सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस प्रकार पाश्चात्य सपर्क से भारत मे आकस्मिक और आमूल परिवर्तन हुए।

वस्तुत आधुनिक भारत का जन्म ही अग्रेजी शिक्षा पद्धति की गोद में हुआ। इसके पहले जनता समाज और देश के प्रति अपने कर्तव्य को भूल चुकी थी। ऐसी दशा मे अग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य

साहित्य के प्रभाव से बहुत से व्यक्तियो को अपने देश और समाज के प्रति कर्तव्य का बोध हुआ। व्यक्ति अपने सकुचित स्वार्थों के घेरे से उठकर देश और उसकी जनता के प्रति प्रेम भावना रखने लगा। अग्रेजी शिक्षा के माध्यम से देश के प्रति जो नवीन चेतना जगी, उसी के भीतर से भारत के राजनैतिक, सामाजिक और सास्कृतिक नवजागरण का जन्म हुआ। इस प्रकार मध्ययुग की अन्ध कारा को चीरकर आधुनिक भारत वासीयो ने नवीन चेतना का साकार रूप धारण कर लिया। यूरोप मे अठारहवी शताब्दी के अत तक जो क्रान्तिकारी विचारक उत्पन्न हुए, उन्नीसवी सदी मे आकर उनके विचारो ने एक निश्चित दर्शन का रूप धारण कर लिया। ऐसे विचारको मे रूसो, वाल्टेयर और मान्टेस्क्यू प्रमुख हैं। वे फ्रासीसी क्रान्ति के उन्नायक नेता तथा विचारक थे। स्वतन्त्रता, समानता एव भ्रातृ भावना उन्ही के विचारो का मूल स्वर है। यूरोपीय सपर्क से भारत मे भी विचारो का आन्दोलन सहस्र धाराओ मे बह चलने लगा। कविता, नाटक, उपन्यास, आलोचना, निबन्ध, दर्शन, राजनीति, धर्म आदि क्षेत्रो मे इन नवीन विचारो का अत्यधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। इस सन्दर्भ मे राष्ट्रकवि एवं मान्य विचारक रामधारी सिह 'दिनकर' का कथन है– 'इन सारे विचारो और आन्दोलनों का उत्तराधिकार भारत को आप से आप प्राप्त हो गया, क्योकि अग्रेजी भाषा के द्वारा इस देश के चितक यूरोपीय विचारो के गहन सपर्क मे थे। भारतवर्ष मे अग्रेजी की पुस्तके और समाचार पत्र धडल्ले से आ रहे थे। अतएव यूरोप मे चलने वाले वैचारिक आन्दोलनो के साथ भारत अनायास सम्बद्ध हो गया तथा जिन भावनाओ की चोट से यूरोप के मस्तिष्क की शिराये थर–थरा रही थी, उन भावनाओ की चोट भारत मे भी महसूस होने लगी। यूरोप की वैचारिक क्रान्तियो मे उस समय भारत ने अपना योगदान विचारक की हैसियत से भले न दिया हो, किन्तु उनका प्रभाव ग्रहण करने मे यह देश यूरोप से पीछे नहीं रहा।'[46]

इस प्रकार भारतीय जनता में नवजागरण की चेतना जगी और उनकी दृष्टि समाज और धर्म की प्राचीन मान्यताओ, कुरीतियो तथा अन्ध विश्वासो पर गयी। जनता के मन मे एक प्रकार का असन्तोष छा गया और वह सरकार से वाक्–स्वातन्त्र्य की मॉग करने लगी।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक जागरण

आरम्भ से ही भारत एक धार्मिक देश रहा है और समय–समय पर यहाँ विभिन्न धर्मों का प्रचार एवं प्रसार था। धर्म और साहित्य मे अटूट सम्बन्ध होने के कारण यहाँ साहित्य को धार्मिक प्रचार के निमित्त एक साधन के रूप मे स्वीकार किया गया। इसके अतिरिक्त यहाँ के मानव जीवन पर धर्म का प्रभाव लक्षित होता है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म को प्रधानता दी जाती है। यह धार्मिक प्रवृत्ति वैदिक काव्यो से लेकर आधुनिक स्वच्छन्दतावादी काव्य धाराओ तक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। सस्कृत के महाकाव्यो से लेकर आधुनिकतम हिन्दी महाकाव्य 'कामायनी' तक भारत की सर्जनात्मक प्रतिभा काव्य के माध्यम से भारत के सास्कृतिक वैभव तथा स्वस्थ जीवन–दर्शन को ही वाणी देने मे लगी हुई है। अपने रस और सौन्दर्यमूलक मान्यताओ तथा मूल्यो की रक्षा करते हुए भी भारतीय काव्य सदा अन्तस्थल मे मानव के लिये उज्ज्वल धार्मिक सन्देश वहन करते आया है। प्राचीन काल से भारतीय काव्य और कला मे धार्मिक विचार धारा अन्त सलिला की भॉति बहती चली आ रही है, कभी प्रत्यक्ष और कभी परोक्ष रूप से, कभी क्षीण और कभी क्षिप्र वेग से। परन्तु पाश्चात्य सपर्क से भारतीय जीवन पद्धति मे कई परिवर्तन हुये। भारत का मानसिक कायाकल्प हो गया। इसी समय हिन्दू धर्म पर ईसाई तथा इस्लाम धर्मों के आक्रमण अनेक रूपों मे हो रहे थे। ऐसी दशा मे हिन्दू धर्म के मनीषी अपने धर्म की दुर्बलताओं को हटाकर उसमे सजीवनी शक्ति भरने के लिए कटिबद्ध हो गये। उन्ही के प्रयासो से हिन्दू धर्म मे नवीन शक्ति का सचार हुआ और भारत का सास्कृतिक नवजागरण एक सुदृढ आधार शिला पर खडा हुआ।

अत· इन नवीन परिस्थितियो के कारण भारतीय जनता मे जो नवीन चेतना का सचार हुआ, जो नवीन उत्साह की तरगे उठी, वे ही भारत के सास्कृतिक जागरण की प्रेरणा थी, जिनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के प्रवर्तन मे कार्य कर रहा था।

काव्य रूढ़ियों से मुक्ति

भारतीय साहित्य के मध्ययुग के अंत तक काव्य मे घटना–वैविध्य तथा विषयवस्तु की नवीनता का नितान्त अभाव एवं इतिवृत्तात्मकता तथा उपदेशात्मकता का आधिक्य था। इन्हीं के पिष्टपेषण के कारण काव्य में नीरसता आ गयी थी। प्रायः कवि गण समस्या–पूर्ति, आशु कविता तथा तुकबन्दी किया

करते थे। ऐसी रचनाओ मे काव्यत्व की मात्रा कम तथा चमत्कार की मात्रा अधिक होती थी। इस समय के काव्य–प्रणेताओ मे न सूक्ष्म भावो को अभिव्यक्त करने की क्षमता थी और न सहृदय को रमाने की शक्ति थी। इस समय के काव्य मे आडम्बर, बोझिलता, अति अलकारिता, उपदेश–प्रवणता एव नीतिमत्ता का प्राधान्य था। ऐसे साहित्य के आस्वादन मे बाधा उत्पन्न होने के कारण लोकरूचि मे परिवर्तन आना स्वाभाविक था। देश की सपूर्ण भाषाओ की कविता रूढि की श्रृखलाओ से मुक्त होने के लिए छटपटाने लगी।

उन्नीसवी शती के अत तक हिन्दी साहित्य रूढि ग्रस्त रहा। ये रूढियॉ अनेक रूपो मे साहित्य की गतिविधि को रोक लेती थी। हिन्दी काव्य–क्षेत्र मे रीतिकाव्यो तथा प्रबन्ध काव्यो की परम्परा अविच्छिन्न रूप से चल रही थी। भारतेन्दु के प्रयासो से कविता राजदरबारो के घेरे से बाहर निकलकर जनता की ओर आकर्षित होने लगी। अधिकाश सस्कृत एव अग्रेजी के काव्यो का अनुवाद किया गया। इस युग मे पाश्चात्य शिक्षा के साथ साहित्यिको के सपर्क की वृद्धि होने के कारण पाश्चात्य काव्यो के अनुकरण पर भी काव्य लिखे जाने लगे। पाश्चात्य शिक्षा एव साहित्य का अप्रत्यक्ष प्रभाव ग्रहण करते हुये भी इस काल की कविता की मूल आधारशिला भारतीय सस्कृति ही है।

इस युग मे काव्य क्षेत्र मे अनेक परिवर्तन किये गये। रीतिकालीन काव्य भाषा (ब्रजभाषा) को छोडकर खडीबोली मे कविगण रचना करने लगे। खडीबोली का सस्कार कर उसे सस्कृतगर्भित बनाया गया। इस युग मे हिन्दी काव्य क्षेत्र मे नवीन छन्दो का प्रयोग हुआ। पडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव को ग्रहण करने वाले अधिकतर कवियो ने सस्कृत के वर्णवृत्तो क़ा प्रयोग किया। कवित्त, सवैया तथा दोहा आदि रीतिकवियो के प्रयुक्त छन्दो को कोई प्राधान्य नहीं दिया गया। खडीबोली मे काव्य इस युग मे एक नवीन आकार को ग्रहण करने लगा। रीति तथा प्रबन्ध काव्यो मे कतिपय धार्मिक रूढियॉ विद्यमान थी। नायक और नायिका के रूप में कृष्ण और राधा का आरोप किया जाता था। द्विवेदी युग तक आते–आते विषय–वस्तु को नवीन परिवेश में परखा गया। इस युग मे यद्यपि पौराणिक कथाओ तथा ऐतिहासिक वीरो के सम्बन्ध में कविताए लिखी गयीं, तथापि उनके कथानक को कवियों ने अपनी रूचि के अनुरूप परिवर्तित कर उसे युग की मान्यताओ के सॉचे मे ढाल दिया। इस युग के कवियो ने नैतिकता

एव सामाजिक आदर्श को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। ऐसे कवियों मे मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रमुख हैं।

इस युग के हिन्दी काव्य–साहित्य मे नव निर्माण की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति अवश्य थी, परन्तु वह प्राचीन काव्य रूढियो को पूर्ण रूप से बदल न सकी। आधुनिक काव्य–साहित्य भी धार्मिक भावना के रूढिगत प्रभाव से छूट नहीं पाया था। चरित्रो की अलौकिकता का रूढ स्वरूप अब भी शेष रह गया था। नैतिक एव उत्साहवर्धक उपदेश देना ही इस युग के काव्य का मुख्य उद्देश्य बन गया था। निष्कर्ष तो इतना ही है कि मध्ययुगीन काव्य रूढियो का कुछ हद तक इस युग ने विरोध किया। इस युग की विद्रोही भावना केवल एक भूमिका मात्र है जो आगे चलकर स्वच्छन्दतावादी काव्य मे स्पष्ट रूप से दिखाई पडी । इसी समय पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद भी भारतीय काव्य साहित्य पर अपना प्रभाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दिखाने लगा। अग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवको पर अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का प्रत्यक्ष प्रभाव कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर के माध्यम से पडा। उसी समय पाश्चात्य देशो मे प्रचार पाने वाले अनेक कला सम्बन्धी वादो का भी प्रभाव हिन्दी के काव्य साहित्य पर देखने को मिलता है, जिसमे कलावाद, व्यक्तिवाद, प्रतीकवाद तथा अभिव्यजनावाद प्रमुख हैं।

निष्कर्ष

स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन किसी एक कारण का परिणाम नही है। रामधारी सिह 'दिनकर' का कहना है– 'द्विवेदी युग को समीप देखकर हम आसानी से कह देते है कि छायावाद द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक काव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप आया था। किन्तु गहराई से देखने पर यह स्पष्ट दिखाई पडेगा कि छायावादी आन्दोलन का मूल इतना समीप नहीं था। मूलत यह भारत के उस सास्कृतिक नवोत्थान का परिणाम था जिसका प्रवर्तन राजा राममोहन राय ने किया तथा जिसके व्याख्याता केशव चन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्रीमती एनी बेसेन्ट, लोकमान्य बाल गगाधर तिलक और महात्मा गॉधी हुए हैं। कविता का यह प्रयास उस नई मानवता की अभिव्यक्ति का प्रयास था,जिसका जन्म भारत–यूरोप के सपर्क से हुआ था और अंग्रेजी शिक्षा के कारण स्वाधीनता, उदारता, वैज्ञानिकता और बुद्धिवाद विषयक यूरोपीय विचारधाराओ की सहज उत्तराधिकारिणी हो गयी थी।[47]

वस्तुत हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का उत्कर्ष बीसवी शताब्दी के द्वितीय दशक के आरभ से अवश्य होता है, परन्तु इस काव्य धारा के बीज अग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य विचारो के भारत मे प्रवेश करने के समय से ही स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं। यह काव्य धारा यूरोपीय स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा से कई अर्थों मे भिन्न भी रही, क्योकि हिन्दी स्वच्छन्दतावाद एक परतन्त्र देश की उपज था।[48] भारत मे इस काव्य धारा का सास्कृतिक पक्ष अत्यन्त प्रबल रहा है। डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है– 'यहॉ राष्ट्रीय से अधिक सपूर्ण सास्कृतिक जागरण प्रधान है। राष्ट्रीय जागरण वस्तुत सास्कृतिक जागरण के अग के रूप मे आता है जो पुनर्जागरण की मूल प्रक्रिया के अनुरूप है। यो कह सकते हैं कि छायावाद की राष्ट्रीयता मे आधार राजनीति की अपेक्षा सस्कृति है।[49] अधिकतर स्वच्छन्दतावादी कवियो ने अपनी काव्य–सर्जना मे राजनीतिक प्रभावो को स्थूल रूप मे ग्रहण नहीं किया। उनका उपचेतन पूरी तरह राष्ट्रीयता से अभिभूत था। उनकी राष्ट्रीयता भारतीय सस्कृति की गंभीर चेतना और सास्कृतिक मूल्यो की भास्वर अनुभूति से सम्पन्न थी।[50]

अस्तु, यह स्वीकार करना पडता है कि हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य–धारा के प्रादुर्भाव मे भारत की समकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक–सास्कृतिक परिस्थितियो ने कम या अधिक मात्रा मे अपना सहयोग दिया है। इन्ही परिस्थितियो से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण कर हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा ने अपना विकास किया।

संदर्भ

1 नालन्दा विशाल शब्द सागर–सपादक– श्री नवलजी, पृष्ठ–1518

2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–409

3 डॉ0 देवराज उपाध्याय–रोमाटिक साहित्य शास्त्र (भूमिका–डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी), पृष्ठ–1

4 डॉ0 रामधारी सिह दिनकर–शुद्ध कविता की खोज, पृष्ठ–29–30

5 डा0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल–आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और सौन्दर्य, पृष्ठ– 325

6 डॉ0 अजब सिह– आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–1

7 डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र–हिन्दी का समसामयिक साहित्य, पृष्ठ–54

8 डॉ0 जगदीश गुप्त–स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का दार्शनिक विवेचन, पृष्ठ–9

9 डॉ0 अजब सिह–आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–44

10 डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा–हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद, पृष्ठ–9

11 डॉ0 देवराज उपाध्याय–रोमाटिक साहित्यशास्त्र (भूमिका–डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी), पृष्ठ–2

12 डा0 रामचन्द्र मिश्र–श्रीधर पाठक और हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–46

13 डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा–हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद, पृष्ठ–10

14 डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र–घनानद कवित्त (प्रस्तावना), पृष्ठ –3

15 डॉ0 अजब सिह–आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–12

16 डॉ0 कृष्ण चन्द्र वर्मा–घनानद, पृष्ठ–1

17 डॉ0 रामधारी सिह 'दिनकर'–चक्रवाल (भूमिका), पृष्ठ–1

18 डॉ0 जयकिशन प्रसाद–हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–261

19. डॉ0 रामधारी सिह 'दिनकर'–सस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ–438–439

20 डॉ0 प्रेमशकर–हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–64

21 डा0 श्याम सुन्दर दास–हिन्दी साहित्य . आधुनिक काल, पृष्ठ–235

22 डॉ0 सुधीन्द्र–हिन्दी कविता का क्रान्ति युग, पृष्ठ–26

23 डॉ0 रघुवश–हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियॉ (भूमिका), पृष्ठ–12

24 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–410

25 डॉ0 रामचन्द्र मिश्र–श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–260

26 डॉ0 हरिकृष्ण पुरोहित–आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव, पृष्ठ–185

27 डॉ0 रामचन्द्र मिश्र–श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –339

28 डॉ0 नामवर सिह– छायावाद, पृष्ठ–12

29 डॉ0 नामवर सिह–आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियॉ, पृष्ठ–17

30 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–409

31 वही, पृष्ठ–439

32 वही, पृष्ठ–442

33 वही, पृष्ठ–443

34 डॉ0 नामवर सिह–छायावाद, पृष्ठ –15

35 वही, पृष्ठ –14

36 वही, पृष्ठ–16

37 वही, पृष्ठ–16

38 वही, पृष्ठ–16

39 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, पृष्ठ–512

40 डॉ0 बच्चन सिह–हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ–352

41. डॉ0 प्रेमशकर–हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–9

42 डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा–हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद, पृष्ठ–12

43. डा0 प्रेमशकर–हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–68

44 वही, पृष्ठ–68

45 डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा–हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद, पृष्ठ–12

46 डॉ0 रामधरी सिह 'दिनकर'–सस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ–503

47 डॉ0 रामधारी सिह 'दिनकर'–काव्य की भूमिका, पृष्ठ –135–136

48 डॉ0 प्रेमशकर–हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–109

49 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी–आधुनिक कविता–यात्रा, पृष्ठ–19–20

50 डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा–हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद, पृष्ठ–25

अध्याय-3

स्वच्छन्दतावादी काव्य-विवेचन

अध्याय–3

स्वच्छन्दतावादी काव्य–विवेचन

स्वच्छन्दतावादी काव्य–विवेचन का प्रारंभ

स्वच्छन्दतावादी काव्य के उद्‌भव के साथ ही उसका विवेचन आरभ हो गया था। स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग सबसे पहले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया। हिन्दी मे इस तरह के काव्य के विवेचन का प्रारभ भी उन्होंने ही किया।

रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सर्वप्रथम आलोचक हैं, जिन्होने स्वच्छन्दतावाद के स्वरूप पर प्रामाणिक रूप से विचार किया है। अपने इतिहास ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे आधुनिक काल मे 'काव्य–खण्ड . नई धारा – द्वितीय उत्थान' के अन्तर्गत उन्होने स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध मे अपनी मान्यताओ को इस प्रकार व्यक्त किया है–

"पडितो की बँधी प्रणाली पर चलने वाली काव्य–धारा के साथ–साथ सामान्य अपढ जनता के बीच एक स्वच्छन्द और प्राकृतिक भावधारा भी गीतो के रूप मे चलती रहती है – ठीक उसी प्रकार जैसे बहुत काल मे स्थिर चली आती हुई पडितो की साहित्य भाषा के साथ–साथ लोक भाषा की स्वाभाविक धारा भी बराबर चलती रहती है। जब पडितो की काव्यधारा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढती हुई लोकभाषा से दूर पड जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है, तब शिष्ट समुदाय लोकभाषा का सहारा लेकर अपनी काव्य परम्परा मे नया जीवन डालता है। प्राकृत के पुराने रूप से लदी अपभ्रश जब लद्धड होने लगी तब शिष्ट काव्य प्रचलित देशी भाषाओ से शक्ति प्राप्त करके ही आगे बढ सका। यही प्राकृतिक नियम काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध मे भी अटल समझना चाहिए। जब–जब शिष्टो का काव्य पडितो द्वारा बँधकर निष्चेष्ट और सकुचित होगा, तब–तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।

यह भाव धारा अपने साथ हमारे चिर परिचित पशु–पक्षियो, पेड–पौधो, जगल–मैदानो आदि को भी समेटे चलती है। देश के स्वरूप के साथ यह सम्बद्ध चलती है। एक गीत मे कोई ग्रामवधू अपने वियोग काल की दीर्घता की व्यजना अपने चिर–परिचित प्रकृति व्यापार द्वारा इस भोले ढग से करती है– 'जो नीम का प्यारा पौधा प्रिय अपने हाथ से द्वार पर लगा गया वह बडा होकर फूला और उसके फूल भी झड गये, पर प्रिय न आया।'

इस भावधारा की अभिव्यजन प्रणालियॉ वे ही होती हैं जिन पर जनता का हृदय इस जीवन मे अपने भाव स्वभावत· ढालता आता है। हमारी भाव प्रवर्तिनी शक्ति का असली भण्डार इसी स्वाभाविक भावधारा के भीतर निहित समझना चाहिए। जब पंडितो की काव्य धारा इस स्वाभाविक भाव धारा से विच्छिन्न पडकर रूढ हो जाती है, तब वह कृत्रिम होने लगती है और उसकी शक्ति भी क्षीण होने लगती है। ऐसी परिस्थिति मे इसी भावधारा की ओर दृष्टि ले जाने की आवश्यकता होती है। दृष्टि ले जाने का अभिप्राय है उस स्वाभाविक भावधारा के ढलाव की नाना अन्तर्भूमियो को परखकर शिष्ट काव्य के स्वरूप का पुनर्विधान करना। यह पुनर्विधान सामजस्य के रूप मे हो, अध प्रतिक्रिया के रूप मे नही, जो विपरीतता की हद तक जा पहुॅचती है। इस प्रकार के परिवर्तन को ही अनुभूति की सच्ची नैसर्गिक स्वच्छन्दता (ट्रू रोमाटिसिज्म) कहना चाहिए, क्योकि वह मूल प्राकृतिक आधार पर होता है।"[1]

स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जो विवेचन प्रस्तुत किया है, उसमे स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रमुख विशेषताओ का समावेश हो जाता है। आर्चाय रामचन्द्र शुक्ल ने स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की जीवनी शक्ति और अभिव्यक्ति का आधार लोकभूमि को माना है। उन्होने यह भी भली भांति स्पष्ट कर दिया है कि परिवर्तन की भावना ही वह मूल प्रेरणा है जो स्वच्छन्दतावादी काव्य का सृजन कराती है। इस प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विवेचन से हम स्वच्छन्दतावाद की आधार भूमि से परिचित होते हैं, जिसके माध्यम से स्वच्छन्दतावादी काव्य की व्याख्या की जा सकती है। फिर भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस विवेचन मे भी स्वच्छन्दतावाद की सर्वांगपूर्ण व्याख्या नही हो पाती। उन्होने स्वच्छन्दतावादी काव्य के लक्ष्य की ओर कोई सकेत नहीं किया है। स्वच्छन्दतावादी काव्य

की अभिव्यजना पद्धति का भी सकेत उन्होने अपने विवेचन मे नही किया है। फिर भी स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध मे प्रारभिक विवेचन होने के कारण उनके विवेचन का विशेष महत्व है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद पर भी विचार किया है, किन्तु उसे स्वच्छन्दतावाद से अलग करके देखा। अपने ग्रथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे 'आधुनिक काल–काव्य खण्ड . नई धारा– तृतीय उत्थान' के अन्तर्गत उन्होने छायावाद पर विचार करते हुए लिखा है– 'अतः इस तृतीय उत्थान मे जो परिवर्तन हुआ और पीछे छायावाद कहलाया, वह इसी द्वितीय उत्थान की कविता के विरुद्ध कहा जा सकता है।'[2]

आचार्य शुक्ल छायावाद को सच्चे स्वच्छन्दतावाद यानी श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी की काव्य धारा से काटकर अलग कर देते हैं। वे इसे इसाई सतो के छायाभास (फैंटासमाटा) से जोडकर देखते हैं। वे लिखते है– 'गुप्त जी और मुकुटधर पाण्डेय आदि के द्वारा स्वच्छद नूतन धारा चली ही थी कि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उन कविताओ की धूम हुई जो अधिकतर पाश्चात्य ढॉचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकर चली थी। परन्तु ईसाई सतो के छायाभास (फैटासमाटा) तथा यूरोपीय काव्य क्षेत्र मे प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिबलिज्म) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बगला मे ऐसी कविताऍ 'छायावाद' कही जाने लगी थी। यह 'वाद' क्या प्रकट हुआ, एक बने बनाए रास्ते का दरवाजा सा खुल पडा और हिदी के कुछ नये कवि एक बारगी झुक पडे। यह अपना क्रमश बनाया हुआ रास्ता नही था। इनका दूसरे साहित्य क्षेत्र मे प्रकट होना, कई कवियों का इस पर एक साथ चल पडना और कुछ दिनों तक इनके भीतर अग्रेजी और बगला की पदावली का जगह–जगह ज्यों का त्यो अनुवाद रखा जाना, ये बाते मार्ग की स्वतत्र उद्‌भावना नही सूचित करती । × × × × × 'छायावाद' नाम चलने का परिणाम यह हुआ कि बहुत से कवि रहस्यात्मकता, अभिव्यजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तुविन्यास की विश्रृखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य मानकर चले।'[3]

आचार्य शुक्ल ने छायावाद को रहस्यवाद और प्रतीकवाद से जोड कर देखा। उन्होने लिखा है– 'प्रणय वासना का यह उद्‌गार आध्यात्मिक पर्दे मे ही छिपा न रह सका। हृदय की सारी काम वासनाएं इन्द्रियो के सुख विलास की मधुर और रमणीय सामग्री के बीच एक बधी हुई रुढि पर व्यक्त होने लगी।

इस प्रकार रहस्यवाद से सम्बन्ध न रखने वाली कविताएँ भी छायावाद ही कही जाने लगी। अत 'छायावाद' शब्द का प्रयोग रहस्यवाद तक ही न रहकर काव्य शैली के सम्बन्ध मे भी प्रतीकवाद (सिबलिज्म) के अर्थ मे होने लगा।'[4]

आचार्य शुक्ल के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उन्होने छायावाद और स्वच्छन्दतावाद को अलग करके देखा । छायावाद को उन्होने द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया माना है। वे छायावाद की विषय वस्तु रहस्यवाद को ईसाई मजहब के छायादृश्य (फैंटामासा) से जोडते है। छायावाद मे प्रतीकवाद (चित्र–भाषावाद), अन्योक्ति पद्धति तथा प्रेमगान को ही मुख्य विषय के रूप मे छायावाद की विशेषताए मानते हैं।

आचार्य शुक्ल की छायावाद सम्बन्धी विवेचना का प्रतिवाद करते हुए डॉ0 बच्चन सिह ने लिखा है– 'छायावाद की सही विवेचना करने मे शुक्ल जी से जो भूल हुई है, उसके मूल मे उनके मानस की वह बुनावट है जो द्विवेदी युगीन नैतिक सूत्रो द्वारा ग्रंथित है। उन्होने उस ऐतिहासिक सस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को सामने नहीं रखा जिसमे राष्ट्रीय आन्दोलन अपने अनेक रूपो मे प्रखर से प्रखरतर होता जा रहा था।'[5]

आचार्य शुक्ल के इस कथन का कि छायावाद मे नाना अर्थभूमियॉ नहीं है, डॉ0 बच्चन सिह ने प्रतिवाद करते हुये लिखा है– 'शुक्ल जी के मतानुसार छायावाद में नाना अर्थभूमियॉ नही है, उसमे मुख्यत प्रेमगान है। पूरा छायावाद काल, जिसे मैं –स्वच्छन्दतावाद काल कहना चाहूँगा, विषयवस्तु, साहित्यिक विधा और भाषा की दृष्टि से इतना वैविध्यपूर्ण है कि आधुनिक काल मे उसका जोड मिलना कठिन है। कविता के क्षेत्र मे भी देश–प्रेम, क्रातिगीत, मुक्त प्रेम, मानवीय समता, ऐतिहासिक–पौराणिक मिथक, सामत, साम्राज्यवाद विरोध आदि को समेट लिया गया है। यदि शुक्ल जी ने निराला की कविताओ पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया होता तो उन्हे अपने नकारात्मक दृष्टिकोण मे परिवर्तन करना पडता।'[6]

आचार्य शुक्ल की समीक्षा दृष्टि छायावादी काव्य के अनुकूल नहीं थी। फिर भी छायावाद की काव्य शैली की उन्होने प्रशसा की है। उनके विवेचन से छायावादी काव्य प्रवृत्ति को समझने मे मदद नहीं मिलती, फिर भी उनके विवेचन का ऐतिहासिक महत्व है क्योकि छायावाद के वे प्रारभिक विवेचको मे थे।

उन्होने छायावाद की प्रकृति सम्बधी कविताओ को पसद किया है। सुमित्रादन पंत के काव्य के प्रति उनका विशेष रुझान इसी कारण था।

मुकुटधर पाण्डेय

स्वच्छन्दतावाद को समझने के लिए मुकुटधर पाण्डेय के विवेचन का विशेष महत्व है। मुकुटधर पाण्डेय छायावाद के आदि व्याख्याता है और छायावाद स्वच्छन्दतावाद की सर्वोत्तम निष्पत्ति है। इस रूप मे उनके विवेचन का महत्व बढ जाता है। उनका सारा विवेचन छायावाद को लेकर है। वह छायावाद के आदि व्याख्याता ही नही छायावाद के प्रारभिक कवि भी है। उनकी अनेक रचनाए छायावाद के जन्म से एकान्तत सम्बन्धित हैं। उनकी प्रमुख रचनाएं 'पूजा फूल', 'शैलबाला', 'लच्छमा' 'हृदयगान', 'वीरकाव्य', 'रणाह्वान' आदि हैं। उन्होने 'श्री शारदा', 'सरस्वती', 'हितकारिणी', 'आर्यमहिला' तथा 'इदु' जैसी पत्रिकाओं मे अपने लेख प्रकाशित करवाये। उस समय शारदा भवन पुस्तकालय, जबलपुर से नर्मदा प्रसाद बी ए विशारद के सम्पादकत्व मे छपने वाली पत्रिका 'श्री शारदा' मे मुकुटधर पाण्डेय ने एक विस्तृत लेखमाला लिखी थी। इसी लेखमाला मे छायावाद पर सबसे पहले विधिवत और प्रमाणिक रूप से विवेचन प्रस्तुत किया गया था। यह लेखमाला कवि–स्वातन्त्र्य, छायावाद क्या है, तथा हिन्दी मे छायावाद शीर्षक से छपी थी।

'कवि–स्वातत्र्य' नामक लेख मे मुकुटधर पाण्डेय ने कवि के व्यक्तित्व की मौलिकता की अनिवार्यता प्रतिपादित की थी। उनके अनुसार –'मौलिकता का अभाव व्यक्तित्व का बाधक है जो कवि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। बिना व्यक्तित्व दिखलाए कवि प्रतिपत्ति किसी को नही मिल सकती। वह व्यक्तित्व चाहे भाव मे हो, भाषा में हो, छन्द मे हो या प्रकाशन रीति मे हो, पर कविता मे हो जरूर। जिस भी कवि मे व्यक्तित्व नहीं, उसे कवि नही अनुकरणकारी कहना चाहिये।'

मुकुटधर पाण्डेय ने कवि के लिये जिस मौलिक व्यक्तित्व की अनिवार्यता घोषित की है, उसकी प्राथमिक पहचान अनुभूति की नवीनता से ही हो सकती है। व्यक्तित्व की यह स्वतन्त्रता कवि को रीति से विद्रोह करने पर ही प्राप्त हो सकती है। उन्होने रीति कवियो की भर्त्सना करते हुये लिखा है– 'एक बात तो जरूर है कि उनके (रीति ग्रंथो के)। फंदे मे पडकर कवि बहुत कुछ परतन्त्र हो बैठता है। उसकी

प्रतिभा स्वतन्त्र उडान नहीं ले सकती। वह घेरे से बाहर जाने के लिए पख फटफटाता है, पर उसके पखो से लगी हुई रस्सी मानो उसे खीच रखती है।' इस लेख मे मुकुटधर जी ने भाषा, छन्द आदि की नवीनता को भी रेखाकित किया है। 'छायावाद क्या है' नामक निबध मे मुकुटधर पाण्डेय ने छायावाद सम्बन्धी स्थिति को ऐतिहासिक परिवेश मे समझने का प्रयास किया है। उन्होने लिखा है– 'अग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले सुनते ही समझ जायेगे कि यह शब्द मिस्टिसिज्म के लिये आया है।' छायावाद की अभिव्यजना–पद्धति के सम्बन्ध मे मुकुटधर पाण्डेय की स्पष्ट घोषणा थी कि– 'ऐसी रचनाओ मे शब्द अपने स्वाभाविक रूप को खोकर साकेतिक चिन्ह मात्र ही हुआ करते हैं। यही नही यह वक्रता वास्तव मे उस असाधारण दृष्टि के साथ अनिवार्य रूप से सम्बद्ध होती है जो छायावादी कवि की सवेदना का मुख्य आधार है। उसकी रचना की संपूर्ण विशेषताये उसकी दृष्टि पर ही अवलबित रहती है। वह क्षण भर मे बिजली की तरह वस्तु को स्पर्श करती हुई निकल जाती है। × × × × × अस्थिरता और क्षीणता के साथ उसमे एक विचित्र उन्मादकता और अतरगता होती है, जिसके कारण वस्तु उसके प्रमुख रूप मे नहीं, किन्तु एक अन्य रूप मे दीख पडती है। × × × × × यथार्थ मे छायावाद भाव–राज्य की वस्तु है। उसमे केवल सकेत से ही काम लिया जाता है। भाषा उसमे भाव प्रकाशन का एक गौण साधन मात्र है।' छायावाद के प्रारभिक दिनो मे छायावाद की सूक्ष्म अभिव्यजना पद्धति जिसका आधार लाक्षणिकता और व्यजकता थी, नये काव्य के विरोधियो के लिए उसका सबसे दुर्बल पक्ष बनकर आयी थी। मुकुटधर पाण्डेय ने इस विरोध का सामना करने के लिए सतुलित एव ऐतिहासिक दृष्टि का परिचय दिया। उनके शब्दो मे– 'हम यह नही चाहते कि वागर्थ प्रतिपत्ति की सरल, सुन्दर, प्रासादिक रचना–प्रणाली को इससे कुछ हानि पहुँचे। × × × × × प्राचीन प्रणाली को किसी तरह की हानि पहुँचाये बिना छायावाद के योग से साहित्य को परिपुष्ट करना ही अभीष्ट होना चाहिये।'

मुकुटधर पाण्डेय ने जब यह लिखा कि 'छायावाद मे चित्र दृश्य वस्तु की आत्मा का ही उतारा जाता है', तो वे परम्परागत और स्थापित काव्य–सरणियो की तुलना मे छायावाद के क्रान्तिकारी स्वरूप

का उद्घाटन कर रहे थे। कल्पना छायावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता बनकर आयी थी। सन् 1920 मे ही मुकुटधर पाण्डेय ने छायावादी कवियो की कल्पना–प्रियता को पहचान लिया था। उन्होने लिखा है – 'उनकी (छायावादी कवियो की) कविता देवी की ऑखे सदैव ऊपर की ओर ही उठी रहती है। मर्त्यलोक से उनका बहुत कम सम्बन्ध रहता है। वह बुद्धि और ज्ञान की सामर्थ्य सीमा का अतिक्रमण करके मन–प्राण के अतीत लोक मे ही विचरण करती रहती है।' मुकुटधर पाण्डेय ने काव्य मे प्रकृति–प्रेम के उपयोग, चित्रकारी और सगीत के अपूर्व एकीकरण आदि पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्होने अपनी लेखमाला का समापन करते हुए लिखा है– 'छायावाद काव्य–कला का एक अपूर्व निदर्शन है। कवि की लेखनी का चातुर्य और सूक्ष्मातिसूक्ष्म चमत्कार देखना हो तो छायावाद पढिये। × × × × × छायावाद की आवश्यकता हम इसलिये समझते हैं कि उससे कवियो को भाव प्रकाशन का एक नया मार्ग मिलेगा। इस प्रकार के अनेक मार्गों, अनेक रीतियो का होना ही उन्नत साहित्य का लक्षण है।' छायावाद पर मुकुटधर पाण्डेय की लेखमाला वर्ष 1920 मे 'श्री शारदा' के अको प्रकाशित हई थी।[7]

प्रायः सभी छायावादी कवियो ने छायावाद के सैद्धातिक पक्ष पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। प्रसाद, निराला, पत या महादेवी के सामने हिन्दी की छायावादी कविता के प्रचुर उदाहरण उपलब्ध थे, किन्तु मुकुटधर पाण्डेय छायावाद की प्रारभिक अवस्था मे ही एक प्रकार से छायावाद की जन्म–कुण्डली तैयार कर रहे थे।[8] डॉ0 नामवर सिह ने मुकुटधर पाण्डेय के निबन्धो के बारे मे लिखा है– 'यह छायावाद पर पहला निबध होने के साथ ही अत्यन्त सूझ–बूझ भरी गभीर समीक्षा भी है। इस निबध का ऐतिहासिक महत्व ही नहीं, बल्कि स्थायी महत्व भी है।[9]

नन्ददुलारे वाजपेयी

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के समर्थ व्याख्याता हैं। उन्होने रोमाटिक प्रवृत्ति की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की– 'स्वतन्त्रता की लालसा और बन्धनो का त्याग रोमाटिक धारा के मूल में व्याप्त है।'[10] इसी आधार पर वाजपेयी जी ने रोमाटिसिज्म एवं क्लासिज्म (शास्त्रवाद) का भेद भी स्पष्ट किया है। उनके अनुसार 'वह काव्यधारा जो काव्य और कला के व्यक्त सौन्दर्य प्रसाधनो, सुन्दर

शब्दो और आकृतियो आदि का आग्रह करके चलती है, क्लासिज्म की प्रतिनिधि कही जाती है। दूसरी अतिवादी स्थिति तब आती है जब वह निर्माण–सम्बन्धी नियमो से बॅध जाती है और स्वतन्त्रता पूर्वक हाथ–पैर भी नही हिला सकती। इस प्रकार जो काव्यधारा अत्यन्त अनियमित पद्धति, सयम रहित प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है, वह रोमाटिक गति की सूचक है। काव्य मे भावना के अतिरेक से जो असयम आता है, नियमो की जो अवहेलना होती है, रोमाटिसिज्म की अति की परिचायक है। एक मे (क्लासिज्म अतिवाद में) काव्य के शरीर पक्ष का आग्रह सीमा को पार कर जाता है और दूसरे मे (रोमाटिक अति में) शरीर पक्ष या आकृति की पूर्ण उपेक्षा होने लगती है। एक मे काव्यगत भाव की उपेक्षा है, दूसरे मे भावुकता की अत्यन्त अराजक स्थिति है।'[11]

रोमाटिक विषय–वस्तु के सम्बन्ध मे वाजपेयी जी की मान्यता है कि रोमांटिक कवि सर्व साधारण लोगो से लेकर छोटी सी छोटी वस्तुओ तक को अपने काव्य का विषय बना सकता है। उन्होने लिखा है–'रोमांटिसिज्म की वस्तु का उदात्त होना आवश्यक नहीं। साधारण से साधारण वस्तु मे ही काव्यात्मक चित्रण बनने की क्षमता है। यह स्वच्छन्दतावादी मत है।'[12]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने स्वच्छन्दतावादी काव्य को विशेषकर छायावादी काव्य को कई स्तरो पर जानने पहचानने की चेष्टा की। उन्होने इस बात का जोरदार खण्डन किया कि स्वच्छन्दतावादी काव्य यूरोपीय रोमांटिक काव्य प्रभाव की उपज है। वाजपेयी जी ने छायावाद के सास्कृतिक परिवेश को विश्लेषित किया। वाजपेयी जी का मानना था कि प्रत्येक साहित्य आन्दोलन अपने समय और समाज को नजरअदाज नहीं कर सकता और इसी संदर्भ मे उन्होने भारतीय राष्ट्रीय जीवन की पृष्ठभूमि पर छायावाद की परीक्षा की। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य को भारतीय नवजागरण से जोडने के कारण उन्होंने एक साथ कई भ्रान्तियो का निराकरण किया। छायावादी काव्य मूलत अपने देश की उपज है, इस मान्यता को उन्होंने बार–बार प्रतिपादित किया। वाजपेयी जी ने 'हिन्दी साहित्य : बीसवी शताब्दी' की विज्ञप्ति मे घोषणा की– 'छायावाद युग को चाहे जिस नाम से पुकारिये, इसका एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है। राष्ट्रीय इतिहास मे जिन अस्पष्ट प्रेरणाओं से यह उत्पन्न हुआ और जिस आवश्यकता की पूर्ति इसने की, उसकी ओर ध्यान न देना आश्चर्य की बात होगी। हिन्दू जाति के नाना भेदों –प्रभेदो के बीच एक सघटित

जतीयता का निर्माण, हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई आदि विभिन्न धर्मानुयायियो मे एक अन्तर्व्यापी मानव–सूत्र का अनुसधान, राष्ट्र–राष्ट्रो के बीच खाईयॉ पाटना आदि महायुद्ध के पश्चात् अपने देश के सामने ये प्रधान प्रश्न थे। देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न भी कुछ कम प्रधान न था, पर वह जातीय और राष्ट्रीय एकसूत्रता के आधार पर ही खडा हो सकता था और अन्तर्राष्ट्रीय मानव–साम्य का एक अग बनकर ही शोभा पा सकता था। यह सम्मिलन और सामजस्य की भावना भारतीय सस्कृति की चिरकाल की विशेषता रही है, इसलिए महायुद्ध की शान्ति के पश्चात् ये प्रश्न सामने आते ही वह सास्कृतिक प्रेरणा जाग उठी और तीव्र वेग से तत्कालीन काव्य और कलाओ मे अपनी अभिव्यक्ति चाहने लगी।'[13]

छायावाद को राष्ट्रीय जागरण की प्रतिध्वनि कहकर उन्होने स्वच्छन्दतावाद के साथ राष्ट्रीय चेतना का सामजस्य स्थापित किया। उन्होने स्वीकार किया कि जिस युग मे छायावादी काव्य रचा जा रहा था वह मुख्यत. साहित्यिक और सामाजिक परम्पराओ के विरुद्ध विद्रोह का युग था। वाजपेयी जी ने छायावाद की विद्रोह की प्रवृत्ति का सकेत करते हुये स्पष्ट किया कि इस विद्रोह का स्वरूप कवि–स्वातन्त्र्य पर आधारित है। उन्होने लिखा है– 'ऐसी अवस्था मे काव्य और साहित्य का स्वरूप व्यक्ति मुखी होने को बाध्य था। × × × × × कविता की वाणी मे सगीत है, उल्लास है, विद्रोह है और नव–निर्माण की उत्कट अभिलाषा है, परन्तु जागृति की यह चेतना व्यक्तिनिष्ठ और आदर्शोन्मुख है।'[14]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावादी काव्यान्दोलन का समग्र विवेचन करने का प्रयास किया, उसे परिभाषित करने का प्रयास नही किया है। उन्होंने लिखा है– 'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य मे आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।'[15]

हजारीप्रसाद द्विवेदी

स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध मे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार महत्वपूर्ण है। रोमाटिसिज्म काव्यधारा के कवि के वैयक्तिक पक्ष तथा उसकी भाव प्रवण दृष्टि की विवेचना करते हुए द्विवेदी जी का

कथन है– 'रोमाटिसिज्म साहित्य की वास्तविक उत्सभूमि वह मानसिक गठन है जिसमे कल्पना के अविरल प्रवाह से घन संश्लिष्ट निविड आवेग की प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड आवेग– ये दो निरन्तर घनीभूत मानसिक वृत्तियॉ ही इस व्यक्तित्व प्रधान साहित्यिक रूप की जननी है, परन्तु यह नही समझना चाहिये कि ये दोनो एक दूसरे से अलग रहकर काम करती हैं।'[16]

इस प्रकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रोमाटिक साहित्य की रचना के लिये कल्पनाशीलता पर अत्यधिक बल दिया है। उनका मत है कि कल्पना की सहायता से ही आतरिक अनुभूतियॉ अभिव्यक्ति पाती हैं। रोमाटिक साहित्य वस्तुत जीवन के उस आवेगमय पहलू पर जोर देने के कारण अपना वह रूप धारण कर सका है जो अन्तर्दृष्टि द्वारा चालित एव प्रेरित होता है।[17]

अन्य आलोचको के विपरीत द्विवेदी जी रोमाटिक काव्य के मूल मे विद्रोह की भावना नही मानते। उनका मत है कि रोमाटिक काव्य मे विद्रोह की जो भावना परिलक्षित होती है वह आतरिक न होकर बाह्य परिस्थिति जन्य होती है। इस प्रसग मे द्विवेदी जी का कथन है कि 'व्यक्ति की स्वतन्त्र अनुभूति तो कल्पना और आवेग के माध्यम से ही प्रकट होती है और जब वह प्रकट होती है तो नीति और सदाचार के परिपाटी विहित मानो से सब समय उसका सामजस्य नही होता। कई बार उसे ऊपरी सदाचार के विरुद्ध विद्रोह करना पडता है। परन्तु यह विद्रोह उसका मूल स्वर नही है। × × × × × यह भली–भॉति समझ लेना चाहिये कि यह विद्रोह केवल विशेष प्रकार की वैयक्तिक दृष्टिभगी के साथ परिपाटी विहित रसास्वादन का सामजस्य न हो सकने का वाह्य रूप मात्र है।'[18]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रोमाटिक काव्य की वर्ण्य–वस्तु, रोमाटिक कवि की प्रवृत्ति तथा रोमाटिक काव्य की अभिव्यक्ति शैली पर भी विशदता से विचार किया है, इस सम्बन्ध मे अपना दृष्टिकोण प्रकट हुए उन्होने लिखा है– 'रोमाटिक कवियो द्वारा निबद्ध वक्तव्य वस्तु प्रतिपादित सामग्री मे निम्नलिखित बातें बतायी जाती हैं–

1 शास्त्र बहिर्भूत कल्पित देशो, मध्ययुग या अतीत युग के शास्त्रीय गौरव के आकर्षक दृश्य तथा मोहक संस्कृति का लोभनीय चित्रण।

2 सामान्य की अपेक्षा विशेष पर जोर, रगगत सामंजस्य की अपेक्षा उत्तेजक एकांगी रगो पर बल देना।

3 प्रकृति को व्यक्तिगत और अव्यवहृत प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय समझना और विशेष रूप से उसके उद्धत और उद्दाम वेग वाले रूप पर बल देना।

4 रहस्यवाद और अति प्राकृत तत्व मे विश्वास।

5 कालरात्रि, शासन, मकबरा, विनाश, नियति चक्र, प्रलय, झझा आदि का भूरिश· आक्रमण।

6 स्वप्न लोक, अवचेतन और आवेशावस्था की बातें।

छायावादी काव्य की प्रवृत्तियो का छयावादी कवियो की प्रवृत्तियो से अधिक मेल है। ये प्रवृत्तियॉ इस प्रकार है–

1 अत्यन्त वैयक्तिक दृष्टिकोण।

2 इनके द्वारा निबद्ध नायक या तो वेदना ग्रस्त विरक्त, क्लात, आत्मकेन्द्रित व्यक्ति होता है या समाज के विरुद्ध भभकता हुआ विद्रोही। दोनो ही अवस्था मे उसका व्यक्तित्व रहस्यमय होता है।

3 वह तर्क की अपेक्षा भावावेग को, यथार्थ की अपेक्षा आदर्शवाद को, परिस्थितियो से समझौता करने की अपेक्षा महत्वाकाक्षा को अधिक गौरव देता है।

जहॉ तक अभिव्यक्ति–शैली (काव्य के साधन) का प्रश्न है, रोमाटिक कवि–

1 नियमो और रुढियो से स्वतन्त्र रहने का दावा करता है।

2 स्वतः प्रत्यक्ष भावावेग पर बल देता है।

3 दिवास्वप्न जैसी अलीक कल्पना या असंलग्न चित्त प्रवाह, अस्पष्टता, युग पद सौन्दर्यानुभूति तथा कलात्मक प्रक्रिया की पौन· पुनिकता की ओर प्रवृत्त होता है।'[19]

आचार्य द्विवेदी छायावाद को एक मानवीय भूमि का काव्य घोषित करते हैं और उनकी मान्यता है कि उसमें जो जीवन व्याप्त है, उसे देखते हुए यह शब्द उसके सपूर्ण व्यक्तित्व के साथ न्याय नहीं कर पाता। छायावाद शब्द से जो वायवीयता की व्यग्य भरी ध्वनि आती है, वह एक प्रकार से इस काव्य के साथ अन्याय है। छायावाद की व्याख्या करते हुए उन्होने कहा है–'छायावाद एक विशाल सास्कृतिक

चेतना का परिणाम था जिसमे कवियो की भीतरी आकुलता ने ही नवीन भाष–शैली मे अपने को अभिव्यक्त किया। इन सभी उल्लेखनीय कवियो मे थोडी बहुत आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की व्याकुलता भी थी। जिन कवियो ने शास्त्रीय और सामाजिक रुढियो के विद्रोह का भाव दिखाया था, उनके इस भाव का कारण तीव्र सास्कृतिक चेतना ही थी।'[20]

छायावादी काव्य को भारतीय चिन्ताधारा के स्वाभाविक विकास के रूप मे ग्रहण कर द्विवेदी जी उसे गौरव प्रदान करते है और कई प्रचलित भ्रान्तियो से मुक्ति दिलाने मे हमारी सहायता करते है। उन्होने स्वच्छन्दतावाद अथवा रोमानी काव्य और छायावादी काव्य मे अभेदत्व स्थापित किया। उनका विचार था कि एक ओर छायावादी कवि युग परिचालित था दूसरी ओर उसकी सौन्दर्योन्मुखी चेतना के कारण उसके वैयक्तिक सवेदन भी सक्रिय थे। इसका परिणाम यह हुआ कि कवि अपनी समग्र मानवीय दृष्टि के बावजूद कल्पना की भूमियो पर भी विचरण करने लगा। वे अतिरिक्त कल्पनाशीलता को छायावादी काव्य की एक दुर्बलता मानते हैं, क्योकि इससे उसकी एक सीमा रेखा बन गयी।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छायावाद युग के विभिन्न पक्षो पर अलग–अलग न विचार करके उसे एक साथ देखना चाहा और इसी कारण कवियो के विषय मे उनकी विस्तृत समीक्षाए नही मिलती। 'हिन्दी साहित्य' नामक ग्रथ मे उन्होने छायावादी कवियो पर अपनी समीक्षाए प्रस्तुत की है। मानवतावाद की दृष्टि से छायावाद के महत्व को उन्होने रेखकित किया। उन्होने स्वीकार किया है कि काव्य का मानवीयता से घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध है। आचार्य द्विवेदी अपने लेखन मे बार–बार आग्रह करते रहे है कि मानव सत्य सर्वोपरि सत्य है और इसीलिए मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।[21]

आचार्य द्विवेदी की मान्यताओ की अपनी सीमाए हैं तथापि यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि द्विवेदी जी रोमाटिसिज्म की मूल प्रेरणा को पकड सके है। उनके विवेचन से स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्ति को अधिक स्पष्टता से समझने मे सहायता मिली है।

नगेन्द्र

डॉ0 नगेन्द्र ने स्वच्छन्दतवादी काव्य का विवेचन मनोवैज्ञानिक ढग से किया है। इसके लिए उन्होने यूरोपीय साहित्य के अपने गहरे अध्ययन का भी उपयोग किया। उन्होंने छायावाद को 'स्थूल से

विमुख होकर, सूक्ष्म के प्रति आग्रह' कहकर सम्बोधित किया। छायावाद की विवेचना करते हुये उन्होने सर्वप्रथम उसकी सामाजिक पीठिका का संकेत किया। उनका विचार है कि छायावाद की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का कारण यह है कि राजनीतिक परिस्थितियो के कारण अभिव्यक्ति का अवसर कम था।[22] अन्तर्मुखी भावना, व्यक्तिवादिता श्रृगारिकता, प्रकृति पर चेतना का आरोप आदि को उन्होने मुख्य प्रवृत्ति के रूप मे स्वीकार किया है। उनका मानना था कि एक ओर यदि छायावादी काव्य मे 'आशा के स्वप्न' थे तो दूसरी ओर 'निराशा के छायाचित्र' भी विद्यमान थे और इनकी काव्यगत समष्टि ही छायावाद है। सामाजिक पृष्ठभूमि के रूप मे डॉ0 नगेन्द्र ने प्रथम महायुद्ध के फलस्वरूप जमने वाली यूरोपीय निराशा के विरोध मे भारतीय जनमानस की नयी इच्छा–अभिलाषाओ की ओर भी सकेत किया। भारत नये कल्पना–जगत मे तैरना चाहता था और उसमे अनेक आशा–आकाक्षाए जाग रही थी, पर इस भावना को कार्य रूप मे बदल सकना आसान नहीं था। साम्राज्यवादी शिकजा देश की विद्रोही चेतना को सामाजिक स्तर पर दबा देने के लिए प्रस्तुत था। साथ ही देश के प्रबल नैतिक बन्धन व्यक्ति के वैयक्तिक जीवन में भी उतनी आजादी देने के लिए प्रस्तुत न थे, जितनी किसी नये रचना–आन्दोलन के लिए अनिवार्य होती है। इसी कारण छायावादी काव्य एक ओर कल्पना की नयी दुनिया बसाता है, तो दूसरी ओर वह भीतर–भीतर कुठित होता है। डॉ0 नगेन्द्र ने सामाजिक पृष्ठभूमि के रूप मे जो रुख अपनाया, उसे उन्होने मनोविज्ञान के सहारे भी प्रमाणित करने की चेष्टा की और इस प्रकार छायावाद सम्बधी अपने काव्य–चितन को एक तर्किक समापन देने की कोशिश की।

डॉ0 नगेन्द्र ने छायावाद की अन्तर्मुखी दृष्टि और यथार्थ को वायवी अथवा अतीन्द्रिय रूप देने की प्रवृत्ति को उसकी मुख्य बनावट के रूप मे प्रतिपादित किया। इसलिये व्यक्तिवाद को उन्होने छायावादी काव्य प्रवृत्तियो के शीर्ष पर रखा और अन्य सभी प्रवृत्तियो को भी अन्तर्मुखी दृष्टि के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया। छायावादी काव्य की व्यक्तिवादिता, श्रृगारिकता के लिए डॉ0 नगेन्द्र ने मनोविज्ञान का सहारा लेते हुए उसे कवि की व्यक्तिगत कुठाओ से जोड दिया। उन्होने लिखा है– 'छायावाद की कविता प्रधानत· श्रृगारिक है, क्योंकि उसका जन्म हुआ है, व्यक्तिगत कुठाओ से, और व्यक्तिगत कुंठाएं प्राय काम के चारों ओर केन्द्रित रहती है।'[23]

डॉ0 नगेन्द्र ने फ्रायड के मनोविज्ञान को आधार बनाकर काम को मूल प्रवृत्ति मानकर छायावादी काव्य की व्यक्तिगत प्रवृत्तियो का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। उनका कहना है कि छायावाद का काव्य प्रथम श्रेणी का विश्व–काव्य नही है। कुन्ठा की प्रेरणा प्रथम श्रेणी के काव्य को जन्म नहीं दे सकती। आज हम इस स्थिति मे हैं कि समस्त रचना की परीक्षा मनोविश्लेषण के सहारे कर सके हैं, पर हमे देखना यह है कि लेखक अपनी वैयक्तिक कुठाओ से ऊपर उठ सकने की कितनी सामर्थ्य रखता है और इसी पर रचना का बनना–बिगडना निर्भर करता है।

डॉ0 नगेन्द्र के सामने छायावाद की आध्यात्मिक चेतना विद्यमान थी और इसके विश्लेषण के लिये उनहोने उसे भारतीय अद्वैतवाद से जोडा। उन्होने यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि आध्यात्मिकता छायावादी काव्य का मूल प्रस्थान बिन्दु नहीं है, वह किन्हीं दबावो के कारण धीरे–धीरे उसमे प्रवेश करती गयी है। इसका एक कारण यह भी है कि कवि की चेतना बहिरग जीवन से सिमटकर अतरग जीवन मे प्रवेश कर गयी थी। उन्होने मध्ययुगीन आध्यात्मिकता और रहस्यवादिता से छायावाद का अन्तर स्पष्ट किया है– 'छायावाद की रहस्योक्तियॉ एक प्रकार से जिज्ञासाएँ है, जो छायावाद के उत्तरार्द्ध मे आध्यात्मिक दर्शन के द्वारा और भी पुष्ट हो गयी है, परन्तु वे धार्मिक साधना पर आश्रित नही है। उनका आधार कही भावना, कही दर्शन–चिन्तन और आरभ मे कहीं–कहीं मन की छलना भी है।'[24]

डॉ0 नगेन्द्र ने छायावाद के भाव जगत को अनुभूत दुनिया बताया है। वे उसकी अतिशय कल्पनाशीलता की ओर इशारा करते है। उन्हाने छायावाद के सम्बन्ध मे कुछ भ्रान्तियो का निराकरण करने की चेष्टा भी की। उन्होने छायावाद, रहस्यवाद मे अन्तर स्पष्ट किया। इसी प्रकार यूरोप की रोमानी कविता और छायावादी काव्य मे परिस्थितिजन्य अन्तर को भी रेखाकित किया। उन्होने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की इस भ्रान्ति का भी निराकरण किया कि अभिव्यजनावाद प्रतीकवाद आदि की भॉति छायावाद शैली का एक प्रकार मात्र है। डॉ नगेन्द्र ने छायावाद के सम्बन्ध मे लिखा है– 'इस कविता ने जीवन के सूक्ष्मतम मूल्यों की पुन प्रतिष्ठा द्वारा नवीन सौन्दर्य चेतना जगाकर एक वृहत समाज की अभिरूचि का परिष्कार किया और उसकी समृद्धि की समता हिन्दी का केवल भक्तिकाव्य ही कर सकता है।'[25]

छायावादी कवियों का काव्य–विवेचन

छायावादी कवियो ने फुटकल निबंधो–लेखो के रूप मे, काव्य–सग्रहों की भूमिकाओं में स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) पर अपने विचार प्रकट किये है।

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद ने अपने निबध–सग्रह 'काव्य और कला तथा अन्य निबध' मे अपनी काव्य सम्बन्धी मान्यताओ को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है। उन्होने अपनी इस धारणा को प्रस्तुत करते हुये लिखा है–

'काव्य आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान धारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन–क्रिया जो वागमय रूप मे अभिव्यक्ति होती है, वह निःसंदेह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण प्रेय और श्रेय दोनो से परिपूर्ण होती है।'[26]

यहॉ आत्मा कवि के आत्म–सेल्फ के अर्थ मे प्रयुक्त हुई है। सकल्पात्मक अनुभूति से कवि का अभिप्राय उस अनुभूति विशेष से है जो कल्याणमय और लालित्यपूर्ण है जिसे उन्होने श्रेय और प्रेय से अभिहित किया है। साथ ही, यह अनुभूति विज्ञान या शास्त्र सुलभ विश्लेषण, व्याख्या, विवेचन और तर्क–वितर्क से भी मुक्त होनी चाहिए।

प्रसाद के अनुसार अनुभूति का सकल्पात्मक रूप उस समय व्यक्त होता है जब आत्मा की चिन्तन शक्ति अपनी विशिष्ट अवस्था में सत्य के कल्याणकारी रूप को सपूर्ण सौन्दर्य के साथ ग्रहण कर लेती है। लेकिन यह मनन शक्ति प्रत्येक स्थिति मे सत्य के श्रेय पक्ष को उसके मूल सौन्दर्य मे ग्रहण नही कर पाती। क्षण विशेष मे ही, जिसे चिन्तन की विशिष्ट अवस्था माना गया है, सहसा कल्याणमय सत्य के सौन्दर्य की अनुभूति हो जाती है। इसी विशिष्ट अनुभूति को उन्होने संकल्पात्मक कहा है। संकल्पात्मक विशेषण केवल विकल्पात्मक के विलोम के रूप मे प्रयुक्त नहीं किया गया है, अपितु यह एक विशिष्ट अर्थ भी व्यजित करता है। भावात्मक धरातल पर जब सत्य शिव और सुन्दर के साथ उद्भासित होता है तब इसे सकल्पात्मक अनुभूति कहा जाता है। काव्य इसी की अभिव्यक्ति है। लेकिन यह उद्भासित होना

सयोग विशेष पर निर्भर करता है जिसे प्रसाद जी ने 'असाधारण अवस्था' कहा है। उन्होने लिखा है– 'सकल्पात्मक मूल अनुभूति कहने से मेरा जो तात्पर्य है, उसे भी समझ लेना होगा। आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व मे सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य मे मूल सकल्पात्मक अनुभूति कही जा सकती है।'[27]

असाधारण अवस्था से भी प्रसाद का विशिष्ट अभिप्राय है–'असाधारण अवस्था युगो की समष्टि अनुभूतियो मे अन्तर्निहित रहती है, क्योकि सत्य और श्रेय ज्ञान कोई व्यक्तिगत सत्ता नही, वह एक शाश्वत चेतनता है या चिन्मयी ज्ञान–धारा है जो व्यक्तिगत स्थानीय केन्द्रो के नष्ट हो जाने पर भी निर्विशेष रूप से विद्यमान रहती है।'[28]

प्रसाद के अनुसार श्रेय और सत्य निजी सम्पत्ति नही है, ये चिरन्तन चेतना धारा के रूप मे युगो से सृष्टि मे प्रवाहित हो रहे हैं। इस प्रकार युग मे, समग्र रूप से जो अनुभूति प्रवाहमान होती है, उसी मे यह असाधारण अवस्था समाविष्ट रहती है। युग की यह समग्र अनुभूति प्रवाहमान होने के कारण व्यक्ति विशेष मे केन्द्रित तो रहती है लेकिन उसके नष्ट हो जाने पर वह सूक्ष्म रूप मे स्थित रहती है। अत प्रसाद के अनुसार चिन्तन के विशिष्ट क्षणो मे आत्मा की ऐसी अनुभूति जो सत्य से शिव को सौन्दर्य रूप मे ग्रहण करती है, काव्य के सन्दर्भ मे सकल्पात्मक अनुभूति कहलाती है। इसे विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से इसलिए भिन्न माना है कि विश्लेषण आदि का सत्य श्रेयस्कर तो होता है लेकिन प्रेयमय नही होता है। उनका मानना था कि तर्को की परीक्षा करते–करते शास्त्रो मे चारूत्व का अभाव हो जाता है जबकि सकल्पात्मक अनिभूति श्रेय सत्य को प्रेय रूप मे ग्रहण करती है।

सकल्पात्मक अनुभूति के कारण ही काव्य को प्रसाद ने श्रेय युक्त प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा माना है। कवि के विचार से कविता ज्ञान की ऐसी सलिला है, जो शास्त्रीय और आलोचनात्मक न होकर रचनात्मक–क्रियेटिव है। प्रमुखत यह प्रेय अर्थात् रसमय ज्ञान धारा है लेकिन इसमे श्रेय का भी उचित अनुपात मे समावेश किया गया। लालित्य को कल्याण से समन्वित कर प्रसाद ने इसे व्यापकता प्रदान की है। काव्य के श्रेय और प्रेय के उस सम्बन्ध की सहजता के विषय मे उन्होने लिखा है–

'काव्य मे जो आत्मा की मौलिक अनुभूति की प्रेरणा है, वही सौन्दर्यमयी और संकल्पात्मक होने के कारण अपनी श्रेय स्थिति मे रमणीय आकार मे प्रकट होती है। वह आकार वर्णात्मक रचना–विन्यास में कौशल पूर्ण होने के कारण प्रेय भी होता है।'[29]

प्रसाद के अनुसार सौन्दर्यमयी सकल्पात्मक अनुभूति अपनी श्रेय स्थिति मे आकर्षक रूप मे अभिव्यक्त होने के कारण प्रेय भी हो जाती है। एक अन्य विशिष्ट तथ्य की ओर भी प्रसाद ने सकेत किया है कि केवल अभिव्यक्ति का सौन्दर्य ही अनुभूति को हृदयग्राही नहीं बना पाता, इसके लिए अनुभूति का मर्मस्पर्शी होना अत्यन्त आवश्यक है। अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनो के सौन्दर्य तत्व मिलकर ही रचना को असाधारण आकर्षण प्रदान करते हैं।

काव्य के सम्बन्ध मे अपनी मान्यताओ के बाद प्रसाद जी ने छायावाद पर विचार किया है। उन्होने हिन्दी के वर्तमान युग की दो प्रधान प्रवृत्तियो की चर्चा की है। ये दो प्रवृत्तियॉ हैं–यथार्थवाद और छायावाद। उन्होने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से यथार्थवाद का आरभ माना। आज हम जिस अर्थ मे 'यथार्थवाद' शब्द का प्रयोग करते हैं, उसमे सामाजिक यथार्थ और उसके प्रमाणीकरण का आग्रह रहता है। प्रसाद जी ने लिखा है– 'यथार्थवाद की विशेषताओ मे प्रधान है– लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमे स्वभावत. दुख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है।'[30] लघुता मे वे व्यक्तिगत जीवन के दुख और अभावो का वास्तविक उल्लेख सम्मिलित कर लेते हैं और यह छायावाद का मुख्य प्रस्थान बिन्दु है। प्रसाद ने काव्य मे वैयक्तिक जीवन की अनुभूतियो का काफी प्रयोग किया है। यथार्थवाद को इतिहास की सम्पत्ति मानते हुए वे साहित्य मे आदर्शवाद की भी स्थिति स्वीकार करते हैं।

प्रसाद ने छायावादी काव्य को स्वानुभूति का प्रकाशन मानकर यह प्रमाणित किया है कि आरभ मे इसने भारतीय साहित्यिकता का अनुसरण किया। अपने पक्ष के समर्थन मे उन्होने आनन्द वर्धन, भवभूति, कुन्तक, अभिनव गुप्त आदि के उद्धरण प्रस्तुत किये है। उन्होने लिखा है–

'प्राचीन साहित्य मे छायावाद अपना स्थान बना चुका है। हिन्दी मे जब इस तरह के प्रयोग आरंभ हुये तो कुछ लोग चौके सही, परन्तु विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढग को ग्रहण करना पडा। कहना न होगा कि ये अनुभूतिमय आत्म स्पर्श काव्य–जगत के लिए अत्यन्त आवश्यक थे। काकु या श्लेष

की तरह यह सीधी वक्रोक्ति भी न थी। बाह्य से हटकर काव्य की प्रवृत्ति आतर की ओर चल पडी थी।' उन्होने आगे लिखा है– 'जब 'वहति विकल कायो न मुचति चेतनाम' की विवशता वेदना को चैतन्य के साथ चिर बधन मे बॉध देती है, तब वह आत्म स्पर्श की अनुभूति सूक्ष्म अतर भाव को व्यक्त करने मे समर्थ होती है। ऐसा छायावाद किसी भाषा के लिए शाप नही हो सकता। भाषा अपने सास्कृतिक सुधारो के साथ इस पद की ओर अग्रसर होती है–उच्चतम साहित्य का स्वागत करने के लिए। हिन्दी ने आरभ के छायावाद मे अपनी भारतीय साहित्यिकता का ही अनुसरण किया। कुतक के शब्दो मे, 'अतिक्रात प्रसिद्ध व्यवहार सरणि' के कारण कुछ लोग इस छायावाद मे अस्पष्टतावाद का भी रग देख पाते है। हो सकता है, जहॉ कवि अनुभूति से पूर्ण तादात्म्य नही कर पाया हो, वहॉ अभिव्यक्ति विश्रृखल हो गयी हो, शब्दो का चुनाव ठीक न हुआ हो, हृदय से उसका स्पर्श न होकर मस्तिष्क से ही मेल हो गया हो, परन्तु सिद्धात मे ऐसा रूप छायावाद का ठीक नही कि जो कुछ अस्पष्ट, छाया–मात्र हो, वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है, हॉ, मूल मे यह रहस्यवाद भी नहीं है। प्रकृति विश्वात्मा की छाया का प्रतिविम्ब है, इसलिए प्रकृति को काव्यगत व्यवहार मे ले आकर छायावाद की सृष्टि होती है, यह सिद्धात भी भ्रामक है। यद्यपि प्रकृति का अवलबन स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्य धारा मे होने लगा है, किन्तु प्रकृति से सबध रखने वाली कविता को ही छायावाद नही कहा जा सकता।'[31]

प्रसाद जी ने छायावाद पर निष्कर्षात्मक टिप्पणी करते हुये लिखा है– 'छाया–भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की निवृत्ति छायावाद की विशेषताए हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आतर स्पर्श करके समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति–छाया कातिमयी होती है।'[32]

प्रसाद ने वैयक्तिक अनुभूति के प्रकाशन की विशिष्ट प्रणाली का भी समावेश किया है। डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त के मतानुसार प्रसाद की काव्य–विषयक मान्यता मे नवीन उद्भावनाऍ हैं।[33] इसी प्रकार डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित ने प्रसाद की काव्य विषयक व्याख्याओ को सर्वथा नवीन माना है।[34]

निष्कर्षत. प्रसाद की काव्य–विषयक मान्यताओ से छायावादी काव्य को समझने में मदद मिलती है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के विद्रोही व्यक्तित्व की छाया उनके चितन पर भी विद्यमान है। छायावादी कविता से सहानुभूति न रखने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पर निराला ने साहित्यिक व्यग्य वाण छोडे। 'प्रबन्ध प्रतिमा' के 'साहित्य की नवीन पद्धति' लेख मे निराला 'सुधा' नामक पत्र मे प्रकाशित उस कविता को उद्धृत करते है जिसमे छायावादी कविता की भर्त्सना की गयी है। इस लेख मे निराला जी ने लिखा है– 'शुक्ल जी गद्य मे लिखे, हम उन्हे उत्तर देने को तैयार है, अवश्य पद्य मे इस तरह की बकवास करना हम नहीं जानते।'[35] निराला ने छायावाद की जो विवेचना की उससे प्रसाद की छायावाद की विवेचना मे कुछ बिन्दु जुडे। जहॉ प्रसाद ने छायावाद को भारतीय चिन्तनधारा का स्वाभाविक विकास कहकर विवेचित किया था, वहॉ निराला ने उसके सास्कृतिक सदर्भो की तलाश की और उसे भारतीय नवजागरण से जोडा। बगाल भारतीय नवजागरण की जन्मभूमि रही है। निराला का बगाल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। 'रवीन्द्र–कविता–कानन' के आरभ मे रवीन्द्रनाथ टैगोर का परिचय देते हुये सर्वप्रथम निराला ने बगाल के नवजागरण का वर्णन किया और उस प्रशस्त पृष्ठभूमि पर कवि को प्रस्तुत किया, राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द विद्यासागर, हेमचन्द, बकिम चन्द चटर्जी, नवीन चन्द, माइकेल मधुसूदन दत्त, द्वारकानाथ टैगोर, देवेन्द्रनाथ टैगोर आदि की सामाजिक जागरूकता का उल्लेख किया। महर्षि देवेन्द्रनाथ ने ब्रह्म समाज के माध्यम से बगाली जीवन को बहुत प्रभावित किया। 'रवीन्द्र–कविता–कानन' मे विवेचित सास्कृतिक नवजागरण निराला के लिए केवल रवीन्द्रनाथ टैगोर के सृजन की ही भूमिका नहीं है, वह छायावादी काव्य की भी प्रेरणा–भूमि है। निराला बगाल के नवजागरण के दो प्रमुख स्वर रामकृष्ण परमहस तथा विवेकानन्द से प्रभवित होते है।

छायावादी काव्य को निराला जी ने नवजागरण से सम्बद्ध किया, इसलिये इस काव्य की ऐतिहासिक अनिवार्यता की ओर सकेत किया। निराला जी छायावाद को एक जागरण मानते है। 'परिमल' की भूमिका के आरंभ में वे लिखते है– 'यह हिन्दी के उद्यान मे अभी अभी प्रभातकाल ही की स्वर्णच्छटा फैली है। × × × × × इसलिए अभी जागरण के मनोहर चित्र, आह्लाद–परिचय आदि जीवन

के प्राथमिक चिन्ह ही दीख पडते हैं। × × × × × परन्तु ऐसा जान पडता है कि इस जीवन के भीतर से शीघ्र ही एक ऐसा आवर्त उठने वाला है।'[36] भूमिका में निराला जी खडीबोली की इस कविता को प्रभात की उज्ज्वल किरणो से प्रकाशित मानकर महामना मदनमोहन मालवीय तथा लोकमान्य तिलक का भी उल्लेख इस स्थल पर करते है, जिससे काव्य को सास्कृतिक जागरण से जोडने का उनका आशय स्पष्ट होता है। निराला निश्चय ही अपने वर्तमान से सतुष्ट नहीं है, जैसा कि उनके 'वर्तमान हिन्दू समाज' निबध से स्पष्ट है। वे सवर्णों को पूर्व सभ्यता का ध्वसावशेष मात्र मानते हैं और कहते हैं–

'अब जिस जागरण की आशा से पूर्वाकाश अरुण हो रहा है, उसमे सबसे पहले तो वे ही जातियॉ जागेगी जो पहले की सोयी हुई शूद्र अन्त्यज जातियॉ है।'[37]

निराला की सास्कृतिक दृष्टि मे दो नये तत्व सम्मिलित होते हैं– राष्ट्रीय चेतना और प्रगतिशीलता।

निराला ने यह स्थापना की कि काव्य का महान सास्कृतिक आशय है। उन्होने काव्य को जीवन सदर्भों से जोडा और इस क्षेत्र में उनका चितन प्रसाद, पत दोनो से अधिक प्रगतिशील कहा जायेगा। निराला की सास्कृतिक दृष्टि जीवन–सापेक्ष है। साहित्य की मुक्ति उनके काव्य मे दीख पडती है। इस तरह जाति के मुक्ति प्रयास का पता चलता है। इस दृष्टि से मुक्त छन्द के विषय मे दिया गया उनका वक्तव्य ऐतिहासिक बयान है जहॉ वे छन्द को शास्त्र और पिगल की पण्डिताऊ पोथियो से बाहर निकालकर आधुनिक भारत से जोडते हैं और उसे एक नये अर्थ का वाहक बनाते हैं। वे लिखते है–

'मनुष्यो की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यो की मुक्ति कर्मों के बधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दो के शासन से अलग हो जाना है।'[38]

यहॉ पर निराला स्वच्छन्दतावाद की स्वतन्त्र दृष्टि का सकेत भी करते हैं। उन्होने मुक्तक काव्य का विवेचन करते हुए लिखा है कि उससे साहित्य मे एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है। यही निराला की स्वच्छन्दतावादी दृष्टि है।

निराला ने काव्य की स्वच्छन्दतावादी चेतना को वैदिक साहित्य से जोडा। उन्होने लिखा है– 'वैदिक साहित्य–काव्य मे इस प्रकार की स्वचछन्द सृष्टि को देखकर हम तत्कालीन मनुष्य स्वभाव की

मुक्ति का अदाज लगा लेते है।' वे यह भी कहते हैं कि स्वच्छन्दता की जगह नियन्त्रण और अनुशासन उसके कमजोर होने के लक्षण हैं, जैसे–मकडी अपने ही जाल मे फस कर रह जाती है। आधुनिक परिवेश की चर्चा करते हुये उन्होने परिमल की भूमिका मे लिखा है–

'यही हाल वर्तमान समय मे हमारे काव्य–साहित्य का है। इस समय के और पराधीन काल के काव्यानुशासनो को देखकर हम जाति की मानसिक स्थिति को भी देख ले सकते है। अनुशासन के समुदाय चारो तरफ से उसे जकडे हुये है। साहित्य के साथ–साथ राज्य, धर्म, समाज, व्यवसाय सभी कुछ पराधीन हो गये है।' निराला आगे लिखते है– 'अब उसे अपनी मुक्ति के लिए उन तमाम बधनो को पार करना होगा। × × × × × क्योकि नियम और अनुशासन भी सीमा के ही परिचायक होते हैं।'[39]

छायावृत्ति की खोज वैदिक साहित्य से करने वाले निराला ने छायावाद को सौन्दर्यवाद के रूप मे प्रतिष्ठित किया। उन्होने छायावाद को भारतीय मनीषा का एक सनातन सस्कार घोषित किया।

सुमित्रानन्दन पन्त

सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य सम्बन्धी विचार 'पल्लव' 'युगवाणी', 'आधुनिक कवि', 'चिदम्बरा' आदि मे मिलते है। पन्त की काव्य सम्बन्धी मान्यताओ मे बराबर परिवर्तन होते रहे हैं। उन्होने कविता को 'परिपूर्ण क्षणो की वाणी' कहा है। उन्होने लिखा है–

'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणो की वाणी है, हमारे जीवन का पूर्ण रूप, हमारे अन्तरतम प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही सगीतमय है, अपने उत्कृष्ट क्षणो मे हमारा जीवन छन्द मे ही बहने लगता है, उसमे एक प्रकार की संपूर्णता, स्वरैक्य तथा सयम आ जाता है, प्रकृति के प्रत्येक कार्य, रात्रि दिवस की ऑख मिचौनी, षड्ऋतु परिवर्तन, सूर्य राशि का जागरण, शयन, ग्रह–उपग्रहो का अश्रान्त नर्तन, सृजन स्थिति, सहार–सब एक अनन्त छन्द, एक अखण्ड सगीत ही मे होता है।'[40]

पंत के अनुसार भाव विशेष मन को इस प्रकार आप्लावित कर लेता है कि उसमे (मन में) समा न सकने के कारण वह (भाव) अनायास ही काव्य के रूप मे अभिव्यक्त हो उठता है। ऐसे क्षणो मे भावनाओं के सहज उच्छलन को परिपूर्ण क्षणो की वाणी कहा जा सकता है। भावात्मक धरातल पर भाव विशेष की

परिपूर्णता की अभिव्यक्ति को पत ने कविता माना है। पंत के अनुसार कविता केवल कवि विशेष के हृदय का सगीत न होकर विश्व भर के प्राणियो के अन्तरतम का सगीत होती है। प्राणिमात्र के हृदय की गहनतम भावनाओ को कवि अपने हृदय मे अनुभव कर निजी अनुभूति से उसका तादात्म्य स्थापित करता है। इसलिए कविता उसके अपने हृदय का सगीत होते हुये भी विश्व के मानस की भावनाओ को भी व्यक्त करती है। कविता मे भावो की अभिव्यक्ति अन्य कलाओ एव माध्यमो से भिन्न है। भावो का आन्तरिक स्पदन जितनी सूक्ष्मता और स्पष्टता से सपूर्ण सौन्दर्य को ध्वनित करता हुआ कविता में व्यक्त होता है उतना किसी अन्य कला मे नही।

पत ने भाषा को 'ससार का नादमय चित्र' कहकर खडीबोली को काव्य के नये सवेदनो के लिए ब्रजभाषा की अपेक्षा अधिक उपयुक्त घोषित किया। उन्होने 'पल्लव' की भूमिका मे लिखा है–

'खडीबोली आगे की सुवर्णाशा है, उसकी बाल कला मे भावी की लोकोज्ज्वल पूर्णिमा छिपी है, वह हमारे भविष्याकाश की स्वर्गगा है, जिसके अस्पष्ट ज्योतिपुज मे, न जाने कितने जाज्वल्यमान सूर्य राशि, असख्य ग्रह–उपग्रह, अमन्द नक्षत्र तथा अनिन्द्य लावण्य लोक अतर्निहित है। वह समस्त भारत की हृत्कपन हैं, देश की शिरोपशिराओ मे नवजीवन सचारिणी सजीवनी है, वह हमारे भगीरथ प्रयत्नो से अर्जित, भारत के भाग्यविधाता की वरदान स्वरूप विश्व कवि के हृत्कमण्डलु से नि सृत अमृत स्वरो की जाह्नवी है, जिसने सुप्त देश के कर्ण कुहर मे प्रवेश कर उसे जगा दिया।'[41]

पत ने अपनी रचना 'चिदम्बरा' की भूमिका 'चरण चिन्ह' मे छायावाद पर नये सिरे से विचार किया है। उन्होने लिखा है–

'छायावाद की सार्थकता, मेरी दृष्टि मे, उस युग के विशिष्ट भावात्मक दृष्टिकोण तक ही सीमित है, जो भारतीय जागरण को चेतना का सर्वात्मवादमूलक कैशोर का शुभारम्भ भर था, उस युग की कविता मे और भी अनेक प्रकार के अभिव्यजना के तत्व तथा रूप शिल्प की विशेषताओ के व्यापक उदाहरण है जो खडीबोली के गद्य–पद्य के लिए स्थायी देन के रूप में रहेगे।'[42] यहॉ पत ने छायावाद के भावात्मक दृष्टिकोण पर जोर दिया है।

पन्त ने छायावाद मे कल्पना–तत्व की महत्वपूर्ण स्थिति स्वीकारते हुये 'आधुनिक कवि' की भूमिका मे लिखा है– 'मैं कल्पना के सत्य को सबसे बडा सत्य मानता हूँ।' यद्यपि 'ग्राम्या' मे यथार्थ का आग्रह है, फिर भी छायावाद के विवेचन मे पत ने भावात्मक सत्ता की महत्वपूर्ण स्थिति स्वीकारी और उसे कोमल सवेदनो से जोडा। पत प्रकृति की भूमि से होकर स्वच्छन्दतावादी जगत् मे आये थे, इसलिए आशा की जाती थी कि उनके चितन और काव्य दोनो मे मानव–प्रकृति की आपसी निकटता का आग्रह रहेगा। छायावादी काव्य के तत्वो के बारे मे पन्त जी 'आधुनिक कविता' की भूमिका मे लिखते हैं– 'ह्रास युग के वैयक्तिक अनुभवो, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियो, ऐहिक जीवन की आकाक्षाओ, स्वप्नो, निराशाओ और सवेदनाओ को अभिव्यक्ति मिलने लगी, उसमे पलायन का स्वर था।'[43]

छायावाद के अन्य कवियो की तरह पन्त छायावाद की समग्र व्याख्या नही कर सके क्योकि उनकी मान्यताओ मे बराबर परिवर्तन आता रहा है। फिर भी उन्होने वैयक्तिक अनुभव और संवेदनाओ की विशेष स्थिति छायावाद मे स्वीकार की। कल्पना तत्व को उन्होने भावात्मक सौन्दर्य के समान स्थान दिया। पत की शिल्प सम्बन्धी अवधारणाओ मे विशेष परिवर्तन नही हुआ। 'पल्लव' की भूमिका मे उन्होने काव्य शिल्प पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होने छायावादी कविता के लिये खडीबोली हिन्दी को सर्वाधिक उपयुक्त बताया। भाषा को उन्होंने ससार का रागमय चित्र तथा ध्वनिमय स्वरूप बताया है। भाषा और कविता के सम्बन्ध मे वे लिखते है– 'भाषा का और मुख्यत कविता की भाषा का प्राण राग है। राग ही के पखे की अबाध उन्मुक्त उडान मे लयमान होकर कविता सान्त को अनन्त से मिलाती है। राग ध्वनि लोक निवासी शब्दो के हृदय मे परस्पर स्नेह तथा ममता का सम्बन्ध स्थापित करता है।'[44]

पंत ने भाव–भाषा मे मैत्री अथवा ऐक्य की आवश्यकता पर जोर दिया। उनके अनुसार कविता मे शब्द और अर्थ की अपनी स्वतंत्र सत्ता नही रहती, वे दोनों भाव की अभिव्यक्ति मे डूब जाते है। इसी प्रकार 'पल्लव' की भूमिका मे पत ने छन्द पर विस्तार से चर्चा की। पत के अनुसार प्रत्येक भाषा के छन्द उसके उच्चारण सगीत के अनुसार होने चाहिए। पंत शिल्प जगत मे आजादी की मॉग करते है। 'पल्लव' की भूमिका मे ही वे मात्रिक छन्दो का समर्थन करते है–

'हिन्दी का सगीत केवल मात्रिक छन्दो ही मे अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सपूर्णता प्राप्त कर सकता है। उन्ही के द्वारा उसमे सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है।'[45]

इस प्रकार हम देखते है कि पत के समस्त छायावादी काव्य–चितन मे समय–समय पर परिवर्तन आता रहा है।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा छायावाद की सर्वाधिक निष्ठावान साधक एव समर्थ विचारक रही है। यही कारण है कि उन्हे छायावाद को जीवन देने का श्रेय प्रदान किया जाता है। उनकी काव्य सम्बन्धी मान्यताये 'गीत पर्व', 'यामा', 'दीपशिखा' आदि मे मिलती है। उन्होने छायावृत्ति को ही वास्तविक काव्य प्रवृत्ति स्वीकार किया है। महादेवी छायावृत्ति का उद्गम कल्पना, वेदना और सहानुभूति से मानती है, साथ ही इसे सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति का नाम भी देती है। उन्होने वैदिक ऋचाओ और सूत्रो मे उसके मूल उत्स परिलक्षित कराये हैं। उनके कथनानुसार बाह्य जगत का सौन्दर्य अन्तर्जगत मे प्रतिच्छवित होता है।[46]

काव्य के प्रयोजन पर विचार करते हुए उन्होने लिखा है कि 'व्यापक सत्य पर सीमित जीवन का सुन्दर ताना–बाना बुनने के लिए काव्य ने स्थूल–सूक्ष्म सभी विषयो को अपना उपकरण बनाया है। × × × × × काव्य मे कला का उत्कर्ष एक ऐसे बिन्दु तक पहुँच गया, जहाँ से वह ज्ञान को भी सहायता दे सका क्योकि सत्य काव्य का साध्य है और सौन्दर्य उसका साधन है।'[47] इस वक्तव्य से महादेवी की काव्य सम्बन्धी दृष्टि की व्यापकता का पता चलता है। 'यामा' की भूमिका 'अपनी बात' मे महादेवी वर्मा ने अपनी काव्य यात्रा पर विचार करने के साथ छायावाद को परिभाषित करने की चेष्टा की है। उन्होने छायावाद शब्द को उपयुक्त माना है क्योकि इसमे मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिये रो उठा और स्वच्छन्द छन्द मे उसकी छाया अकित हुई।[48] उन्होने छायावाद पर लगे इस आरोप का खण्डन किया कि वह केवल मध्यवर्ग का काव्य है और इसमे सघर्षमय यथार्थ जीवन से पलायन का भाव है। उन्होने छायावाद को दार्शनिक आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया तथा अपनी रहस्योन्मुख चेतना और करुण भावना से उसकी संगति बैठायी।

महादेवी वर्मा ने छायावाद को इस प्रकार परिभाषित किया है– 'छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भाव–भूमि पर उसने प्रकृति मे बिखरी सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति प्राप्त की और दोनो के साथ स्वानुभूत सुख–दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी कि जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामो का भार सँभाल सकी।'[49]

महादेवी वर्मा के द्वारा दी गयी परिभाषा मे छायावाद का जो स्वरूप उभरता है उसमे धर्म निरपेक्ष अध्यात्म, दार्शनिक चिन्तन, सूक्ष्म भाव सौन्दर्य, वैयक्तिक अनुभूति, प्रकृति–सत्ता के अनुभव आदि को प्रमुखता मिली है। उन्होने अपने काव्य सकलनो की लम्बी भूमिकाएँ लिखकर केवल अपने ही काव्य और जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट नहीं किया वरन् सामाजिक, साहित्यिक परिवेश पर भी विचार किया। छायावाद पर पलायनवादी होने का आक्षेप का उन्होने खण्डन किया। 'दीपशिखा' की 'चिन्तन के कुछ क्षण' नामक शीर्षक से भूमिका मे महादेवी वर्मा ने लिखा है– 'छायावाद एक प्रकार से अज्ञात कुलशील बालक रहा, जिसे सामाजिकता का अधिकार ही नही मिल सका।'[50]

छायावाद के शिल्प पक्ष की चर्चा करते हुये महादेवी वर्मा ने सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति के लिए नये शिल्प–विधान की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होने लिखा है–

'छायावाद ने नये छन्द–बन्धो मे सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा, वह खडीबोली की साहित्यिक कठोरता नहीं सह सकता था। अत कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप–तौल और काट–छाँट कर तथा कुछ नये गढकर अपनी सूक्ष्म भावनओ को कोमलतम कलेवर दिया।'[51]

निष्कर्षत. कहा जा सकता है कि छायावाद पर महादेवी वर्मा की काव्य–मान्यताए छायावादी काव्य को समझने की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं।

मार्क्सवादी विवेचन–प्रगतिवादी विवेचन

स्वच्छन्दतावादी काव्य से मार्क्सवाद की टकराहट स्वाभाविक है क्योकि मार्क्सवाद मे सामाजिक यथार्थ का आग्रह प्रधान रहता है। सामाजिक यथार्थ के नाम पर प्रकृतवाद, यौनवाद, नग्नता आदि का प्रचार रोकने के उद्देश्य से मार्क्सवादी चितको ने समाजवादी यथार्थवाद की विचारधारा को सामने रखा। इसे प्रगतिशील यथार्थवाद भी कहा जाता है। इस समाजवादी यथार्थवाद या प्रगतिशील यथार्थवाद को स्वच्छन्दतावाद के अंग के रूप मे देखने की कोशिश हुई है। स्वच्छन्दतावाद को सामाजिक यथार्थवाद का एक हिस्सा माना गया, यहॉ तक कहा गया कि स्वच्छन्दतावाद के कुछ तत्वो के बिना समाजवादी यथार्थवाद की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लेनिन ने समाजवादी समाज के विकास के लिए वैज्ञानिक समाजवाद के साथ सुन्दर कल्पना की चर्चा की है। मैक्सिम गोर्की ने क्रातिकारी स्वच्छन्दतावाद (रिवोल्यूशनरी रोमाटिसिज्म) शब्द का प्रयोग किया है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि मार्क्सवाद मे स्वच्छन्दतावाद के प्रगतिशील पक्ष को जो समर्थन मिलता है वह समाजवादी यथार्थवाद के अन्तर्गत है।[52]

प्रगतिवाद मार्क्सवाद की विचारधारा से ही जुडा है। एक तरह से यह मार्क्सवाद का साहित्यिक स्वरूप है। छायावादी काव्य के निर्माण की ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियो की भूमिका को मार्क्सवाद ने पहले ही स्वीकार कर लिया था। इस स्वीकृति के आलोक मे हिन्दी की प्रगतिवादी समीक्षा ने छायावाद का समर्थन किया तथा उसके मानवतावादी पक्ष की सराहना की।

भारतीय प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना वर्ष 1935 ई0 में लन्दन मे हुई और भारत मे इसका प्रथम अधिवेशन प्रेमचन्द की अध्यक्षता मे लखनऊ में वर्ष 1936 ई0 में हुआ।[53] लगभग इसी समय छायावादी काव्य मे परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। छायावादी कवि विशेषकर निराला और पत प्रगतिवाद की तरफ झुक जाते हैं। वर्ष 1938 ई0 में प्रकाशित निराला के काव्य संग्रह 'अनामिका' (द्वितीय) की अनेक रचनाऍ सामाजिक विद्रोह की भावना से युक्त थीं। वनबेला, नये पत्ते आदि कविताऍ सामाजिक व्यंग्य से भरपूर थी। प्रगतिवादियो ने इन कविताओं की सराहना की। डॉ0 रामविलास शर्मा ने निराला के प्रगतिवादी दृष्टिकोण की प्रशसा करते हुए उनकी गद्य रचनाओं के सम्बन्ध मे लिखा है–

'उनका यह पक्ष कुल्लीभाट, चतुरी चमार, विल्लेसुर बकरिहा, देवी आदि रचनाओ मे विशेष निखर कर आया है। वह छायावाद की भूमि पर भी सघर्षों के कवि रहे × × × × × उन्होने सामाजिक रुढिवाद पर तीव्र प्रहार किया। उन्होने जनता की राजनीतिक चेतना को प्रखर किया। उन्होने हिन्दी पाठको की क्रातिकारी भावनाओ को उभारा, सँवारा।'[54]

सुमित्रानन्दन पत ने 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या' आदि रचनाओ के द्वारा अपनी प्रगतिवादी चेतना का परिचय दिया। डॉ0 रामविलास शर्मा, शिवदान सिह चौहान तथा प्रकाश चन्द्र गुप्त आदि ने प्रगतिवादी समीक्षा के शुरुआती दौर मे छायावादी काव्य पर विचार किया। बाद के समीक्षको मे डॉ0 नामवर सिह ने छायावाद पर विस्तृत विचार किया। उन्होने 'छायावाद' नामक एक स्वतन्त्र समीक्षा पुस्तक भी लिखी। शिवदान सिह चौहान ने 'प्रगतिवाद' नामक अपनी पुस्तक मे स्वीकार किया है कि छायावाद ने सामती समाज की श्रृखलाओ और अनैसर्गिक बधनो, उसकी सकीर्ण सौन्दर्य भावनाओ, कुत्सित सौन्दर्य मूल्यो के प्रति विद्रोह किया। डॉ0 रामविलास शर्मा के अनुसार व्यक्ति और समाज के सघर्ष से रोमाटिक कविता का जन्म होता है। यह कथन उनके छायावाद सम्बन्धी विवेचन का प्रस्थान बिन्दु है। उनका मानना है कि छायावाद हिन्दी की नयी परम्परा से सम्बद्ध है जिसने साहित्य को नया विकास दिया। छायावाद पर प्रतिक्रियावादी होने के आरोप का वे पुरजोर खण्डन करते है। उन्होने लिखा है–

'छायावादी काव्यधारा मे जो सबसे सबल एव जन हितैषी तत्व थे उन्हे अपने मे समेटकर यह धारा आगे बढने का प्रयास कर रही है। प्रगतिशील कविता छायावाद की ही परिणति है। उसका विद्रोह पुरानी सीमाओ से निकलकर आज एक विशद सामाजिक रूप धारण कर रहा है।'[55]

डॉ0 रामविलास शर्मा ने स्वच्छन्दतावादी काव्य की व्यापक भावभूमि को स्वीकार किया। उन्होने माना कि छायावादी काव्य मे प्रगतिवादी काव्य के बीज विद्यमान हैं। वह स्वच्छन्दतावाद को अधिकाधिक वस्तून्मुखी देखने के पक्षधर हैं, क्योकि वे रचना की सामाजिकता के हिमायती है। इस कारण निराला उनके सर्वप्रिय कवि हैं। उन्होने लिखा है– 'निराला जी छायावादी काव्य मे सबसे अधिक प्रगतिशील रहे हैं।'

हिन्दी की प्रगतिवादी समीक्षा छायावाद को राष्ट्रीय, सास्कृतिक सदर्भों के परिप्रेक्ष्य मे रखकर देखने की चेष्टा करती है। उसकी मान्यता है कि मध्यवर्ग की विद्रोही चेतना से इसका जन्म हुआ। प्रगतिवाद के प्रथम दौर के बाद जब हिन्दी मे सामाजिक परिस्थितियो का विश्लेषण करते हुए रचना को समझने की परम्परा विकसित हुई, तब नामवर सिह ने अपने ग्रथ 'छायावाद' मे सामाजिक सत्य के उद्घाटन का प्रयत्न किया। उन्होने छायावाद के काव्य–सौन्दर्य का विवेचन करते हुए लिखा है–

'छायावाद के काव्य–सौन्दर्य के विवेचन से स्पष्ट है कि यह सारा सौन्दर्य व्यक्ति की स्वाधीनता की भावना से उत्पन्न हुआ है और वह स्वाधीनता भी व्यक्ति के माध्यम से सपूर्ण समाज की स्वाधीनता की अभिव्यक्ति है। परन्तु इस काव्यगत स्वाधीनता को तत्कालीन स्वाधीनता सग्राम के साथ मिलाकर देखने से पता चलता है कि छायावाद मे स्वाधीनता सग्राम के कुछ पहलू छूट गये हैं और कहीं–कही छाया भी बहुत धुँधली और मूल से दूर चली गयी है।' डॉ0 नामवर सिह आगे लिखते हैं– 'फिर भी छायावाद की कविता से राष्ट्रीय जागरण का पर्याप्त आभास मिलता है। इस राष्ट्रीय जागरण के फलस्वरूप सपूर्ण भारत मे रोमांटिक काव्य की लहर छोड गयी थी, जिसका एक अग हिन्दी का छायावाद भी है। छायावाद मे जो सार्वभौम और शाश्वत तत्व दिखाई पडते हैं, वे सौन्दर्यशास्त्र के किसी अलौकिक नियम से नही आये हैं, बल्कि उसके ऐतिहासिक कार्यों के पुरस्कार हैं।'[56]

डॉ0 नामवर सिह ने छायावाद के सास्कृतिक परिवेश की चर्चा करते हुये उसे मध्य वर्ग की रागात्मक अभिव्यक्ति कहा है। उन्होने माना कि छायावाद मे आन्तरिक और बाह्य्य बधनो से मुक्ति की चेष्टा है। छायावाद को हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण कडी स्वीकार करते हुये उन्होने लिखा है– 'छायावाद हिन्दी साहित्य की परम्परा की एक महत्वपूर्ण कडी है। इसका जन्म हमारे साहित्य की विशेष सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियो मे हुआ।'[57] × × × × × इस तरह छायावाद हमारी विशेष सामाजिक और साहित्यिक आवश्यकता से पैदा हुआ और जन आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने ऐतिहासिक कार्य किया। समाज और साहित्य को उसने जिस तरह पुरानी रुढियो से मुक्त किया उसी तरह आधुनिक राष्ट्रीय और मानवतावादी भावनाओ की ओर भी प्रेरित किया। व्यक्तित्व की स्वाधीनता, विराट कल्पना, प्रकृति–साहचर्य, मानव–प्रेम, वैयक्तिक प्रणय, उच्च्व नैतिक आदर्श, देशभक्ति, राष्ट्रीय

स्वाधीनता आदि के प्रसार द्वारा छायावाद ने हिन्दी जाति के जीवन मे ऐतिहासिक कार्य किया। कविता के रूप विन्यास को पुरानी सकीर्ण कडियों से मुक्त करके उसने नवीन अभिव्यजना प्रणाली के लिए द्वार खोल दिया है।'[58]

प्रगतिवादी समीक्षको मे गजानन माधव मुक्तिबोध के विचार भी महत्वपूर्ण है। उनकी समीक्षा मे समाजशास्त्रीय आग्रह प्रबल है। 'कामायनी एक पुनर्विचार' नामक समीक्षा कृति इस मान्यता को लेकर लिखी गयी है कि युग तथा साहित्य के परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं। इस समीक्षा कृति मे मुक्तिबोध कई बार व्यक्तिवाद का उल्लेख करते है, जिसे प्रकारान्तर से वे छायावाद की प्रभावी प्रकृति के रूप मे स्वीकार करते है। वे व्यक्तिवादी छायावादी भावुकता तथा छायावादी व्यक्तिवाद जैसे मुहावरो का प्रयोग करते है, क्योकि वे काव्य को एक सास्कृतिक प्रक्रिया मानकर रचना के सामाजीकरण पर बल देते हैं, इसलिए छायावाद की रोमानी प्रवृत्ति उन्हे जीवन यथार्थ के साथ न्याय करती नही दिखायी देती, छायावाद की रोमानी तबीयत से उन्हे लगाव नही था। उन्हे छायावादी काव्य और नयी कविता की आधुनिकतावादी प्रवृत्ति मे नये–पुराने का झगडा मालूम होता है। 'नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' मे 'छायावाद और नयी कविता' शीर्षक से उनके दो निबध सकलित है, जिनमे दोनो काव्यान्दोलनो पर तुलनात्मक दृष्टि डाली गयी है। मुक्तिबोध छायावाद को आदर्शवादी, व्यक्तिवादी, भावुकता प्रधान, कल्पनाप्रिय मानकर यह घोषित करते है कि 'नयी कविता के यथार्थवादी व्यक्तिवाद ने इसके विरुद्ध बगावत की।'[59]

इतना ही नहीं, मुक्तिबोध ने प्रकारान्तर से छायावाद पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लगाये गये आरोपो से अपनी सहमति व्यक्त की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्वय को छायावादी काव्य से पूरी तरह जोड पाने मे असमर्थ सा अनुभव किया था और इसीलिए किसी सीमा पर नैतिक आधार पर उसकी आलोचना की, जबकि मुक्तिबोध ने यथार्थवादी की दृष्टि से छायावाद पर आक्रमण किया। छायावाद के सम्बन्ध मे उनकी आपत्ति इसी यथार्थवादी आग्रह से जुडी हुई है और वे उसे जीवन के व्यापक अनुभवों से पलायन कर जाने वाला काव्य आन्दोलन मानते हैं।

मुक्तिबोध की तरह ही रमेश कुतल मेघ की समीक्षा भी प्रगतिवाद और नयी कविता के सम्मिलित व्यक्तित्व से निर्मित दिखायी देती है। 'मिथक और स्वप्न कामायनी की मनस्सौन्दर्य सामाजिक भूमिका' के आमुख मे वह छायावाद की मूल वृत्ति अन्तर्मुखी, व्यक्तिवादी और लिरिकल स्वीकार करते है। इसीलिए वे कामयानी पर आरोप लगाते हैं कि उसमे एक समुचित जीवित दर्शन के बजाय दार्शनिक मध्यकालीनतावादी पलायनमार्गी विश्रान्ति है। वे यह भी लिखते हैं कि अपनी मानसिक वैयक्तिकताओ (मेण्टल प्राइवेसीज) को वैयक्तिक कामनाओ के धरातल पर अभिव्यक्त करने की विराट प्रतीकात्मक चेष्टाए तो छायावादी कवियो ने ही शुरू की। उन्होने छायावाद मे सामाजिक प्रतिबद्धता का अभाव पाया तथा उसे यूटोपिया प्रधान कहा।[60]

इस प्रकार हम देखते है कि प्रगतिवादी समीक्षको ने छायावाद की कल्पनाशीलता का विरोध किया।

स्वच्छन्दतावादी काव्य की नयी विवेचना

प्रगतिवादी समीक्षको ने छायावाद की कल्पनाशीलता और रोमानी प्रवृत्ति का विरोध किया, उसे पलायनवादी कहा, फिर भी उन्होने प्रगतिशील स्वच्छन्दतावाद जैसे नाम देकर छायावादी काव्य के महत्व को स्वीकार किया। किन्तु छायावाद पर सबसे तीखा आक्रमण प्रयोगवाद और नयी कविता ने किया। डॉ0 देवराज ने सन् 1947 ई0 मे 'छायावाद का पतन' नामक निबध लिखा। उसमे उन्होने शब्द–चित्र तथा कल्पनाशीलता को लेकर छायावादी काव्य पर प्रहार किया। छायावाद को लेकर उनकी सबसे बडी शिकायत यह थी कि उसकी चेतना आधुनिक नहीं है। उन्होने छायावाद की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का विरोध किया। डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या' मे अज्ञेय को गैर रोमैटिक कविता की सभावना के रूप मे पेश किया है। डा0 चतुर्वेदी छायावाद के रोमानी मिजाज और नये काव्य की बदली हुई स्थितियो का जायजा लेते हुए कहते है–

'आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास एक स्तर पर रोमाटिसिज्म के स्थापन और विघटन का इतिहास है। श्रीधर पाठक से लेकर अज्ञेय और परवर्ती नयी कविता तक रोमाटिसिज्म का उतार–चढाव

कई रूपो मे मिलता है। स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, आधुनिक कविता के इन विविध उत्थानों मे रोमाटिसिज्म का उदय, स्थापन, सघर्ष और विघटन देखा जा सकता है।'[61]

'अज्ञेय' ने एक ओर छायावाद को अपने ढग से जानने का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर उसके विरोध की अगुवाई भी की। 'पुष्कारिणी' की भूमिका मे उन्होने छायावाद की पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुए कहा कि विदेशी शिक्षा के प्रभाव मे पुराने भारतीय मूल्य लडखडाने लगे थे और जो नैतिकता ईश्वर के इर्द–गिर्द घूमती थी, उसका स्थान एक मानवपरक नैतिकता ने ले लिया था। महायुद्ध के बाद की स्थितियो ने भारतीय जीवन को और भी निराश किया और कवि के मन मे एक गहरा अन्तर्द्वन्द उपस्थित हुआ। इसे 'अज्ञेय' ने 'आध्यात्मिक व्याकुलता' नाम दिया। वे छायावाद को इसी की अभिव्यक्ति का प्रयत्न मानते हैं। उन्होने इसे इतिवृत्त काव्य के विरोध मे उठने वाला विषय प्रधान अथवा सूक्ष्म के विद्रोह का काव्यान्दोलन कहा। 'पुष्कारिणी' की भूमिका मे उन्होने छायावाद की व्यक्तिपरकता के विषय में लिखा है–'छायावाद पश्चिम से प्रभावित नयी व्यक्तिपरक दृष्टि का परिणाम था, जिसने भाव, भाषा, छन्द, और शिल्प सभी को नया सस्कार दिया, छन्द, अलकार, रस, ताल आदि की गतानुगतिकता से उभारा, नयी प्रतीक योजना स्थापित की।'[62]

'सामयिक भारतीय साहित्य' मे आधुनिक हिन्दी काव्य के विषय मे लिखते हुए उन्होने छायावाद को वैयक्तिक विद्रोह करार दिया। उनकी दृष्टि मे प्रसाद जैसे कवि मौलिकता का दावा नही कर सकते और छायावाद को भारतीय स्वच्छन्दतावाद नाम से अभिहित करते हुये उन्होने उसे ज्यादा अहमियत नही दी।

छायावाद अपने समय की मॉग पूरा करता हुआ आया और वह कुछ ऐतिहासिक, सामाजिक दबावो का स्वाभाविक परिणाम है। छायावाद के प्रदेय और उसकी सीमाओ पर विचार करना इसी सदर्भ मे उचित होगा। छायावाद का एक चरण निराला के प्रगति शील काव्य तक जाता है जो इस बात का प्रमाण है कि रोमानी काव्य खुद अपनी सीमाओ को तोड सकता है। छायावाद के लिए स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग इसी दृष्टि से सार्थक प्रतीत होता है।

सन्दर्भ

1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ– 408–409

2 वही, पृष्ठ–439

3 वही, पृष्ठ–442

4 वही, पृष्ठ–443

5 डॉ0 बच्चन सिह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ–332

6 वही, पृष्ठ–332

7 डॉ0 कान्ति कुमार जैन–रोमैण्टिक मिजाज · मुकुटधर पाण्डेय से मुक्तिबोध तक, पृष्ठ –15

8 वही, पृष्ठ–17

9 डॉ नामवर सिह– छायावाद, पृष्ठ–12

10 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी–आधुनिक साहित्य (स्वच्छन्दता और परम्परा–निबध), पृष्ठ–415

11 वही, पृष्ठ –416

12 वही, पृष्ठ –419

13 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी–हिन्दी साहित्य . बीसवी शताब्दी (विज्ञप्ति), पृष्ठ–12

14 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी–नया साहित्य नये प्रश्न, पृष्ठ –148

15 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी–हिन्दी साहित्य . बीसवी शताब्दी, पृष्ठ–163

16 डॉ0 देवराज उपाध्याय–रोमाटिक साहित्यशास्त्र (भूमिका– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी), पृष्ठ –2

17 वही, पृष्ठ –1

18 वही, पृष्ठ –3

19 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी–छायावादी कविता की प्रेरणा भूमि–जनवरी 1954 ई0 मे 'अवन्तिका' (काव्यालोचनाक) मे प्रकाशित निबंध, पृष्ठ –212

20 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य, पृष्ठ–450

21 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी – अशोक के फूल (मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है–निबध)

22 डॉ0 नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियॉ, पृष्ठ– 9

23 डॉ0 नगेन्द्र – आस्था के चरण, पृष्ठ –230

24 डॉ0 नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियॉ, पृष्ठ–13

25 वही, पृष्ठ – 16

26 जयशकर प्रसाद–काव्य और कला तथा अन्य निबध, पृष्ठ–25

27 वही, पृष्ठ–25–26

28 वही, पृष्ठ– 26

29 वही, पृष्ठ– 29

30 वही, पृष्ठ– 75

31 वही, पृष्ठ–80–81

32 वही, पृष्ठ –81

33 डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त – आधुनिक हिन्दी कवियो के काव्य सिद्धात, पृष्ठ–407

34 डा0 सूर्य प्रसाद दीक्षित – छायावादी कवियो का गद्य साहित्य, पृष्ठ– 424

35 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' – प्रबन्ध प्रतिमा (साहित्य की नवीन पद्धति), पृष्ठ–160

36 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' – परिमल (भूमिका), पृष्ठ– 6–8

37 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' – प्रबन्ध प्रतिमा, पृष्ठ–180

38 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' – परिमल, पृष्ठ–12

39 डॉ0 प्रेम शकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –80

40 सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव (भूमिका), पृष्ठ –33

41 वही, पृष्ठ– 25–26

42 सुमित्रानन्दन पन्त – चिदम्बरा (चरण चिन्ह), पृष्ठ– 9

43 सुमित्रानन्दन पन्त – आधुनिक कवि (भूमिका), पृष्ठ–18

44 सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव, पृष्ठ–27–28

45 वही, पृष्ठ–34–35

46 महादेवी वर्मा – सप्तपर्णा की भूमिका, पृष्ठ –20

47 महादेवी वर्मा – गीत पर्व (वैचारिकी), पृष्ठ– 8–6

48 महादेवी वर्मा – यामा (अपनी बात), पृष्ठ–11

49 महादेवी वर्मा – गीत पर्व (वैचारिकी), पृष्ठ –13–14

50 महादेवी वर्मा – चिन्तन के कुछ क्षण, पृष्ठ–53

51 महादेवी वर्मा – गीत पर्व (वैचारिकी), पृष्ठ–16

52 डॉ0 प्रेम शकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–96–97

53 वही, पृष्ठ–98

54 डॉ0 रामविलास शर्मा – निराला, पृष्ठ–207

55 डॉ0 रामविलास शर्मा – सस्कृति और साहित्य, पृष्ठ–5

56 डॉ0 नामवर सिह – छायावाद , पृष्ठ–6

57 वही, पृष्ठ–150

58 वही, पृष्ठ–151–152

59 गजानन माधव मुक्तिबोध – नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ–33

60 रमेश कुतल मेघ – मिथक और स्वप्न कामायनी की मन सौन्दर्य सामाजिक भूमिका

61 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृष्ठ–3

62 सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय – पुष्कारिणी (भूमिका)

अध्याय-4

अध्याय–4

प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का उद्‌भव आधुनिक युग मे होता है। बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ही स्वच्छन्दवादिता के आभास मिलने लगते हैं। हिन्दी कविता को रीतिकालीन सस्कारो से मुक्त कर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उसे लोकजीवन के राजपथ पर लाकर खडा किया। मानव जीवन के विविध पक्षों को कविता का विषय बनाया गया, उसे वैयक्तिक प्रेम की अभिव्यक्ति के माध्यम से ऊपर उठाकर संपूर्ण मानवता से जोडने के प्रयास किये गये। किन्तु भारतेन्दु मे रोमाटिक तत्व उभरकर नहीं आ सके। उन्होने रीतिकालीन ब्रजभाषा को काव्य भाषा के माध्यम के रूप मे प्रयोग करना जारी रखा।

भारतेन्दु तथा उनके मंडल के लेखको के व्यक्तित्व मे रीतिवाद और स्वच्छन्दता दोनो का मेल था। गद्य मे तो स्वच्छन्द शैली का प्रभाव है। परन्तु कविताओ की भाषा ब्रज तथा शैली रीतिवादी बनी रही। विषय वस्तु मे विविधता, अभिव्यक्ति की शैली तथा प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण मे स्वच्छन्दतावाद के दर्शन नहीं हुये। श्रीधर पाठक पहले कवि हैं जिनकी कविता मे प्रकृति का संश्लिष्ट और स्वच्छन्द चित्रण, गॉव की साधारण वस्तुओ का वर्णन और जगह–जगह परोक्ष सत्ता के रहस्य सकेत भी हैं। अपने अनुवादो तथा अपनी मौलिक कृतियो के माध्यम से उन्होने भाषा, भाव और छन्द का नूतन विधान सामने लाया। सवेदनशील प्रकृति चित्रण से उन्होने स्वच्छन्दवादिता को और पुष्ट किया। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हे सच्चे स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक माना है। इस धारा के प्रारम्भिक कवियो में श्रीधर पाठक के अतिरिक्त राम नरेश त्रिपाठी, अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त प्रमुख हैं।

श्रीधर पाठक

स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक कवि

श्रीधर पाठक हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के प्रारभिक दौर के कवि है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे उन्हे सच्चे स्वच्छदतावाद (ट्रू रोमैटिसिज्म) का प्रवर्तक माना है। उन्होने लिखा ,है–

'हरिश्चन्द्र के सहयोगियो मे काव्य धारा को नये–नये विषयो की ओर मोडने की प्रवृत्ति दिखाई पडी, पर भाषा ब्रज ही रहने दी गयी और पद्य के ढॉचो, अभिव्यजना के ढग तथा प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि मे स्वच्छन्दता के दर्शन न हुये। इस प्रकार की स्वच्छंदता का आभास पहले पहल श्रीधर पाठक ने ही दिया। उन्होने प्रकृति के रुढिबद्ध रूपो तक ही न रहकर अपनी ऑखों से भी उसके रूपो को देखा। 'गुनवत हेमत' में वे गॉव मे उपजने वाली मूली, मटर ऐसी वस्तुओ को भी प्रेम से सामने लाये जो परपरागत ऋतु वर्णनो के भीतर नही दिखाई पडती थी। इसके लिए उन्हे प0 माधव प्रसाद मिश्र की बौछार भी सहनी पडी थी। उन्होने खडीबोली पद्य के लिए सुंदर लय और चढाव उतार के कई नये ढॉचे भी निकाले और इस बात का ध्यान रखा कि छंदो का सुदर लय से पढना एक बात है, राग रागिनी गाना दूसरी बात। ख्याल या लावनी की लय पर जैसे 'एकातवासी योगी' लिखा गया वैसे ही सुथरे साइयो के सधुक्कडी ढंग पर 'जगत सचाई सार' जिसमे कहा गया है कि 'जगत है सच्चा, तनिक न कच्चा, समझो बच्चा ? इसका भेद।' 'स्वर्गीय वीणा' में उन्होने उस परोक्ष दिव्य सगीत की ओर रहस्यपूर्ण संकेत किया जिसके तालसुर पर यह सारा विश्व नाच रहा है। इन सब बातो का विचार करने पर प0 श्रीधर पाठक ही सच्चे स्वच्छंदतावाद (रोमाटिसिज्म) के प्रवर्तक ठहरते है।'[1]

अनूदित साहित्य : स्वच्छन्दतावाद का द्वार

श्रीधर पाठक के समस्त कृतित्व को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है। एक के अन्तर्गत उनके द्वारा अनूदित कृतियॉ आती है और दूसरे के अन्तर्गत उनकी मौलिक रचनाएँ आती हैं। ग्रे की कृति 'शेफर्ड एण्ड फिलॉसफर' का अनुवाद 'गडेरिये और दार्शनिक शास्त्री' (गडेरिया और आलिम) नाम से

किया। गोल्ड स्मिथ के तीन काव्यो 'हरमिट', 'ट्रेवलर' और दि 'डेजर्टेड विलेज' के अनुवाद किये। 'हरमिट' का अनुवाद 'एकान्तवासी योगी' नाम से खडीबोली मे, 'ट्रेवलर' का अनुवाद 'श्रान्त पथिक' नाम से खडीबोली मे तथा 'दि डेजर्टेड विलेज' का अनुवाद 'ऊजड ग्राम' नाम से ब्रजभाषा मे किया। कालिदास के 'ऋतु सहार' के प्रथम तीन सर्गों का अनुवाद ब्रजभाषा मे किया। इसके अतिरिक्त उन्होने अग्रेजी कवि कीट्स की 'इजाबेला' का अनुवाद भी प्रस्तुत किया।

श्रीधर पाठक ने 'दि हरमिट' का अनुवाद पहले 'एडविन और एनजेलिना' के नाम से भी किया था।[2] बालकृष्ण भट्ट ने मई 1889 ई के 'प्रदीप' मे इस काव्य के विषय मे लिखा था कि 'जहाँ ग्रथकार ने अपनी ओर से मिलाया, वह भाग अधिक रसीला और माधुर्यपूर्ण है।' इसी अनुवाद से हिन्दी मे स्वच्छदतावादी तत्व का प्रवेश हुआ। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, निर्विकार प्रेम और यथार्थ जीवन की झॉकी इसके गुण हैं। मूल काव्य मे चालीस पदो को पाठक जी ने उनसठ लावनी छन्दो मे रूपान्तरित किया और उसे भारतीय वातावरण से सयुक्त कर दिया।

श्रीधर पाठक ने वर्ष 1770 ई0 मे प्रकाशित गोल्डस्मिथ के 'दि डिजर्टेड विलेज' का अनुवाद ब्रजभाषा मे 'ऊजड ग्राम' के नाम से सन् 1889 ई0 मे किया। इसमे वैयक्तिक अनुभूति से युक्त यथार्थ का चित्रण था। मूल काव्य की 430 पक्तियो का अनुवाद पाठक जी ने 514 पक्तियो मे किया था। इसमे भारतीय वातावरण, भारतीय ग्राम्य दर्शन और स्वच्छदतावादी धारा को आगे बढाया गया था।[3]

श्रीधर पाठक के अनुवाद साहित्य का हिन्दी काव्य–साहित्य पर व्यापक प्रभाव पडा। अग्रेजी काव्य का वस्तु–चयन, शब्दो की कमी के साथ मातृभूमि का प्रेम, पदार्थों, मनुष्यो आदि का यथार्थ वर्णन और मानवीयता के लक्षण इन रचनाओ से हिन्दी साहित्यकारो को देखने को मिले। अग्रेजी की रचनाओ, विशेषकर देशभक्ति पूर्ण रचनाओं का हिन्दी साहित्य पर बडा प्रभाव पडा। भारतेन्दु काल मे श्रीधर पाठक रीतिकालीन परम्परा को तोडकर स्वच्छन्द परम्परा को अपनाने वाले एक तरह से क्रातिकारी कवि थे। इस रूप मे वह नयी चेतना के प्रतीक थे। उनके अनुवादो ने स्वच्छन्दतावाद का द्वार खोल दिया।

मौलिक साहित्य : छायावाद का पूर्व रूप

श्रीधर पाठक की मौलिक कृतियॉ इस प्रकार हैं– जगत–सचाई सार, कश्मीर सुषमा, भारतगीत, मनोविनोद, धन विजय, गुनवन्त हेमन्त, वनाष्टक, देहरादून, गोखले गुणाष्टक, गोखले प्रशस्ति, गोपिका गीत, स्वर्गीय वीणा, तिलस्माती सुन्दरी आदि।

श्रीधर पाठक की प्रथम मौलिक कृति 'जगत–सचाई सार' है। इसकी रचना सन् 1887 ई0 मे हुई थी। इसकी भावभूमि किंचित दार्शनिक है। यह इक्यावन पदो मे लिखी गयी लम्बी कविता है। इस रचना का माध्यम खडी बोली है और छन्द सधुक्कडी धुन के हैं। इस रचना के विषय मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है– '× × × × × सुथरे साइयो के सधुक्कडी ढग पर 'जगत–सचाई सार' जिसमे कहा गया है कि 'जगत है सच्चा, तनिक न कच्चा, समझो बच्चा ? इसका भेद।'[4]

श्रीधर पाठक की दूसरी प्रसिद्ध मौलिक रचना 'कश्मीर सुषमा' है। इसका प्रकाशन वर्ष 1904 ई0 मे हुआ था। इसमें प्रकृति निरीक्षण की एक नूतन दृष्टि का परिचय मिलता है। कवि ने प्रकृति को आलम्बन रूप में ग्रहण करके परम्परागत रूढ प्रकार के वर्णनो से आगे बढकर प्राकृतिक छटा का उन्मुक्त चित्रण किया है और प्रकृति जन्य आनद की मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

श्रीधर पाठक की तीसरी महत्वपूर्ण कृति 'भारत गीत' है। इसका प्रकाशन 1918 ई0 मे हुआ था। यह लोक प्रचलित धुनो मे गाये जाने योग्य फुटकल गीतो का सग्रह है।

श्रीधर पाठक प्राकृतिक सौन्दर्य, स्वदेश प्रेम तथा समाज सुधार की भावनाओ के कवि थे। छायावादी काव्य का पूर्व रूप उनकी रचनाओ मे देखा जा सकता है। प्रकृति–वर्णन मे उन्होने अपनी स्वच्छन्द प्रतिभा का परिचय दिया, जिसे रोमांटिक परम्परा के अन्तर्गत रखा जा सकता है। डॉ0 बच्चन सिह ने उनके प्रकृति चित्रण के सम्बन्ध में लिखा है–

'सबसे महत्वपूर्ण है पाठक जी का प्रकृति –प्रेम चित्रण। अभी तक सामान्यतः प्रकृति को उद्दीपन के कठघरे मे रखा जाता था, किन्तु पाठक जी उसे कठघरे से बाहर मैदान मे ले आये। दूसरे शब्दो में

प्रकृति को रीति के बधन से मुक्त कर स्वतन्त्र बनाया। प्रकृति का सापेक्षिक स्वतन्त्र वर्णन आगे चलकर छायावाद काव्य का एक वैशिष्ट्य माना गया।'[5]

श्रीधर पाठक से पूर्व भारतेन्दु और उनके सहयोगियो ने भी प्रकृति–वर्णन किया था, किन्तु उनके वर्णन परम्परागत रुढियों से आगे न बढ पाये और उनके काव्यो मे प्रकृति या तो अलकरण की वस्तु बनी रही या उद्दीपन की पृष्ठभूमि, श्रीधर पाठक ने प्रकृति को उसके समग्र–सुन्दर रूप मे वर्णन का मुख्य विषय बनाकर प्रस्तुत किया। 'कश्मीर–सुषमा' मे प्रकृति का एक चित्र देखने योग्य है–

'प्रकृति यहॉं एकान्त बैठि निज रूप सॅवारति,
पल–पल पलटति भेस छनकि छवि छिन छिन धारति।
विमल अम्बु–सर मुकुरन महॅं मुख बिम्ब निहारति,
अपनी छवि पर मोहि आप ही तन मन वारति।'

प्रकृति के स्वच्छन्दतावादी चित्रण के अतिरिक्त उन्होने अपनी कविता मे राष्ट्रवादिता का परिचय दिया। एक ओर तो उन्होने भारत की आरती उतारी, स्वदेश के गौरव का गान किया और दूसरी ओर विधवाओ की व्यथा एव शिक्षा–प्रसार जैसे सामाजिक विषय भी उनकी लेखनी के माध्यम बने।

श्रीधर पाठक ने अपनी काव्य–रचना के लिए ब्रजभाषा और खडीबोली दोनो का प्रयोग किया है। उनकी खडी बोली की कविताएॅं ऐतिहासिक महत्व की वस्तु हैं। उन कविताओ से आधुनिक हिन्दी कविता का शुभारम्भ मानना चाहिये। काव्य–भाषा के लिए खडीबोली का प्रयोग पहली बार मुक्त रूप से श्रीधर पाठक ने ही किया।

इस प्रकार अपनी अनूदित तथा मौलिक कृतियो द्वारा श्रीधर पाठक ने खडीबोली हिन्दी कविता का पथ निर्मित और प्रशस्त किया। उन्होने परम्परागत काव्य पद्धतियो को त्याग कर वैयक्तिक अनुभूतियो के आधार पर काव्य क्षेत्र मे नया प्रयोग करते हुये स्वच्छन्दतावादी पद्धति को जन्म दिया।[6] स्वच्छन्दतावाद के दर्शन उनकी रचनाओं मे पहली बार हुये। खडीबोली काव्य के साथ–साथ उन्होने छायावाद के लिए भी जमीन तैयार की।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

खड़ीबोली काव्य निर्माता कवि

प्रारंभिक स्वच्छन्दतावादी कवियो मे अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का महत्वपूर्ण स्थान है। खडीबोली को काव्य–भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले कवियो मे 'हरिऔध' का नाम आदर से लिया जाता है। आरम्भ मे उन्होने नाटक और उपन्यास लिखे, किन्तु उनकी प्रतिभा का विकास वस्तुत कवि–रूप मे हुआ। उन्हे खडीबोली के प्रथम महाकाव्य की रचना का श्रेय प्राप्त है। उनकी प्रमुख रचनाए इस प्रकार है–

प्रेम प्रपंच, प्रेमाम्बु प्रश्रवण, उद्‌बोधन, रसिक रहस्य, प्रेमाम्बु वारिधि, प्रेमाम्बु प्रवाह, प्रेम पुष्पहार, काव्योपवन, प्रिय प्रवास, कर्मवीर, ऋतु मुकुर, पद्‌म प्रसून, परम प्रमोद, चोखे चौपदे, वैदेही बनवास, चुभते चौपदे, रश कलश आदि।

'हरिऔध' ने पन्द्रह से ऊपर काव्य ग्रथों की रचना की है। कवि रूप में सर्वाधिक प्रसिद्धि उन्हे अपने प्रबंध काव्य 'प्रिय प्रवास' के कारण मिली।

प्रिय प्रवास : खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य

'प्रिय प्रवास' सत्रह सर्गो मे श्री हरिऔध द्वारा रचित खडी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इसका प्रकाशन 1914 ई0 मे हुआ। इसे कवि ने पहले 'ब्रजांगना विलाप' नाम दिया था, किन्तु बाद मे इसका नामकरण 'प्रिय प्रवास' किया। इसमे कृष्ण के अलौकिक चरित्र को लौकिक रूप मे चित्रित किया गया है। कवि ने कृष्ण सम्बन्धी चित्रण मे युगानुरूप परिवर्तन कर दिया है।

'प्रिय प्रवास' का आरम्भ प्रकृति वर्णन से होता है–

'दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी अवराजती,
कमलिनी कुल–वल्लभ की प्रभा।'[7]

इसी समय कृष्ण गोचारण के उपरान्त सखाओ सहित ब्रज में लौट आते हैं। द्वितीय सर्ग मे कृष्ण को कस के धनुष–यज्ञ में ले जाने के लिए अक्रूर के आगमन की सूचना दी जाती है। इस समाचार से ब्रजवासी दुखी और चिन्तित होते हैं। तृतीय सर्ग मे कृष्ण की विदाई का करुणापूर्ण वर्णन है। इसमे यशोदा का ममत्वमय वात्सल्य भी व्यजित हुआ है। कृष्ण के रथ के आगे प्रेम विह्वल नर–नारी लेटते जाते हैं। यशोदा की विकलता को देख कर तो

'रजनी भी करती अनुताप थी,
निपट नीरव ही मिस ओस के नयन से गिरता बहु वारि था।'

चतुर्थ सर्ग मे राधा–कृष्ण की बाललीला, राधा की दुर्वह वेदना और कृष्ण के वियोग मे पशु–पक्षियो तक का दुखी होना दिखाया गया है। राधा का विरह वर्णन मार्मिक बन पडा है–

'हृदय चरण मे तो बढा ही चुकी हूँ,
सविधि वरण की थी कामना और मेरी।
पर सफल हमे सो है न होती दिखाती,
वह कब टलता है भाल मे जो लिखा है।'

पॉचवे सर्ग मे बलराम और कृष्ण की सुधि लेने के लिए नन्द बाबा का मथुरा–गमन, ब्रजवासियो का करुण–क्रन्दन और यशोदा का शोकार्त स्वरूप सफलता पूर्वक अभिव्यजित हुआ है। छठे सर्ग मे कृष्ण के लौट आने के विषय मे ब्रजवासियो की पूर्ण उत्कन्ठा दिखाई गयी है। राही, बटोही और कौओ तक से पूछताछ की जाती है। यशोदा शोक–सिन्धु मे डूब जाती हैं। राधा के पास पवन दूत कृष्ण का संदेश लाता है। ब्रजवासी पेडो पर चढकर कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करते रहते हैं। राधा पवन को दूत बनाकर कृष्ण के पास अपना सदेश भेजती हैं। सातवे सर्ग मे नन्द श्रीकृष्ण को मथुरा मे छोडकर अकेले मर्माहत अवस्था मे लौटते हैं। उस समय यशोदा ने अतिशय करुण विलाप किया है–

'प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहॉ है,
दुख जलधि निमग्ना का सहारा कहॉ है।
अब तक जिसको मैं देख के जी सकी हूँ,

वह हृदय हमारा प्रेम तारा कहॉ है।'[8]

आठवे सर्ग में कृष्ण के लौटने की सूचना न मिलने पर यशोदा पुत्र–वियोग मे पागल सी हो उठती हैं। उन्हे नन्द बाबा कृष्ण की बाल लीलाओ का वर्णन करते हुए प्रकृतिस्थ करते हैं। परन्तु यशोदा के दुख, निराशा और प्रेम का आधिक्य उमडता रहता है। नवम सर्ग में कृष्ण को ब्रज का स्मरण आता है और वे उद्धव को ब्रज मे भेजते हैं। दसवे सर्ग मे ब्रजवासी जन उद्धव को घेरकर अपनी–अपनी व्यथा–कथा का वर्णन करते हैं। माता यशोदा उद्धव के सम्मुख कृष्ण की बाल–लीलाओ का वर्णन करती हैं। दसवॉ सर्ग उनके मातृत्व की व्यजना से आपूर्ण है। ग्यारहवे सर्ग मे उद्धव की ओर सकेत करके एक गोप कालीनाग के दलन तथा दावानल से गौ–गोपो की रक्षा का वृत्त सुनाता है। बारहवे सर्ग मे इन्द्र के कोप से वर्षा के समय कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण करने की कथा है। तेरहवे सर्ग मे कृष्ण का समाजसेवी रूप चित्रित हुआ है। चौदहवे सर्ग मे गोपिकाओ का विरह–निवेदन है। भ्रमरगीत की परम्परा का यहॉ निर्वाह दिखाई देता है। यही पर उद्धव–गोपी संवाद के रूप मे निर्गुण और सगुण ब्रह्म की बुद्धिवादी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। पन्द्रहवें सर्ग मे एक ब्रजबाला को पुष्पो के माध्यम से विरह–निवेदन करते हुये और व्यग्य उपालम्भ देते हुए तथा भ्रमर से वार्तालाप करते हुए छिपे–छिपे उद्धव देखते हैं। सोलहवे सर्ग मे उद्धव और राधा का संवाद है, जिसमे राधा का विश्व प्रेम, नवधा भक्ति, सत्यनिष्ठा, सगुण–निर्गुण का स्वरूप, कृष्ण के प्रति सन्देश और उद्धव का राधा की चरण–रज लेकर मथुरा लौटना वर्णित है। सत्रहवे सर्ग मे कृष्ण का जरासन्ध के अत्याचारो से द्वारिका वासियो को मुक्त कराने के लिए द्वारिका–गमन, दीन–हीनों की सेवा में राधा का समय–यापन, यशोदा का दुख और राधा द्वारा उन्हे धैर्य बॅधाना आदि चित्रित है। अन्त मे कवि का यह कथन है–

'सच्चे सनेही अवनिजन के देश के श्याम जैसे,
राधा जैसी सदय हृदया विश्व–प्रेमानुरक्ता।
हे विश्वात्मा, भरतभुव के अक मे और आवे,
ऐसी व्यापी विरह घटना किन्तु कोई न होवे।'

इस प्रकार सत्रह सर्गों मे रचित यह महाकाव्य कई वर्णनो से सज्जित है। इसमे श्रीकृष्ण, राधा, नन्द, यशोदा और उद्धव पॉच प्रमुख पात्र है तथा बाल–वृद्ध, गोप–गोपियॉ, कस आदि गौण रूप मे चित्रित है। कृष्ण के चरित्र मे मानवता के चरम विकास की झॉकी अकित की गयी है। कृष्ण कर्तव्य पालन मे अग्रणी और नेतृत्व करने मे पूरे कर्मवीर हैं। उनके जीवन का लक्ष्य है लोकहित। हरिऔध ने कृष्ण के रूप मे शक्ति, शील और सौन्दर्य से सम्पन्न, मानवतादर्श का प्रतीक और लोक–कल्याण की भावना से ओत–प्रोत व्यक्तित्व रचा है। राधा लोक–सेविका हैं। विरह–विदग्ध रूपो मे चित्रित कृष्ण की वह अनन्य उपासिका, ब्रज की आराध्य देवी हैं। हरिऔध ने राधा को मध्ययुगीन चहारदीवारी से निकालकर आधुनिक युग की सजग और लोकहित से समन्वित नारी के रूप मे गढा है। नन्द समष्टि–हित पर न्यौछावर होते रहे है। यशोदा वात्सल्य की साकार मूर्ति और ममता तथा करुणा की सजीव प्रतिमा हैं। उद्धव की सृष्टि लोक सेवा तथा त्याग, तपस्या और विश्व प्रेम का उपदेश देने के लिए की गयी है।

प्रकृति का चित्रण, आलम्बन, उद्‌दीपन, सवेदनात्मक, वातावरण–प्रधान, उपदेशात्मक, प्रतीकात्मक, अलकृत और दूत्यादूती के रूप मे हुआ है। यहॉ प्रकृति वर्णन मे नव्यता पायी जाती है।

प्रिय प्रवास मे युग–विशेष की परिस्थितियो, मान्यताओ और आन्दोलनो का समावेश किया गया है। विप्रलम्भ श्रृगार इसका प्रमुख रस है।

प्रिय प्रवास के सम्बन्ध मे डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है– 'न केवल यह आधुनिक काल का प्रथम महाकाव्य है वरन् इसमे एक नयी और आधुनिक दृष्टि का उपोद्‌घात मिलता है। मनुष्य और परमतत्व के बदलते हुए रिश्तो की समीक्षा के क्रम मे हमने लक्षित किया था कि आधुनिक काल मे मनुष्य सपूर्ण रचना और चितन के केन्द्र मे है। ईश्वर अब व्यक्तिगत आस्था का विषय है, चित्रण का नही। इस दृष्टिकोण की पहली सशक्त उद्‌घोषणा 'प्रियप्रवास' के रचना विधान मे तो मिलती ही है, कृति की लबी भूमिका में भी कवि ने इसका निर्भ्रान्त आख्यान किया है। 'ग्रथ का विषय' शीर्षक के अन्तर्गत हरिऔध लिखते हैं कि मैंने श्रीकृष्ण चन्द्र को इस ग्रंथ मे एक महापुरुष की भॉति अकित किया है, ब्रह्म करके नहीं। इस रूप में हिन्दी मानस अब विचार के साथ–साथ सस्कार मे भी आधुनिक ऐहिकता की ओर

अग्रसर दिखता है। पुराण–कथा के प्रति कवि की दृष्टि मे यह पहला महत्वपूर्ण परिवर्तन है, जिसका प्रभाव रचना के समूचे विधान मे परिलक्षित होता है। राधा अब 'प्रियप्रवास' सपूर्णत. विरहिणी ही नही है। वे अपने इस निजी दुख को सारे समाज के दुख मे विलीन कर देती हैं, और समाज–सेवा का व्रत लेती हैं। शताब्दियो से चले आ रहे राधा के चरित्र मे यह सर्वथा नई भगिमा हरिऔध ने उकेरी है।'[9]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रिय प्रवास मे प्रेम की अनेक अन्तर्दशाओ की व्यजना तो मानी, किन्तु कथा की क्षीणता या घटनाओ के अभाव के कारण महाकाव्य नही माना। उन्होने लिखा है– 'यह काव्य अधिकतर भाव व्यजनात्मक और वर्णनात्मक है। कृष्ण के चले जाने पर ब्रज की दशा का वर्णन बहुत अच्छा है। विरह वेदना से क्षुब्ध वचनावली प्रेम की अनेक अतर्दशाओ की व्यजना करती बहुत दूर तक चलती है। जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, इसकी कथावस्तु एक महाकाव्य क्या अच्छे प्रबध काव्य के लिए भी अपर्याप्त है। अत. प्रबध काव्य के सब अवयव इसमे कहॉ आ सकते हैं ? किसी के वियोग मे कैसी कैसी बाते मन मे उठती है और क्या क्या कहकर लोग रोते हैं, इसका जहॉ तक विस्तार हो सका है, किया गया है। परपरा पालन के लिए जो दृश्य वर्णन हैं वे किसी बगीचे मे लगे पेड पौधो के नाम गिनने के समान हैं।'[10]

आचार्य शुक्ल ने 'प्रिय प्रवास' मे लोक संग्रह, सस्कृत पद–विन्यास तथा सस्कृत वर्ण वृत्तो के प्रयोग की प्रशसा की है। उन्होने लिखा है– 'नव शिक्षितो के ससर्ग से उपाध्याय जी ने लोक सग्रह का भाव अधिक ग्रहण किया है। उक्त काव्य मे श्रीकृष्ण ब्रज के रक्षक नेता के रूप मे अकित किये गये है। खडीबोली मे इतना बडा काव्य अभी तक नही निकला है। बडी भारी विशेषता इस काव्य की यह है कि यह सारा सस्कृत के वर्ण वृत्तों मे है जिसमे अधिक परिमाण मे रचना करना कठिन काम है। उपाध्याय जी का सस्कृत पद–विन्यास अनेक उपसर्गों से लदा तथा 'मजु', मजुल, 'पेशल' आदि के बीच मे जटित अर्थात् चुना हुआ होता है। द्विवेदी जी और उनके अनुयायी कवि वर्ग की रचनाओ से उपाध्याय जी की रचना इस बात मे साफ अलग दिखाई पडती है।'[11]

प्रबन्ध काव्य–सम्बन्धी कुछ थोडी–सी रुढियो को छोड दिया जाय तो इस काव्य मे प्रबन्धत्व का दर्शन आसानी से किया जा सकता है। यह सच है कि ऊपर से देखने पर इसका कथानक प्रवास–प्रसंग

तक ही सीमित है, किन्तु हरिऔध ने अपने कल्पना–कौशल द्वारा इसी सीमित क्षेत्र मे श्रीकृष्ण के जीवन की व्यापक झॉकियॉ प्रस्तुत करने के अवसर ढूँढ निकाले हैं। इस काव्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसके नायक श्रीकृष्ण शुद्ध मानव रूप मे प्रस्तुत किये गये हैं वे लोक सरक्षण तथा विश्व कल्याण की भावना से परिपूर्ण मनुष्य अधिक है और अवतार अथवा ईश्वर नाम मात्र के।

'प्रिय प्रवास' के बाद की कृतियो मे 'चोखे चौपदे' तथा 'वैदेही बनवास' उल्लेखनीय है। 'चोखे चौपदे' लोक भाषा के प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। 'प्रिय प्रवास' की रचना सस्कृत की कोमलकात पदावली मे हुई है और उसमे तत्सम शब्दो का बाहुल्य है। 'चोखे चौपदे' मे मुहावरो के बाहुल्य तथा लोक भाषा के बाहुल्य द्वारा कवि ने यह सिद्ध किया कि वह अपनी सीधी–सादी जबान को भूले नही है। 'वैदेही वनवास' की रचना द्वारा एक और प्रबन्ध की सृष्टि का प्रयत्न किया गया है। आकार मे बडा होते हुए भी इसमे 'प्रियप्रवास' जैसी ताजगी और काव्यत्व का अभाव है। 'रस कलश' ब्रज भाषा मे रचित काव्य–सग्रह है। इसमे हरिऔध की आरभिक स्फुट कविताएँ सकलित है। ये कविताए श्रृगारिक है और काव्य–सिद्धात निरुपण की दृष्टि से लिखी गयी है।

अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध' खडी बोली काव्य के निर्माताओ मे आते है। इन्होने अपने कवि कर्म का शुभारम्भ ब्रज भाषा से किया। 'रस कलश' की कविताओ से पता चलता है कि इस भाषा पर इनका अधिकार था, किन्तु इन्होने समय की गति शीघ्र ही पहचान ली और खडी बोली मे काव्य–रचना करने लगे। काव्य–भाषा के रूप मे इन्होने खडीबोली का परिमार्जन और सस्कार किया। 'प्रिय प्रवास' की रचना करके इन्होने सस्कृत गर्भित कोमलकान्त पदावली– सयुक्त भाषा का अभिजात रूप प्रस्तुत किया। 'चोखे चौपदे' तथा 'चुभते चैपदे' द्वारा खडी बोली के मुहावरा सौन्दर्य एव उसके लौकिक स्वरूप की झॉकी प्रस्तुत की। छन्दों की दृष्टि से हरिऔध ने सस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू सभी प्रकार के छन्दो का धडल्ले से प्रयोग किया। हरिऔध प्रतिभा सम्पन्न मानवतावादी कवि थे। इन्होने 'प्रिय प्रवास' मे श्रीकृष्ण के जिस मानवीय रूप की प्रतिष्ठा की, उससे इनके आधुनिक दृष्टिकोण का पता चलता है।

रामनरेश त्रिपाठी

राष्ट्रीय भावनाओं के गायक कवि

प्रारभिक स्वच्छन्दतावादी कवियों मे रामनरेश त्रिपाठी का नाम महत्वपूर्ण है। वह स्वच्छन्दतावादी भावधारा के कवि के रूप मे प्रतिष्ठित है। श्रीधर पाठक ने जिस स्वच्छन्दतावाद को जन्म दिया था, रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी रचनाओ द्वारा उक्त परम्परा को विकसित किया और सम्पन्न बनाया। देश–प्रेम तथा राष्ट्रीयता की अनुभूतियाँ उनकी रचनाओ का मुख्य विषय रही हैं। हिन्दी कविता के मच पर वे राष्ट्रीय भावनाओ के गायक के रूप मे बहुत लोकप्रिय हुए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रामनरेश त्रिपाठी के बारे मे लिखा है–

'कार्य क्षेत्र मे जिस स्वाभाविक स्वच्छंदता (रोमैंटिसिज्म) का आभास प0 श्रीधर पाठक ने दिया था, उसके पथ पर चलने वाले द्वितीय उत्थान मे त्रिपाठी जी ही दिखाई पडे। 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न'' नामक इनके तीनो खण्ड काव्यो में इनकी कल्पना ऐसे मर्म पथ पर चलती है जिस पर मनुष्य मात्र का हृदय स्वभावत ढलता आया है। ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओ के भीतर न बँधकर अपनी भावना के अनुकूल स्वच्छद सचरण के लिए कवि ने नूतन कथाओ की उद्भावना की है। कल्पित आख्यानो की ओर यह विशेष झुकाव स्वच्छद मार्ग का अभिलाष सूचित करता है। इन प्रबधो मे नर जीवन जिन रूपो मे ढालकर सामने लाया गया है, वे मनुष्य मात्र का मर्मस्पर्श करने वाले है तथा प्रकृति के स्वच्छद और रमणीय प्रसार के बीच अवस्थित होने के कारण शेष सृष्टि से विच्छिन्न नही प्रतीत होते।'[12]

रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सृजित साहित्य वैविध्यपूर्ण है। उन्होंने काव्य, नाटक, कहानी, जीवनी, बाल साहित्य, आलोचना तथा कोश सभी क्षेत्रो मे अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ इस प्रकार है–मिलन, पथिक, मानसी, स्वप्न। 'मानसी' फुटकर कविताओ का सग्रह है और शेष तीनो कृतियाँ प्रेमाख्यानक खण्ड काव्य हैं।

मिलन–पथिक–स्वप्न : देशोद्धार का आह्वान

'मिलन' खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् 1917 ई0 मे हुआ। काव्य–सौन्दर्य की दृष्टि से यह लेखक की उत्कृष्टतम रचना है। कथावस्तु काल्पनिक है और पॉच सर्गो मे विभक्त है। सन् 1914 ई0 से 1918 ई0 तक हमारे देश पर भी प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव पडा था। सन् 1916 ई0 मे महात्मा गॉधी का देश की सक्रिय राजनीति मे प्रवेश, खिलाफत आन्दोलन और अग्रेजो से देश की आजादी की मॉग को जोरदार बनाने का प्रयास शुरू हुआ था। 'मिलन' इन्हीं प्रयासो का प्रतिरूप है

'पर–पद–दलित स्वदेश भूमि का
चलो करे उद्धार।'[13]

क्योकि

'किया जिन्होने स्वर्ण भूमि को कौडी का मुहताज।'[14]

उनको

'प्रतिफल देना उन्हें उचित है धर विकराल कृपाण।'[15]

यही सोचकर विजय, जो इस कथा का नायक है और जो अपनी प्रिया विजया के प्रेम बन्धन मे अभी तक बॅधा था, जनता को सगठित कर देश का उद्धार करने का निश्चय करता है–

'अस्थिचर्म–मय ककालो मे
जो कुछ बल है शेष,
सचय कर रिपु रहित करूॅगा
अपना प्यारा देश।'[16]

विजया पुरुष वेश मे विजय के साथ अपनी कुटीर को छोडकर नाव मे बैठ नदी पार करने जाती है, परन्तु तूफान मे नाव उलट जाती है और दोनो डूब जाते हैं। प्रथम सर्ग मे सयोग की वियोग में परिणति होती है–

'मुख चुम्बन कर देख एकटक
फिर दृग पट कर बन्द,

धारण कर प्रिय मूर्ति हृदय मे

पाकर परमानन्द।'[17]

सूर्योदय के प्रकृति–चित्रण से दूसरे सर्ग का आरम्भ होता है–

'गगन नीलिमा मे हीरे का तेजपुज अभिराम,

एक पुष्प आलोकित करता था जल–थल–नभ–धाम।

वरछी सी उसकी किरनो से खाकर गहरी चोट,

अन्धकार हो क्षीण छिपा था तरु–पत्तो की ओट।'

इस सर्ग मे विजया को एक मुनि द्वारा नदी से वेसुध दशा मे निकालना, उसकी मूर्च्छा का टूटना, उसका अपने प्रिय के वियोग में प्रलाप करना, प्रेम की महत्ता प्रकट करना, साधु का उसके पति की खोज मे जाना और पुन विजया द्वारा जल मे कूदकर प्राण देने का प्रयत्न करना और फिर बचकर जल से बाहर आना और आत्महत्या जैसे पाप के कारण मन मे विरक्ति पैदा होना एव पति के उद्‌देश्य को पूरा करने का उसका दृढ सकल्प दिखाया गया है। यह सर्ग मूलत वियोग श्रृगार के लिए द्रष्टव्य है–

'विजया हुई विरह से व्याकुल, श्रान्त, क्लान्त, उद्‌भ्रान्त।'[18]

× × × × ×

'प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशक अशोक,

ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है प्रेम हृदय आलोक'।[19]

प्रेम ही सुखी और स्वच्छन्द होता है। उससे सारी सृष्टि प्रेममय होती है–

'जन–जन मे प्रेमी को दिखती है प्रियतम की कान्ति,

इससे उसे लोक–सेवा मे मिलती है अति शान्ति।'[20]

वह सोचती है कि मरना ठीक नही है, प्रिय के अधूरे कार्य को पूरा करना उसका उद्‌देश्य हो जाता है–

'जिस प्रकार से अब स्वदेश का होगा पुनरूत्थान,

वही करूगी यत्न अहर्निश देकर तन–मन–प्रान।'[21]

तीसरे सर्ग मे साधु को जल मे बहती हुई युवक की देह मिल जाती है। विजय भी डूबने से बच जाती है। अपनी कुटी मे लाकर साधु उसका उपचार करता है। युवा शरीर को देखकर और उसके देशभक्ति के विचार से परिचित होकर उस साधु ने युवक को विजया का पता नही बताया। युवक ने अपने पिता, ग्राम आदि का पता दिया तथा अपने पिता के अन्यायी शासक से पीडित होने की बात कही। पिता ने उसे क्यो एक साधु को सौपा उसने यह भी बताया। उसने देशभक्त बनने की अपनी अन्तिम इच्छा जो पिता ने प्रकट की थी, बतायी। साधु की पुत्री के साथ अपने बचपन के सुन्दर दिनो का और उसके प्रणय और परिचय का रहस्योद्घाटन किया तथा अपना यह दृढ निश्चय दोहराया–

'जब तक देश स्वतंत्र न होगा मिटकर अत्याचार,
तब तक मैं सयमी रहूँगा ब्रह्मचर्य–व्रत धार'।[22]

मुनि ने उस युवक को सामाजिक तथा जातीय अवनति की अवस्था समझायी। उसने बताया कि देश मे दुख, रोग, भूख और कुतन्त्र फैला हुआ है। साधु युवक को बाधाओ मे भी बढते जाने का संदेश देता है। वह मानता है कि–

'जो रहती है जाति जगत मे मरने को तैयार,
वही अमरता का पाती है, ईश्वर से अधिकार।'[23]

वह साधु उस बलिष्ठ और सुन्दर युवक को देश–सेवा का मत्र देता है। यह कहकर वह बाहर चला जाता है कि वह ठीक समय पर लौटेगा।

चौथे सर्ग में घटना चक्र तेजी से घूमता है। विजया प्रेम मे पागल होकर अपने प्रिय को खोजती फिरती है। वह एक दिन गांव के एक किसान–परिवार को दीन दशा मे देखती है। वह किसान दरिद्र है। राज कर्मचारियो ने उसे झूठी गवाही देने से इन्कार करने पर सताया और उँसके अन्न, वस्त्र और बर्तन बिकवा दिये। ऐसे गरीब अधपेटे सोने वाले किसान की सेवा करने का व्रत लेकर विजया सच्चे सेवा धर्म के नाते गॉव –गॉव मे इन कंकाल रूप किसानों को जगाने लगी। ऐसे किसान लोक–सेवा के केन्द्र बन गये। वह सेवा व्रत लेकर गांवो मे गयी। उन्हीं गांवो मे वह युवक भी गया। देश प्रेम का ज्वार उठा। लोग देश को स्वतंत्र करने के लिए अपना बलिदान करने को तैयार हो गये। विजया का गीत स्वतंत्रता

का बीज मत्र बन गया। साधु ने भी युवक के पिता के मिलन नगर नामक गॉव मे व्याख्यान दिया। स्वतन्त्रता के लिए प्रजा को उत्सुक देखकर शासको ने बडे अत्याचार किये।

चारो तरफ विद्रोह फैल गया। युवक ने लोगो को लडने के लिए तैयार किया। जनता और शासको के बीच युद्ध छिड गया–

'बढे कुचलने को बैरी गण मानो मत्त पंतग,
झपटे लोग सिह सम, तब तो पलट गया सब ढग,
लोहू गर्म हुआ वीरो का धडक उठे सब अग।'[24]

× × × × ×

'धडक उठे सब सिहनाद से झपटे शस्त्र सँभाल,
टिक न सके बैरी कुछ पिछडे, सह आक्रमण कराल,
विजया भी भैरवी भेस में आयी धर करवाल।'[25]

युवक पर पडने वाले तलवार के वार को मुनि ने झेल लिया। युवक ने शत्रु का सिर काट लिया और –

'विजया ने दूसरी ओर से कर भैरव हुकार,
मार भगाया शत्रु वृन्द को करके कठिन प्रहार।'

देश स्वतत्र हुआ। मुनि युवक का पिता था, यह रहस्य स्वय मुनि ने अपनी मृत्यु से पूर्व उद्घाटित कर दिया।

पाचवे सर्ग मे विजया का युवक से पुनर्मिलन हुआ है। इस सर्ग मे केवल तीन छन्द है।

रामनरेश त्रिपाठी के दूसरे खण्ड काव्य 'पथिक' का प्रकाशन सन् 1920 ई0 मे हुआ। इस काव्य मे प्रकृति और प्रेम का मणिकांचन योग है। इसकी पृष्ठभूमि की कथा बडी रोचक है। त्रिपाठी जी ने लिखा है– '1920 में मैं रामेश्वरम की यात्रा पर गया हुआ था। वहाँ पहली बार समुद्र देखा, उसकी छवि देखकर आत्मविभोर हो उठा। मारे प्रसन्नता के दोनों पैर सागर के पानी में कर एक शिला पर बैठ गया और मुँह से अपने आप 'पथिक' का प्रथम पद निकरल गया है।'[26]

'पथिक' काव्य की कथा पांच सर्गों मे विभक्त है। कथा का आरभ सूर्योदय की अरूणिमा बेला से होता है। एक पथिक समुद्र तट पर प्रात काल की मनोहर छटा देख रहा है। एक स्वर्गीय किरण सी बाला जो उसकी पत्नी है, उसे इस प्रकृति –प्रणय की मूर्च्छा से जगाती है। वह उसे घर लौट चलने का आग्रह करती है और बच्चे की याद दिलाती है। परन्तु प्रकृति–सौन्दर्य के आनन्द में डूबा हुआ पथिक प्रलाप करने लगा। उसकी सुन्दर प्रिया पति–वियोग मे अपने प्राण देने के लिए समुद्र तट पर गयी थी, पर पति को देखकर वह खिल उठी। पथिक ने मनुष्य जगत के दुखो को गिनाकर लौट चलने मे अपनी अनिच्छा प्रकट की। इस मानवीय जगत से अधिक मोहक उसे अब प्रकृति प्रतीत हो रही थी। वह अपनी सुन्दर पत्नी को समुद्र तट पर ही छोडकर वन मे कही जाकर विलुप्त हो गया।

दूसरे सर्ग मे पथिक साधु द्वारा अपने देश और जाति की सेवा करते हुए लोक हित, विश्व कल्याण, देशभक्ति, जनसेवा और मानव सेवा की साधना के लिए प्रेरित किया गया। उद्बोधन के इन पदो मे मानवीय गुणों की महत्ता, देश एव जाति के प्रति व्यक्ति का कर्तव्य और त्यागमयी लोक–भावना की सुन्दर रूप रेखा खींची गयी है।

तीसरे सर्ग मे पथिक जब देश सेवा के लिए जाता है, तब वह समाज की दरिद्रता, किसानो की दुर्दशा, फूट, दम्भ, विश्वासघात, छल आदि का साम्राज्य देखता है। इसका कारण है, राजा की निरकुशता और दुर्नीति। प्रजा मे कुछ लोग सद्‌विचार वाले हैं, जो सत्यनिष्ठा, निर्भयता, साहस आदि उपदेश तो देते हैं, पर स्वय उसका पालन नही करते। कुछ ने तो देश भक्ति को जीविका का साधन बना रखा है। कुछ राजा से द्वेष रखने के कारण और कुछ स्वार्थवश प्रजा के साथ हैं। पथिक ने देश भर का भ्रमण किया। उसने प्रजा के कष्ट पहचाने। अपने देशानुराग और सहिष्णुता के कारण वह प्रजा का नेता बन गया। उस पथिक ने एक दिन राजा को प्रजा के कष्ट बताये और उन कष्टो के निवारण की याचना की। राजा ने उसे राजसभा से निकलवा दिया। कई बार के प्रयत्नो का भी कुछ फल नहीं निकला। तब पथिक ने प्रजा को राजा का साथ छोड़ने और उससे सभी प्रकार के सम्बन्ध तोड लेने का सन्देश दिया। इस सर्ग मे भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की 1920 ई0 के आस–पास की झॉकी साफ दिखाई देती है। निरकुश शासन के विरूद्ध जो आवाज तिलक और गॉधी ने उठायी थी और लाल–बाल–पाल ने जो मन्त्र फूॅका

था तथा असहयोग की जो रूप रेखा अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध निश्चित हुई थी, उसकी अभिव्यक्ति इस सर्ग मे देखी जा सकती है। प्रजा अपने देशसेवक पथिक को तन–मन से चाहती थी, पर पथिक के प्रति राजा का कोप बढ रहा था।

चौथे सर्ग मे कथावस्तु की चरमावस्था है। पथिक की प्रिया का विरह वर्णन, पथिक के वध की सूचना पाकर प्रिया का करागार मे जाना और पथिक के सामने रखे विष के कटोरे को उठाकर विषपान करना और अबोध बालक का अपनी माता के शव से दुलार की याचना करना, पथिक को तडपा–तडपा कर मारना, उसके पुत्र का वध होना, युवकों का विद्रोह करना, वधिको का घिराव होना, गॉधीवादी अहिंसक उपदेश के रूप में पथिक का सन्देश देना, नेता का लक्षण और साधु का आशीष, दीन–दरिद्रो मे ईश्वर की उपस्थिति का आभास होना और अन्त मे साधु का समाधि लेकर स्वर्ग सिधारना तथा पथिक का सुत और नारी सहित वध होना–ये सभी घटनाऍ चौथे सर्ग मे तेजी से घटित होती हैं।

पॉचवे सर्ग मे जनता की उदासी, विरक्ति और राजा से घृणा दिखाई गयी है। सारे देश मे स्तब्धता छा जाती है। राजा ने क्रोध मे आकर पथिक के घर को मटियामेट करने की आज्ञा दे दी थी। प्रजा का राजा के प्रति आक्रोश बढता गया। राज कर्मचारी, दास–दासी, सिपाही आदि सभी ने राजा का काम करना छोड दिया। उसे कोई पानी देने वाला भी न रहा। प्रजा की शक्ति को दिखाते हुए राज्य से राजा को निष्कासित किया गया। पथिक, साध्वी, सुत और साधु के वध–स्थल पर एक मदिर बनवाया गया। पथिक की प्रतिमा स्थापित की गयी। शेष बलिदानियो की प्रतिमाऍ भी उसी के पास बैठायी गयी। वहॉ मेला लगने लगा और लोग पथिक को 'पूज्य देश के पिता' के रूप मे प्रणाम करने लगे, क्योंकि–

'एक शुद्ध सच्चे प्रेमी ने आत्म शक्ति साधन से,
मुक्त कर दिया एक देश को नरक–तुल्य शासन से।'

'पथिक' की कथावस्तु सुश्रृखलित है। उसमें कहीं भी कोई बिखराव या ढीलापन नहीं दिखाई देता। यह सुविन्यस्त खण्ड काव्य है।

रामनरेश त्रिपाठी का तीसरा खण्ड काव्य 'स्वप्न' है। इसकी रचना उन्होने सन् 1928 ई0 में की थी। यह खण्ड काव्य उनकी उत्तरी यात्रा का स्मृति चिन्ह है।

'स्वप्न' खण्डकाव्य की कथा पॉच सर्गों मे सॅजोई गयी है। कथा का प्रारभ नायक वसन्त के दुविधामय चित्रण से होता है। उसको एक ओर तो देश के दुख–दैन्य का मानसिक कष्ट है और दूसरी ओर प्रेयसी सुमना का यौवनमय सौन्दर्य तथा प्रकृति की मनोरम छटा का आकर्षण है।

दूसरा सर्ग प्रकृति की सुखद गोद में बैठे बसन्त की मधुर कल्पनाओं से आरम्भ होता है। उसकी पत्नी सुमना उसकी मानसिक स्थिति को समझती है और कहती है कि चिन्ता करने से आयु क्षीण होती है और युवावस्था का रस शरीर रूपी तरकश से तीर की तरह निकल जाता है। अत- या तो गृहस्थ जीवन का सुख भोगो अथवा गृहस्थ जीवन को छोडकर ससार की सेवा में लग जाओ। पत्नी की बातो से वह बहुत प्रभावित होता है।

तीसरे सर्ग में कथा को गतिशील बनाया गया है। सुख–समृद्धि वाले बसन्त के देश पर शत्रु का आक्रमण होता है। देशवासी स्वदेश की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में भी बसन्त अपनी नायिका के केशपाश सुलझाने में व्यस्त है। पति की ऐसी स्थिति को देखकर सुमना का हृदय ग्लानि और लज्जा से भर जाता है और अपने को ही वह इस कायरता के लिये उत्तरदायी मानती है। एक रात्रि को पुरुष वेश मे वह घर से निकल जाती है।

चौथे सर्ग का आरम्भ विरही बसन्त की मार्मिक उक्तियो से होता है। वह वन की डगर–डगर पर सुमना को खोजता फिरता है। एक बलिष्ठ युवक आकर बसन्त से स्वदेश प्रेम की याचना करता है और उसे सूचित करता है कि देश की स्वतन्त्रता का यह अतिम युद्ध होगा। वह यह भी बतलाता है कि सुमना नाम की एक नारी भी इस पुनीत कार्य मे लगी है। बसन्त का खोया हुआ पौरुष जाग उठता है और वह युद्ध भूमि मे उतर जाता है।

पॉचवे सर्ग में बसन्त वीरो मे एक नयी स्फूर्ति लेकर आता है। परिणामत- उन्हे विजयश्री मिलती है बसन्त की कीर्ति का मंगलगान होता है और एक बड़े भारी उत्सव का आयोजन किया जाता है। उस उत्सव में बसंत की दृष्टि उस युवक को खोजती है जिसने उसे युद्ध भूमि मे लाकर खडा किया था और जो छाया की तरह युद्ध में उसके साथ रहा था। सुअवसर पाकर सुमना उसे विजयमाला अर्पित करती है

और धीरे से कान में कहती है कि जिस युवक को आप खोज रहे हैं वह मैं ही थी। इस प्रकार दोनो का मिलन होता है।

नवीन प्रवृत्तियों के प्रति आग्रह

रामनरेश त्रिपाठी ने अपने काव्य मे परम्पराओ के निर्वाह की अपेक्षा नवीन प्रवृत्तियो को अपनाने के प्रति अधिक आग्रह दिखाया है। उनमे इसी कारण मंगलाचरण का अभाव है। अपने काव्यों का प्रारभ उन्होने प्रकृति के मंगलमय उल्लासमय वातावरण के वर्णन से किया है। कथावस्तु के नियोजन में भी त्रिपाठी जी ने स्वतन्त्र मार्ग ग्रहण किया है। त्रिपाठी जी अपने समकालीनो से पृथक्, इतिहास से दूर, अपनी कल्पना के बल पर कथावस्तु का निर्माण कर उसमें समय की गतिविधियो को समेटने का प्रयत्न कर रहे थे। कल्पना–प्रसूत कथा में कवि को अपना मन्तव्य स्पष्ट करने में अधिक स्वतन्त्रता एव सुविधा रहती है। खण्ड काव्य की कथा का इतिहास सम्मत होना अनिवार्य नहीं है, आवश्यकता इस बात की रहती है कि कथावस्तु निरुद्देश्य कल्पना के लोक में विचरण करने वाली न होकर यथार्थता से संपृक्त हो।

त्रिपाठी जी ने अपने काव्यो के लिए रुचिकर कथाओं का ही चयन किया है। उनकी पृष्ठभूमि तथा वातावरण, औत्सुक्य और जिज्ञासा का सृजन करते हैं। उसमें एकान्विति का सूत्र विद्यमान रहता है। कथावस्तु मे जीवन का जो पक्ष अपनाया गया है, उसका निर्वाह कवि ने बडे कौशल से किया है। प्रेम की पीठिका देकर राष्ट्रीय चेतना का जो मार्मिक उद्घाटन किया गया है, वह मानवीय आदर्शों को समेटकर मर्म को स्पर्श करने वाला बन जाता है। तीनों खण्ड काव्यों की मूलभूत चेतना यही है। प्रथम प्रेम का वासनामय आकर्षण, नायक की द्विधा, नायिका द्वारा वासना का परिष्कार और अन्त मे मातृभूमि के लिए सर्वस्व त्याग– यही मूल भावसूत्र तीनों खण्ड काव्यों में दृष्टिगत होता है। अवान्तर कथाओ का नितान्त अभाव है, इसलिए कथावस्तु का प्रवाह अवाध गति से अपने लक्ष्य की ओर बढता दिखाई पडता है।

त्रिपाठी जी ने अपने काव्यों में सीमित पात्रों का प्रयोग किया है। गिने–चुने पात्रो के माध्यम से कवि अपने उद्देश्य को भली प्रकार स्पष्ट करने में सफल हुआ है। इसमें कथा सूत्र की निरन्तरता की रक्षा भी हुई है। मुख्य रूप से नायक और नायिका दो ही पात्र अपनाये गये हैं। काव्य की सारी गतिविधि

इन्हीं दो बिन्दुओ पर केन्द्रीभूत है। एक–दो अन्य पात्र केवल उन्हे प्रेरणा देने के लिए अथवा कथा–विकास के लिए ही काव्य–मच पर आते दिखाई पडते हैं। 'मिलन' में सन्यासी की उपस्थिति इसी प्रयोजन के लिए है। पात्रो का चरित्र–चित्रण स्वाभाविक भूमिका पर हुआ है। साधारण मानवीय धरातल से उठकर आदर्श के आसन पर उनका प्रतिष्ठापन आकस्मिक एव अस्वाभाविक न होकर मनोवृत्तियो के अनुकूल सहज और नैसर्गिक है। नायक प्रथम एक साधारण मनुष्य ही है। युवावस्था के प्रेममय स्वप्न और राष्ट्रीय हीन दशा–जनित सेवा का अदम्य उत्साह–यह द्विधा त्रिपाठी जी के नायकों का प्रमुख गुण है। उनका प्रेम पथ पर अग्रसर होना मनोवैज्ञानिक है, किन्तु उद्‌बोधन द्वारा राष्ट्रीय चेतना का जागरण कर देश के लिए सर्वस्व उत्सर्ग करने का प्रबल उत्साह, उनके जीवन का प्रमुख आधार एव चरित्र का पुष्टतम अग बन जाना भी कम मनोवैज्ञानिक नहीं है। अन्त मे पहुँचते–पहुँचते वे धीरोदात्त नायक की स्थिति ग्रहण कर लेते हैं और परम्परित काव्य–नियमों के अधीन नायक के महत्व और गौरव की सिद्धि का पालन स्वयमेव हो जाता है। प्रेमी, किन्तु सयमी आनन्द कुमार, सहनशील और त्याग पुज स्वरूप पथिक और रोमाटिक, किन्तु सद्‌वृत्तिमय बसत के चरित्र–चित्रण बडे उज्ज्वल एव मनोवैज्ञानिक बन पडे हैं। उनके बाह्य व्यक्तित्व का अकन भी कवि ने किसी महापुरुष की आभा युक्त गौरव शालिनी शक्ति–सम्पन्न रुपरेखा से कम सुन्दर नहीं किया। संन्यासी के शब्दों में आनन्द कुमार के व्यक्तित्व की पराकाष्ठा द्रष्टव्य है–

'सिकुडन रहित ललाट ललित अति,
उन्नत कला विधान।
पौरुष पूर्ण विशद वक्षस्थल,
वृषभ–कन्ध बलवान।
परिध समान प्रलम्ब युगल भुज,
पृथुल कठिन भुजदण्ड।
अंग–अग से छलक रही थी।
शोभा शक्ति प्रचण्ड।'[27]

नायिकाओं का चरित्र–चित्रण भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनका गौरव भी नायक के समान ही है। कहीं–कहीं तो उनके चरित्र की रेखाएँ नायकों से अधिक उज्ज्वल हो उठी हैं। 'स्वप्न' में बसन्त का चरित्र उतना सम्पन्न नहीं जितना सुमना का। भटके हुए पति को सन्मार्ग पर अग्रसर करना उसका ही काम है। देश प्रेम का पारावार उसके मन मे हिलोरे ले रहा है। घर बैठे पति की कायरता पर उसे खेद है। सुमना पति को चेताती है–

'तुम हो वीर पिता–माता के,
वीर पुत्र मेरे जीवन–धन।
तुम से आशायें कितनी हैं,
जन्म भूमि की हे अरिमर्दन।

× × × × ×

शस्त्र ग्रहण कर रण मे जाकर,
विजय प्राप्त कर वीर अरिन्दम।'[28]

कवि का चरित्र–चित्रण सफल बन पडा है। पात्रों की चरित्र–रेखायें अपने इगित मात्र से उसके गौरव और आदर्श को झलका देने मे समर्थ हैं। चित्रण–कौशल विस्तृत भूमिका पर न होकर उसका महत्व अपनी सीमा में साकेतिक किन्तु सुस्पष्ट होने में निहित है। इने–गिने पात्रो के जीवन की रेखाएं एक बिन्दु से उद्भासित होकर वातावरण को ज्योतिर्मयी करती हुई आदर्श के क्षितिज पर विश्राम पाती हैं। प्रेम–स्वरूपिणी विजया देश प्रेम से परिपूर्ण सुमना और पति भक्त पथिक–पत्नी के चरित्र अपने आप मे पूर्ण स्पष्ट एवं आदर्श की ज्योति से दैदीप्यमान हैं।

त्रिपाठी जी के काव्य के रति, उत्साह और शोक तीन मूल भाव है। विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन कवि ने संयोग श्रृगार की अपेक्षा अधिक किया है। हिन्दी काव्य मे विरहिणी नारियो की अन्तर्दशाओ का चित्रण पर्याप्त हुआ है, किन्तु विरही पुरुषों की दशा की अभिव्यक्ति का अभाव है। ऐसा लगता है कि मानो कवियों ने यह मान लिया हो कि विरह का दुख स्त्रियो को ही होना चाहिये, पुरुषो को नहीं, पुरुष तो विरह वेदना का कारण मात्र बन सकते हैं, सभवतः यह कल्पना इसलिए की गयी हो कि नारी

कोमल–हृदय होती है और पुरुष का हृदय तनिक कठोर होता है। पुरुष हृदय कठोर अवश्य होता है पर उसको पत्थर तो नही माना जा सकता, अतएव प्रिय वियोग का विरह उसके हृदय मे अवश्य होता है। त्रिपाठी जी ने इस तथ्य को स्वीकार कर अपने 'स्वप्न' काव्य मे विरही बसन्त के हृदय का भी चित्रण किया है। अपनी पत्नी के वियोग मे वह चीत्कार उठता है–

'प्रेम–पद्मिनी! प्रेमलता हे! प्राण–बल्लभे! हे प्राणेश्वरि!
मेरी प्रिय पद्मिनी, कहॉ हो ? हे मेरे जीवन की सहचरि!'[29]

कवि का प्रतिपाद्य राष्ट्रीयता है। अत काव्य मे रति के पश्चात् प्रधानभाव उत्साह है। त्रिपाठी जी की नायिकाऍ एव नायक देश की विपन्नता पर ऑसू नही बहाते वरन् इससे उनकी उत्साह भावना को और बल मिलता है और वे जन–सगठन के कार्य मे जुट जाते है–

'देखा उसने उसी भॉति के अगणित नर ककाल,
चिपके पेट रीढ के जिनके चुचके–पुचके जाल।
विजया ने प्रकिया सुदृढ होकर प्रयत्न भरपूर,
तन–मन से इस दीन देश का कष्ट करुँगी दूर।'[30]

यहॉ देश की कारुणिक अवस्था पर आधारित उत्साह व्यर्थ नहीं है। फिर भी अपने देशवासियो के दुख से दुखी होकर रोना जितना स्वाभाविक है, उतना गर्जना नहीं। इसीलिए वीर भावना पूर्णत. उद्दीप्त नहीं होती।

त्रिपाठी जी के काव्य मे शोक भाव की अभिव्यक्ति सशक्त बन पडी है। शोक भाव कविता मे मुख्यतया दो रूपो मे आता है। प्रथम, अपनी विपत्ति अथवा कष्ट से। इस प्रकार के वर्णन का त्रिपाठी जी के काव्य मे पूर्णतया अभाव है। दूसरे, प्रिय वस्तु अथवा इष्ट जन के विनाश से। पथिक का अन्त भी बडा दुखद है। यहॉ शोक भाव के दर्शन होते हैं। पथिक की मृत्यु पर देश में करुणा का सागर बहता है–

'रोये वृद्ध कहॉ है जीवन का अनमोल सहारा,
रोकर गिरे अचेत युवक, है साथी कहॉ हमारा।
कलप उठे आबाल हमारा रक्षक मित्र कहॉ हैं ?

रोये दीन किसान हमारा पुण्य पवित्र कहाँ है ?

× × × × ×

लेकर नाम पथिक का प्यारा देश रो उठा सारा।'[31]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि इन काव्यों मे जीवन का जो पक्ष अपनाया गया है, उसकी व्याख्या अपने आप मे पूर्ण है। प्रेम और राष्ट्रीय भावना को प्रकृति की पृष्ठभूमि देकर मानवीय आदर्शों के सॉचे मे उज्ज्वल रूप दिया गया है। अवान्तर प्रसंगो के सर्वथा निषेध के कारण कथा की एकान्विति में कोई बाधा नहीं है। कथावस्तु के बीच–बीच मे आने वाले वर्णन कथातन्तु को क्षण भर के लिए पाठक की ऑखो से ओझल कर देते हैं, किन्तु खण्डकाव्यत्व की दृष्टि से वे अनिवार्य जान पडते हैं। मन मे उठने वाले बवडर के प्रभाव–युक्त चित्रण के लिए विषद व्याख्या की योजना साभिप्राय प्रतीत होती है।

त्रिपाठी जी के तीनो खण्ड काव्यो की मूलभूत चेतना एक ही है। कवि एक ही लक्ष्य की सिद्धि के लिए तीन विभिन्न मार्ग ग्रहण करता है।

श्रीधर पाठक ने जिस स्वच्छन्दतावाद का मार्ग सुझाया, उस पर चलने वाले कवियो मे रामनरेश त्रिपाठी महत्वपूर्ण हैं। कई स्थलो पर त्रिपाठी जी पर श्रीधर पाठक का प्रभाव पडा है। 'जगत सचाई सार' मे कर्म का महत्व 'स्वप्न' मे मुनि के कर्म पथ के उपदेश के समान विचारणीय है। श्रीधर पाठक मे भाषा की सरलता तथा अभिव्यक्ति की अभिधामय स्पष्टता है, जबकि त्रिपाठी जी मे अप्रस्तुत विधान द्वारा तथा भाषा के सुन्दर प्रयोग द्वारा अभिव्यक्ति का सौष्ठव अपूर्व बन पडा है। श्रीधर पाठक जिस स्वच्छन्दवादिता की शुरुआत अनूदित काव्यो के सहारे करते हैं, त्रिपाठी जी उस स्वच्छवादिता को मौलिक काव्यो के सहारे प्रतिष्ठित करते हैं। इस रूप मे स्वच्छन्दतावादी काव्य के विकास मे रामनरेश त्रिपाठी का महत्वपूर्ण स्थान है।

मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि

प्रारभिक स्वच्छन्दतावादी कवियो मे मैथिलीशरण गुप्त का प्रमुख स्थान है। गुप्त जी मे राष्ट्रीय स्वर प्रधान था। उन्होने अपने समसामयिक नैतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय आकाक्षाओ को वाणी देकर खडीबोली को युगीन चेतना से जोडा। इसी अर्थ मे वे राष्ट्रकवि है।

गुप्त जी जिस राष्ट्रीय चेतना को लेकर काव्य–क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए, उसमे पुराने मूल्यो मे अटूट आस्था होने के बावजूद वर्तमान की समस्याओ के प्रति पूर्ण जागरूकता थी।

गुप्त जी के प्रमुख काव्य–ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

रग में भंग, जयद्रथ वध, भारत भारती, पचवटी, झकार, साकेत, यशोधरा, द्वापर, जय भारत, विष्णु प्रिया (मौलिक)।

प्लासी का युद्ध, मेघनाद वध (अनूदित)।

भारत भारती : राष्ट्रीय चेतना का उद्‌बोध

गुप्त जी का पहला महत्वपूर्ण काव्य 'भारत भारती' है। इसका प्रकाशन 1913 ई0 में हुआ। हिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्र में इतने व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय सास्कृतिक चेतना जगाने का जो काम अकेले 'भारत भारती' ने किया, उतना अन्य पुस्तको ने मिलकर भी नही किया।[32] एक समय था जब 'भारत–भारती' के पद्य प्रत्येक हिन्दी भाषी के कन्ठ पर थे। गुप्त जी का प्रिय हरिगीतिका छन्द इस कृति मे प्रयुक्त हुआ है। भारतीयो में राष्ट्रीय चेतना की जागृति मे इस पुस्तक का बहुत बडा हाथ रहा है। यह काव्य तीन खण्डों मे विभक्त है– 1–अतीत खण्ड, 2–वर्तमान खण्ड, 3–भविष्यत् खण्ड।

अतीत खण्ड मे भारत वर्ष के प्राचीन गौरव का बडे मनोयोग से बखान किया गया है। भरतीयो की वीरता, आदर्श विद्या–बुद्धि, कला–कौशल, सभ्यता–सस्कृति, साहित्य–दर्शन, स्त्री–पुरुषो आदि का गुणगान किया गया है। वर्तमान खण्ड में भारत की वर्तमान अधोगति का चित्रण है। इस खण्ड मे कवि ने साहित्य, संगीत, धर्म, दर्शन आदि के क्षेत्र मे होने वाली अवनति, रईसो और उनके सपूतो के कारनामें,

तीर्थ तथा मंदिरों की दुर्गति तथा स्त्रियो की दुर्दशा आदि का अकन किया है। भविष्यत् खण्ड मे भारतीयो को उद्बोधित किया गया है तथा देश के मगल की कामना की गयी है।

काव्य की दृष्टि से 'भारत–भारती' उच्च कोटि की कृति नहीं है, परन्तु रमणीयता का एकदम अभाव भी नहीं है–भारतीयो की अवनति एव हीनता का करुण चित्रण अत्यधिक प्रभावक्षम है। लाक्षणिक प्रयोग यद्यपि कम हैं, प्राय अभिधा का ही आश्रय लिया गया है, किन्तु शैली का प्रवाह एवं भाषगत ओज प्रस्तुत काव्य को दीप्ति प्रदान करते हैं और भावनाओ को उद्वेलित करने की अद्भुत शक्ति तो इसमे है ही। इसीलिए स्वतन्त्रता के पुजारी देश–सेवक इसका गान करते हुए सत्याग्रह–आन्दोलनो मे भाग लेते थे।

गुप्त जी के दूसरे प्रसिद्ध काव्य 'जयद्रथ वध' की रचना 'भारत भारती' से पहले हुई थी। हरिगीतिका छन्द में रचित यह एक खण्ड काव्य है। कथा का आधार महाभारत है। एक दिन युद्ध–निरत अर्जुन के दूर निकल जाने पर द्रोणाचार्यकृत चक्रव्यूह–भेदन के निमित्त शस्त्रास्त्र–सज्जित अभिमन्यु उसमे प्रविष्ट हुआ। अप्रतिम वीर अभिमन्यु के समक्ष एकाकी ठहर सकने मे असमर्थ योद्धाओ मे से सात रथियो ने षड्यन्त्र द्वारा उसकी हत्या की। इसमे जयद्रथ का विशेष हाथ था। अत अर्जुन ने अगले दिन सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ का वध न कर सकने पर स्वय चिता मे जल मरने की प्रतिज्ञा की। आचार्य विरचित चक्रव्यूह में रक्षित जयद्रथ का वध कौन्तेय सूर्यास्त तक न कर सके। फलत अर्जुन स्वय जल मरने को तैयार हुए। अपने शत्रु को जलता हुआ देखने के लिए जयद्रथ सामने आ गया। तब श्रीकृष्ण ने 'अस्ताचल के निकट घन–मुक्त मार्तण्ड' के दर्शन करा अर्जुन को शर–सधान का आदेश दिया। जयद्रथ अर्जुन द्वारा मारा गया।

काव्य की दृष्टि से जयद्रथ वध गुप्त जी की आरभिक रचनाओं मे है। खडीबोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से इस काव्य का महत्व है।

साकेत : नारी चरित्र की महान व्याख्या

गुप्त जी की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'साकेत' महाकाव्य है। सन् 1913–14 ई0 से इसकी रचना आरंभ की गयी थी, किन्तु पुस्तकाकार रूप में यह रचना 1931 ई0 में प्रकाशित हुई। इसमे बारह सर्ग हैं।

'साकेत' का प्रणयन मूलत उर्मिला के चरित्र को प्रकाश मे लाने के लिए किया गया था। 'साकेत' के नायक लक्ष्मण तथा नायिका उर्मिला हैं। प्रथम सर्ग मे सरस्वती वन्दना से समारम्भ करके साकेत नगरी का वर्णन और लक्ष्मण–उर्मिला के प्रेमालाप तथा वाग्विनोद का चित्रण हुआ है। सर्गान्त मे राम के राज्याभिषेक की सूचना दी गयी है। उर्मिला का राम के अभिषेक–चित्र को अंकित करना, लक्ष्मण का चित्र बनाते–बनाते उर्मिला को आलिंगनपाश मे बॉधना वर्णित हुआ है। उर्मिला का सौन्दर्य वर्णन करते हुए कवि का कथन है–

'स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,
नाम है इसका उचित ही उर्मिला।
शील सौरभ की तरंगे आ रहीं,
दिव्य भाव भवाब्धि मे हैं ला रही।
सौंध सिह द्वार पर अब भी वही,
बॉसुरी रस–रागिनी मे बज रही।
अनुकरण करता उसी का कीर है,
पजर स्थित जो सुरम्य शरीर है।'[33]

द्वितीय सर्ग में मथरा–कैकेयी का वर्णन हुआ है। मथरा ने राम के अभिषेक को एक सुनियोजित षड्यन्त्र कहा है– 'नहीं तो यह सीधा षड्यन्त्र रचा क्यों जाता यहॉ स्वतन्त्र ?' और यह व्यंग्य किया है–

'शेष है अब भी क्या कुछ हाल ?
सरलता भी ऐसी है व्यर्थ,
समझ जो सके न अर्थानर्थ।
भरत को करके घर से त्याज्य,
राम को देते है नृप राज्य।
भरत–से सुत पर भी संदेह
बुलाया तक न उन्हे जो गेह।'[34]

मथरा का वचन कैकेयी के मर्मस्थल को बेध गया। कैकेयी ने क्रोधावेश मे दशरथ को वर देने के लिए विवश किया और राम के लिए वनवास तथा भरत के लिए राज्य मॉग लिया। राजा दशरथ ने वर तो दे दिया, परन्तु तब– 'रहे बस अर्ध जीवित, अर्धमृत से वे।'

तीसरे सर्ग मे राम और लक्ष्मण कैकेयी के महल मे बुलाये जाते हैं। दशरथ अर्ध चेतनावस्था मे कहते हैं कि 'विश्वास ने मुझको ठगाया।' कैकेयी को वे क्रोध मे कहते हैं कि 'मरूँगा मै तथा पछताएगी तू। दशरथ की मूर्च्छा, लक्ष्मण का क्रोध और वन गमन की तैयारी का भी इसी सर्ग मे वर्णन हुआ है। चतुर्थ सर्ग मे कौशल्या को वनगमन का समाचार मिलता है। कौशल्या दुखी होकर कहती है कि– 'मुझे राम की भीख मिले।' सुमित्रा द्वारा क्षत्राणियो के अनुरूप अन्याय न सहने की गर्जना, कौशल्या द्वारा राम को वन जाने की अनुमति, सीता की राम के साथ वन जाने की तैयारी, उर्मिला को अयोध्या मे छोड जाने का लक्ष्मण का सकल्प, सीता का वल्कल–वस्त्र–ग्रहण, उर्मिला की मूर्च्छा और राम, लक्ष्मण तथा सीता के वनवास हेतु विदा होने का वर्णन चौथे सर्ग मे हुआ है।

पॉचवे सर्ग में वन मार्ग मे ग्रामीण नर–नारी से भेट, प्रजा का विलाप, रथ के आगे लेट जाने वाले प्रजाजन, राम का जन्मभूमि को प्रणाम, तमसा और गोमती पार कर निषादराज से मिलन, गगा पार पहुँच कर भरद्वाज मुनि के आश्रम मे प्रवेश तथा चित्रकूट–पवास आदि प्रसगों का वर्णन हुआ है।

छठवे सर्ग में उर्मिला की मूर्च्छा, कौशल्या द्वारा दशरथ को समझाने का प्रयास, सुमन्त्र का अकेले लौटना, दशरथ मरण और भरत को लाने के लिए दूतो को भेजा जाना निरुपित हुआ है। दशरथ के अंतिम उद्‌गार अत्यन्त मार्मिक हैं–

'मेरे कर युग हैं टूट चुके,
कटि टूट चुकी, सुख छूट चुके।
ऑखो की पुतली निकल पडी,
वह यहीं कहीं है विकल पडी।
खाकर भी बार–बार झटके–
क्यों प्राण अभी तक हैं अटके ?

हे जीव चलो अब दिन बीते,

हा राम, राम, लक्ष्मण, सीते।'[35]

सातवे सर्ग मे भरत–शत्रुघ्न का आगमन, भरत की ग्लानि और दुख, शत्रुघ्न का क्रोध, कौशल्या के पास जाकर दुखी भरत का कथन कि 'आ गया मैं गृह कलह का मूल, दण्ड दो, वह दो पदो की धूल', कौशल्या द्वारा भरत को धैर्य बॅधाना, दशरथ का दाह–संस्कार घटनात्मक पद्धति मे वर्णित है।

आठवे सर्ग मे भरत का चित्रकूट आगमन, कैकेयी का राम को लौट चलने का आग्रह तथा भरत को गले लगाकर यह कहना–

'उसके आशय की थाह मिलेगी किसको,

जनकर जननी भी जान न पायी जिसको।'

कैकेयी की शोक–सतप्त वाणी का हृदय को चीर देने वाला प्रसग आता है–

'यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को,

× × × × ×

यह सच है तो अब लौट चलो तुम भैया,

अपराधिन मैं हूँ तात तुम्हारी मैया,

यदि मैं उकसाई गयी भरत से होऊँ,

तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।

× × × × ×

युग–युग तक चलती रहे कठोर कहानी,

रघुकुल मे थी एक अभागी रानी,

निज जन्म जन्म मे सुने जीव यह मेरा,

धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।'[36]

अन्त मे, भरत राम की चरण पादुका प्राप्त करने मे सफल होते हैं। यही पर लक्ष्मण का क्षीणकाया उर्मिला–रेखा से मिलन होता है और उर्मिला कहती है कि–

'मेरे उपवन के हरिण आज वनचारी,
मैं बॉध न लूँगी तुम्हे तजो भय भारी।
गिर पडे दौड सौमित्र प्रिया–पद–तल मे,
वह भीग उठी प्रिय–चरण धरे दृग–जल मे।'[37]

नवम् सर्ग मे उर्मिला–वियोग प्रगीत और मुक्तक शैली मे वर्णित है। दसवे सर्ग मे उर्मिला की बाल्यकाल की स्मृतियॉ, जनक गृह मे सीता और उर्मिला की झाकियॉ और उर्मिला का विरह–वर्णन अभिव्यजित है।

ग्यारहवे सर्ग मे अयोध्या के बाहर भरत की कुटी, उनकी तपस्या, माण्डवी और उर्मिला के दुख, राम के चित्रकूट प्रस्थान से लेकर सूर्पणखा के नाक–कान काटे जाने और खर–दूषण वध तक की घटनाओ की सूचना आदि का वर्णन है। भरत द्वारा सजीवनी प्राप्ति हेतु आकाश–मार्ग से जाते हुए हनुमान को बाण मारकर नीचे उतारना, सजीवनी देना और हनुमान से सीता हरण, जटायु सस्कार, कबन्धासुर का वध, शबरी का आतिथ्य, सुग्रीव–मिलन, बालि–बध, अशोक वाटिका मे सीता के दर्शन, लका–दहन, विभीषण की शरणागति, राम–रावण का युद्ध, कुम्भकर्ण वध और लक्ष्मण को शक्ति लगने तक का विवरण दिया गया है। अन्त मे हनुमान सजीवनी लेकर आकाश मार्ग से लका लौट जाते है।

द्वादश सर्ग में भरत–शत्रुघ्न युद्ध स्थल मे लका की ओर प्रस्थान की तैयारी करते हैं। उर्मिला भी जाना चाहती है, परन्तु वशिष्ठ द्वारा सबको शान्त कर मन्त्र बल से लका का युद्ध देखने की दिव्य दृष्टि दे दी जाती है। लक्ष्मण की मूर्च्छा टूटना, पुन युद्ध, मेघनाद वध और अन्त मे रावण का वध होता है। राम का अयोध्या लौटना, उर्मिला की प्रसन्नता और लक्ष्मण उर्मिला का मिलन इसी सर्ग का वर्ण्य विषय है।

साकेत की कथावस्तु का कोमल ताना–बाना प्रधान पात्र उर्मिला को सम्बद्ध करते हुए और सभी घटनाओं को साकेत मे केन्द्रित करते हुए बुना गया है। 'राम का चरित' इस प्रबन्ध काव्य का आधार

फलक है। इसकी नव्यता यह है कि यह राम और सीता के स्थान पर परम्परा से हटकर उर्मिला और लक्ष्मण की प्रेम कथा है। नारी के चरित्र की महान व्याख्या करना साकेत का लक्ष्य रहा है।

'साकेत' एक कलात्मक कृति है। इसमे कवि ने व्याकरण सम्मत एवं सस्कृत की तत्सम–शब्द–प्रधान विशुद्ध खडीबोली का प्रयोग किया है। 'साकेत' मे मैथिलीशरण गुप्त की खडीबोली काव्योपयुक्तता एव लोकप्रियता के सोपान पर चढती हुई दिखाई देती है। 'साकेत' खडीबोली का समर्थ एवं मौलिक महाकाव्य है, जो भाषिक उत्कर्ष की महत्ता प्रतिपादित करने में कदापि पीछे नहीं है, क्योकि इसमे भाषा की शुद्धि एव शक्ति समाविष्ट है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है– 'साकेत की खडीबोली अधिक स्वतन्त्र है। उस पर सस्कृत का अनावश्यक भार नही है और न ही इसके छन्दो और समास आदि मे सस्कृत की पद्धति स्वीकार की गयी है। × × × × × साकेत के भाषोत्कर्ष पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि साकेत ने आशा और विश्वास के साथ खडीबोली के उस महत्वपूर्ण अध्याय की सुखान्त समाप्ति कर दी, जिसे अनेक व्यक्ति अनिश्चितता, आशका, निराशा, अविश्वास तथा साथ ही हर्ष एव विश्वास के साथ देख रहे थे।'[38]

खडीबोली को काव्य भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित करने के पीछे मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय भावना थी। उनकी कविता का मूल स्वर राष्ट्रीय एव सास्कृतिक है। उन्होने प्राचीन भारत का गौरव गान अत्यन्त ओजस्वी वाणी मे किया तथा उसे आधुनिक सदर्भों से जोडा। उनके काव्यो मे मानवता की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है।

सन्दर्भ

1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–410

2 पूनम चन्द्र तिवारी – द्विवेदी युगीन काव्य, पृष्ठ–247

3 वही, पृष्ठ–248

4 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ –410

5 डॉ0 बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ–319–320

6 डॉ0 रामचन्द्र मिश्र – श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –260

7 अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' – प्रियप्रवास–सर्ग–1, पद–1

8 वही, सर्ग –7, पद–11

9 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, पृष्ठ–113

10 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–413

11 वही, पृष्ठ–413

12 वही, पृष्ठ–426

13 रामनरेश त्रिपाठी – मिलन (खण्ड काव्य), पृष्ठ–9

14 वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ–4

15 वही, पृष्ठ–5

16. वही, पृष्ठ–5

17 वही, पृष्ठ–16

18 वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ–22

19 वही, पृष्ठ–23

20. वही, पृष्ठ–25

21 वही, पृष्ठ–31

22 रामनरेश त्रिपाठी – मिलन (खण्ड काव्य–तृतीय सर्ग), पृष्ठ–48

23 वही, पृष्ठ–52

24 वही, चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ–69

25 वही, पृष्ठ–70

26 सम्मेलन पत्रिका (श्रद्धाजलि विशेषाक), पृष्ठ–254–255

27 रामनरेश त्रिपाठी – मिलन–सर्ग–3, पद–7

28 रामनरेश त्रिपाठी – स्वप्न–सर्ग–3, पद–32–33

29 वही, सर्ग–4, पद–1

30 रामनरेश त्रिपाठी – मिलन, चौथा सर्ग, पद–18

31 रामनरेश त्रिपाठी– पथिक, पृष्ठ–66

32 डॉ0 बच्चन सिह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ–313

33 मैथिलीशरण गुप्त – साकेत– प्रथम सर्ग, पृष्ठ–7

34 वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ–17

35 वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ–91

36 वही, अष्ठम सर्ग, पृष्ठ–131–132–133

37 वही, पृष्ठ–141

38 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य, पृष्ठ–42, 96

अध्याय–5

अध्याय–5

छायावादी काव्य

छायावादी काव्य हिन्दी स्वच्छन्दतावाद आन्दोलन की सर्वोत्तम निष्पत्ति है। इस काव्यधारा का समय 1920 ई0 से 1938 ई0 तक माना जा सकता है। यद्यपि 1920 ई0 से पहले ही छायावादी काव्य रचनाये होने लगी थीं। 1920 ई0 मे मुकुटधर पाण्डेय द्वारा छायावाद नामकरण किया गया। इसके बाद इस तरह की रचनाओ को छायावादी रचनाएँ कहा जाने लगा। छायावाद मुख्यत जयशकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पत तथा महादेवी वर्मा के काव्यो का प्रमुख स्वर रहा।

जयशंकर प्रसाद

विकासमान व्यक्तित्व के कवि

छायावाद के प्रमुख कवियो में पहला नाम जयशकर प्रसाद का आता है। जयशंकर प्रसाद शब्द की सभी छायाओ मे छायावाद के वरिष्ठ कवि हैं।[1] वह विकासमान व्यक्तित्व के रचनाकार हैं। साहित्येतिहास के क्रम मे उनकी रचनाएँ छायावाद की आरंभिक सूचना देती प्रतीत होती है। 'झरना' सग्रह को उनकी प्रथम छायावादी रचना माना जाता है। किन्तु प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी वृत्ति के सकेत इससे पहले भी मिलने लगते हैं। 'चित्राधार' से 'कामायनी' तक की यात्रा प्रसाद की स्वच्छदतावादी वृत्ति के विकास की सूचक है।

अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत प्रसाद ने 'कलाधर' उपनाम से ब्रजभाषा में सवैया, कवित्त, धनाक्षरी लिखकर की। उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित कविता 'भारतेन्दु' पत्र में जुलाई, 1906 ई0 मे 'कलाधर' उपनाम से छपी थी। जीवन के आरंभ में प्रसाद को एक वैभवशाली सामंती परिवेश मिला था। इससे उनके अभिजात्य सस्कार निर्मित हुये थे। इन्हीं सस्कारो के कारण प्रसाद की भाषा मे संस्कृत बहुलता आयी। इसी को लक्ष्य करके मुक्तिबाधे ने 'कामायनी एक पुनर्विचार' मे प्रसाद के सामन्ती परिवेश और मनु की देव विलासी जीवन स्मृति मे समानताएँ खोजने की कोशिश की। उन्होंने लिखा है– 'प्रसाद जी

की यह देव सभ्यता निश्चित ही वह सामन्ती सभ्यता है' जिसका अब जीर्णोद्धार नहीं हो सकता। वे सम्बन्ध गये। वह प्राचुर्य गया। वह विकास गया। अब केवल उसकी स्मृतियॉ शेष है। वह जमाना गुजर गया।'[2]

प्रसाद का पारिवारिक परिवेश उन्हे विद्वानो, कलाकारो के सपर्क मे ले आता है और विद्यालयो की शिक्षा के अभाव की क्षतिपूर्ति हो जाती है। अपनी आरभिक कृतियों मे उन्होने पुराण ग्रन्थो तथा वाल्मीकि, कालिदास जैसी श्रेष्ठ प्रतिभाओ से अपनी काव्य सामग्री प्राप्त की। निराला ने अपने एक पत्र मे इस पर व्यग्य भी किया है– 'पर मैने सुना है, आप उपनिषदो से नीचे उतरना पसद नहीं करते। फिर भी प्रयत्न करुँगा, यदि आपको नीचे उतार सकूँ।'[3] प्रसाद ने क्रमश अपने अध्ययन क्रम का विकास किया और पुराणो के मिथकीय ससार से आगे बढकर इतिहास की जटिलताओ मे प्रवेश किया। उस समय देश मे राष्ट्रीय भावना तीव्रतर होती जा रही थी। बुद्धिजीवी वर्ग अपने इतिहास को एक प्रकार पुनर्जीवन प्रदान करना चाहता था। भारतीय मनीषा के सक्रिय योगदान के फलस्वरूप उन्नीसवी शताब्दी मे नवजागरण आया। प्राचीन परम्परओ को नये सिरे से देखने की चेष्टा की गयी। प्रसाद का नाट्य साहित्य इसका उदाहरण है। प्रसाद की राष्ट्रीयता सास्कृतिक थी। वह भारत को आर्यों का आदि देश तथा जन्मभूमि घोषित करते हैं।

प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी चेतना की बुनावट में वैयक्तिक जीवन–प्रसग, पारिवारिक परिवेश, सामाजिक परिस्थितियॉ, सभी अपने–अपने स्तर पर प्रभाव डालते हैं। प्रसाद जीवन मे गहरे अन्तर्द्वन्द्व से गुजरते हैं। ये अन्तर्द्वन्द्व प्रेरणा स्रोत का काम करते हैं और उनके रचनाकार व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। प्रसाद की इतिहास सम्बन्धी दृष्टि मे भी समय–समय पर परिवर्तन होते रहे है। 'कल्याणी परिणय' (1912 ई0) से लेकर 'ध्रुवस्वामिनी' (1932 ई0) तक लगभग दो दशको के बीच आधुनिक इतिहास ने कई उतार–चढाव देखे। प्रथम विश्वयुद्ध और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता सग्राम जैसी घटनाएँ हुईं। प्रसाद के अधिकाश नाटक राष्ट्रीय चेतना से सम्पन्न हैं। अपनी स्वच्छन्दतावादी दृष्टि के कारण उन्होने नाटको मे कही–कहीं इतिहास का अतिक्रमण भी किया है।

काव्य–यात्रा के प्रारम्भिक सोपान

प्रसाद ने अपने कवि जीवन की शुरुआत ब्रजभाषा मे काव्य–रचना द्वारा की। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय तक गद्य की भाषा खडीबोली स्वीकार हो चुकी थी, परन्तु काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही बनी हुई थी। इस कारण खडीबोली का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया था। खडीबोली मे काव्य–रचना की सार्थक शुरुआत स्वच्छन्दतावादियो ने की। प्रसाद की प्रारभिक कविताये अम्बिकाप्रसाद गुप्त द्वारा सचालित 'इन्दु' पत्रिका मे छपी। इस पत्रिका का प्रथम अक वर्ष 1909 ई0 मे छपा। इस अक की प्रस्तावना मे साहित्य के स्वरूप के विषय मे दी गयी स्थापना का ऐतिहासिक महत्व है –

'साहित्य स्वतन्त्र प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है। वह किसी की परतन्त्रता को सहन नहीं कर सकता। ससार मे जो कुछ सत्य और सुन्दर है वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौन्दर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और पूर्ण रूप से विकसित करता है। आनन्दमय हृदय के अनुशीलन मे और स्वतन्त्र आन्दोलन मे उसकी सत्ता देखी जा सकती है।'[4]

प्रसाद आत्माभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को रचना कर्म के लिए आवश्यक मानते है, पर वे उसे अराजक स्थिति मे पहुँचा देने के पक्षधर नही हैं। वे परम्परा से प्राप्त सत्य का प्रयोग जीवन के कुछ अभीष्ट सदर्भों से जुडने के लिए करते है। हृदय के सवेग अथवा भावनामयता को काव्य का एक महत्वपूर्ण उपादान स्वीकार करके प्रसाद काव्य की स्वच्छन्दतावादी वृत्ति की ओर सकेत करते है। डॉ0 रामरतन भटनागर के अनुसार इन शब्दो मे स्वच्छन्दतावाद का बिगुल सुनायी पडता है।[5] ब्रजभाषा काव्य के माध्यम से वे केवल परम्परा का निर्वाह नहीं करना चाहते थे, वरन् अभिव्यक्ति की नयी सभावनाये भी तलाश रहे थे। ब्रजभाषा मे प्रारभिक रचनाओ के सृजन के बाद प्रसाद खडीबोली मे काव्य–सृजन करने लगते है। उनकी रचनाओ का क्रम उनके व्यक्तित्व के विकास का सूचक है।

चित्राधार

चित्राधार प्रसाद की प्रारभिक कृतियो का सकलन है, जिसमे गद्य एव पद्य दोनो प्रकार की रचनाये है। इस संग्रह का प्रकाशन सन् 1918 ई0 मे हुआ। इसमे कुल दस रचनाये सकलित थी जो इस प्रकार है –

1 कानन कुसुम– कविता–सग्रह

2 प्रेम पथिक –काव्य कथा (कथा काव्य)

3 महाराणा का महत्व–कथा काव्य

4 सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य–ऐतिहासिक शोध निबध

5 छाया–कहानी

6 उर्वशी–चम्पू

7 राज्यश्री–नाटक

8 प्रायश्चित् –गीतिनाट्य

9 करुणालय–गीति नाट्य

10 कल्याणी परिणय–नाटक

उपरोक्त रचनाओ मे कुछ ब्रजभाषा मे थी, कुछ खडी बोली मे। आगे चलकर दस वर्ष बाद सन् 1928 ई0 मे 'चित्राधार' का दूसरा सकलन प्रकाशित हुआ, जिसमे निम्नलिखित रचनाओ को सकलित किया गया–

1 चम्पू–(दो)–उर्वशी, वभ्रुवाहन

2 आख्यानक कवितायें (कथा काव्य–तीन) –अयोध्या का उद्धार, वनमिलन, प्रेम राज्य

3 पौराणिक कथा–(दो)– ब्रह्मर्षि, पचायत

4 निबध–(तीन)–भक्ति, प्रकृति–सौन्दर्य, सरोज

5 मुक्तक कविता–सग्रह–(दो)–पराग, मकरन्द बिन्दु

'चित्राधार' मे सकलित रचनाओ के अध्ययन से पता चलता है कि कवि की चेतना पर कई प्रकार के प्रभाव पडे हैं। पुराण–प्रसग, इतिहास की घटनाओ, प्रकृति और मानवीय भावनाओ–इन सबको प्रसाद अपनी अनुभूति–सम्पत्ति बनाते हुए अपनी सृजन–यात्रा में अग्रसर होते है। कवि ने गद्य–पद्य मिश्रित (चम्पू) 'उर्वशी' मे उर्वशी–पुरुरवा तथा 'वभ्रुवाहन' मे चित्रागदा–अर्जुन के प्रेमभाव को उजागर किया है।

यहॉ प्रसाद ने रोमानी वातावरण के निर्माण के लिए प्रकृति का भरपूर उपयोग किया है, जिससे उनकी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति के क्रमिक विकास का आभास मिलता है।

'चित्राधार' मे प्रसाद ने पौराणिक आख्यानो के साथ इतिहास के भी प्रसग लिए है। 'प्रेमराज्य' दो खण्डो मे विभाजित कविता है। इसका कथानक विजय नगर तथा अहमदाबाद राज्यो के बीच हुए सोलहवी शताब्दी के तालीकोट युद्ध से जुडा है। यहॉ प्रसाद सामन्ती रजवाडो के सघर्ष को न उभार कर कथा काव्य के अत मे चन्द्रकेतु और ललिता के विवाह–प्रसग से कथा का रोमानी समापन करते हैं।

'पराग' और 'मकरन्द बिन्दु' जैसे सग्रहो मे कवि की प्रारभिक कविताऍ हैं, जिनमे उनकी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति पूरी तरह खुलकर सामने नही आ पायी है। फिर भी प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी वृत्ति के क्रमश विकास की सूचना देने वाली इन कविताओ का अवश्य महत्व अवश्य है।

कानन कुसुम

प्रसाद का दूसरा काव्य सकलन 'कानन कुसुम' है। यह प्रसाद की खडीबोली कविताओ का प्रथम सकलन है। इसकी प्रमुख कविताऍ इस प्रकार हैं– 'चित्रकूट', 'भरत', 'शिल्प–सौन्दर्य', 'कुरुक्षेत्र', 'वीर बालक', 'श्रीकृष्ण जयती', 'रजनीगन्धा', 'सरोज', 'खजन', 'कोकिल', 'मर्मकथा', 'हृदय वेदना', 'सौन्दर्य', 'रमणी हृदय', 'नमस्कार', 'विनय', 'याचना', 'पतित पावन', 'तुलसी दास' आदि।

'कानन कुसुम' की कविताए खडीबोली का आधार ग्रहण करने के कारण सहज ही परम्परामुक्त हैं। यहॉ प्रसाद अपनी पारिवारिक भक्तिभावना को केवल वैयक्तिक मोक्ष कामना तक सीमित नहीं रखना चाहते। वे ईश्वर से मानव कल्याण की कामना करते है। भक्तिभावना को मात्र तन्मयता और सपूर्ण समर्पण के भावाकुल जगत से बाहर निकाल कर उसे अधिक समाजोपयोगी बनाना प्रसाद के विकासमान व्यक्तित्व का परिचायक है। इस सग्रह की 'नमस्कार' कविता की प्रस्तुत पक्तियॉ दृष्टव्य है–

'जिस मदिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है,
जिस मदिर मे रक नरेश समान रहा है,
जिसके हैं आराम प्रकृति कानन ही सारे,
जिस मदिर के दीप इन्दु दिनकर और तारे,

उस मदिर के नाथ को, निरुपम निरमय स्वस्थ को,

नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व गृहस्थ को।'

'कानन कुसुम' मे कवि ने प्रकृति विषयक रचनाओ मे प्रकृति से मानवीय भावनाओ की समीपता स्थापित की, पृष्ठभूमि तथा वातावरण को उजागर करने के लिए उसका इस्तेमाल किया, प्रकृति के प्रति प्रसाद का जिज्ञासा भाव तथा मानवीय भावो से सवाद आगे चलकर और भी विकसित होता है।

प्रेम पथिक

'चित्राधार' एव 'कानन कुसुम' की कविताओ मे व्यक्त प्रसाद की प्रेम भावना का विकास 'प्रेम पथिक' मे प्राप्त होता है। यहॉ कवि कल्पना के सहारे एक जीवन–दर्शन का प्रतिपादन करना चाहता है, जिसका सम्बध प्रेम भावना से है। 'प्रेम पथिक' मे एक रोमानी दुनिया की झलक भी मिलती है, प्रेम की एक आदर्शवादी व्याख्या भी मिलती है जो त्याग और आत्मविस्तार की भावना लिये हुए है।

'प्रेम पथिक' का प्रकाशन सर्वप्रथम ब्रज भाषा मे हुआ था। बाद मे प्रसाद ने इसका खडीबोली सस्करण प्रस्तुत किया। खडीबोली सस्करण ब्रजभाषा सस्करण की अपेक्षा अधिक विकसित तथा प्रौढ है। यहॉ कवि प्रेम की भावमूलक व्याख्या नही करता वरन् कथा को समाज के परिप्रेक्ष्य मे रखकर प्रस्तुत करता है। कथा का आरभ वियोग मे दुखी होकर भटकते हुए पथिक से होता है। उसकी भेट एक युवती तापसी से होती है जो उस अपरिचित पथिक की प्रेमकथा सुनकर दुखी होती है। तापसी अनेक प्रकार से प्रेम की व्याख्या करती है। कथा से ज्ञात होता है कि पथिक की एक प्रिया थी जो किसी और से व्याह दी गयी। काव्य के अत मे नाटकीय ढग से यह रहस्य खुल जाता है कि तापसी (चमेली) ही पथिक की प्रिया है। इस प्रकार अन्त मे दोनो का सुखद मिलन होता है। समीक्षको ने इस कथा की तुलना अग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' से की है, जिसका अनुवाद श्रीधर पाठक ने 'एकान्तवासी योगी' नाम से किया है।[6]

'प्रेम पथिक' मे व्यक्त प्रसाद का प्रेम–दर्शन उनके भाव–जगत के विकास का द्योतक है। यहॉ प्रसाद एक विस्तृत मानवीय धरातल पर अतर्बाह्य जीवन और जगत, भावना व चितन मे समन्वय स्थापित करते है । यहॉ कवि विश्व के कण–कण मे सौन्दर्य देखता है और प्रत्येक मानव हृदय मे प्रेम की कल्पना

करता है। इस रूप मे कवि ने प्रेम की दार्शनिक व्याख्या की है तथा एक स्वच्छन्दतावादी भावना को आध्यात्मिक भूमिका पर प्रस्तुत करना चाहा है। प्रेम की यह चरम परिणति ही आनन्दवाद है, जो सुख–दुख से परे है। 'प्रेम पथिक' मे कवि का उद्देश्य प्रेम की विस्तृत भाव–भूमि को प्रस्तुत करना था। इसमे कवि चित्रण की अपेक्षा चिन्तन मे अधिक रमा रहा। प्रेम का मानवीकरण करके उसके स्वरूप को स्पष्ट करना निश्चित ही प्रसाद का एक नया प्रयोग है। प्रस्तुत पक्तियॉ दृष्टव्य है –

'प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमे कही कपट की छाया हो
इसका परिमित रूप नही जो व्यक्ति मात्र मे बना रहे
क्यों कि यही प्रभु का स्वरूप है जहॉ कि सबको समता है
इस पथ का उद्देश्य नही है श्रान्त भवन मे टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं ।'

भाव और शिल्प की दृष्टि से 'प्रेम–पथिक' मे प्रसाद की शैलीगत नवीनता एव चितन की मौलिकता के दर्शन होते है। यहॉ कवि एक समन्वय को लेकर चला है। चिन्तन एव दर्शन को नवीन रूप मे प्रस्तुत करने वाली भाषा सरल एव स्वाभाविक है। कथा का आधार लेकर तथा विविध मनोवैज्ञानिक प्रसगो के चित्रण द्वारा कवि ने इसे सरस काव्य बनाया है। 'प्रेम पथिक' की इन्हीं विशिष्टताओ के कारण विद्वानो ने इसे भावों के विकास और विचारो की पवित्रता की दृष्टि से एक श्रेष्ठतम काव्य माना है।[7]

करुणालय

प्रसाद ने 'करुणालय' की रचना गीति–नाट्य के रूप मे की है। गीति नाट्य होते हुए भी इसमे न तो गीतात्मकता है, न ही पर्याप्त नाटकीयता। सभवत इसीलिए कुछ विद्वानो ने इसे भावनाट्य की सज्ञा दी है।[8] करुणालय की कथा पौराणिक है जो ऐतरेय ब्राह्मण मे प्राप्त होती है, यद्यपि इसके कुछ सकेत ऋग्वेद मे भी मिल जाते है। इसकी कथावस्तु पॉच छोटे–छोटे दृश्यो मे विभक्त है। राजा हरिश्चन्द्र को आकाशवाणी से सूचना मिलती है कि उसने वरुण देव को यज्ञ मे बलि देने का वचन दिया था, जिसे अब वह भूल गया है। दूसरे दृश्य मे रोहिताश्व का अन्त. संघर्ष है और तृतीय दृश्य मे अजीगर्त से उसका शुनशेफ को पा लेना है। चतुर्थ दृश्य मे वशिष्ठ द्वारा इस तर्क का समर्थन है कि रोहिताश्व के बदले

शुनशेफ की बलि दी जा सकती है। पॉचवे दृश्य मे सहसा विश्वामित्र का आगमन होता है। शुनशेफ उनकी गधर्व–विवाहिता पत्नी सुव्रता का ही पुत्र है। विश्वामित्र का अपनी पत्नी और पुत्र से मिलन होता है। बिना नरबलि के ही वरुण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रकार शुनशेफ की मुक्ति से काव्य का सुखद समापन होता है।

इसमे प्रसाद ने पौराणिक कथावस्तु का उपयोग एक जीवन दर्शन प्रस्तुत करने के लिए किया है। उनके विचार से वैदिक युग मे एक समय ऐसा आया जब यज्ञो मे बलि–प्रथा का उपयोग होने लगा और स्थिति यहॉ तक आ पहुॅची कि पशुबलि के स्थान पर नरबलि तक दी जाने लगी। प्रसाद ने कथा का आधार करुणा दर्शन की स्थापना करनी चाही है, इसलिए काव्य मे प्रकृति के दृश्य भी पर्याप्त मात्रा मे आ गये है, जिनके माध्यम से कवि ईश्वर की सत्ता का प्रकाशन करना चाहता है –

'शान्ति! प्रेममय शान्ति भरी है विश्व मे
सुन्दर है अनुकूल पवन, आनन्द मे
झूम–झूमकर धीरे–धीरे चल रहा
पिये । प्रेम–मदिरा विह्वल सा हो रहा
कर्णधार हो स्वय चलाता नाव को।'

महाराणा का महत्व

यह एक ऐतिहासिक कथा काव्य है। इसकी रचना प्रसाद ने भारतीय सस्कृति एव राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित होकर की है। इसकी कथा महाराणा प्रताप और अब्दुर्रहीम खानखाना से सम्बन्ध रखती है। काव्य के आरभ मे खानखाना की बेगम राणा प्रताप के सैनिको द्वारा पकड ली जाती हैं। राणा प्रताप बेगम को तुरन्त छोड देते हैं। बेगम लौटकर खानखाना से प्रताप के देश–प्रेम और स्वाभिमान की प्रशंसा करती है। खानखाना मुगल सम्राट अकबर से निवेदन करते हैं कि राणा प्रताप से युद्ध बन्द कर दिया जाय, जिसे वे स्वीकार कर लेते हैं।

'महाराणा का महत्व' कई दृष्टियों से प्रसाद के व्यक्तित्व के विकास की सूचना देने वाली रचना है। यहॉ प्रसाद पुराणो के मिथकीय जगत से इतिहास के क्षेत्र मे प्रवेश कर रहे थे। यद्यपि प्रसाद

इतिहास के द्वन्द्वात्मक स्तर को न ग्रहण कर उसके प्रति एक रोमानी दृष्टि रखते है। इस काव्य मे प्रसाद की आधुनिकता उनके राष्ट्रीय बोध मे दिखाई देती है। महाराणा प्रताप के माध्यम से वे एक ऐसा जातीय चरित्र खडा करना चाहते हैं, जो परतन्त्र राष्ट्र की मुक्ति का स्वप्न देखता है।

झरना : छायावाद का उद्घोष

यह प्रसाद की लघु–मुक्तक कविताओ का सग्रह है। इसका प्रथम प्रकाशन 1918 ई0 मे हुआ। 'झरना' को छायावादी काव्य का प्रथम सग्रह स्वीकार किया जाता है। इसके प्रकाशकीय वक्तव्य मे घोषणा है कि जिस शैली की कविता को हिन्दी साहित्य मे आज दिन छायावाद का नाम मिल रहा है, उसका प्रारभ प्रस्तुत सग्रह द्वारा ही हुआ। यद्यपि 'झरना' सग्रह से पूर्व की रचनाओ मे भी छायावादी काव्य–प्रवृत्ति के दर्शन होते है, किन्तु यहॉ आकर कवि पूर्ण अन्तर्मुखी बन गया। प्राय सभी कविताऍ उसके मनोभावो का प्रकाशन करती हैं। अनुभूतियॉ उसकी अपनी है जिन्हे व्यक्त करने के लिए कवि ने एक नयी शैली का निर्माण करना चाहा है। सभवत इसीलिए कहा जाता है कि 'झरना' छायावादी काव्य का प्रथम उद्घोष है।

झरना की कविताओ का भाव जगत सौन्दर्य और प्रेम की सम्मिलित अनुभूतियो से बना है और कवि ने अपनी वैयक्तिक प्रेमानुभूतियो का अधिकाधिक प्रयोग किया है। इस सग्रह की प्रथम कविता 'झरना' में ही कवि की इस भावना का सकेत मिलता है। यहॉ कवि जलधारा को देखकर उपदेश नहीं देने लगता है और न वह तटस्थ वस्तु–वर्णन करता है, वरन् उसकी भावनाऍ उद्दीप्त हो उठती हैं और वह कहता है–

'कर गई प्लावित तन–मन सारा
एक दिन तब अपाग की धारा
हृदय से झरना
वह चला जैसे दृग जल ढरना
प्रणय वन्या ने किया पसारा
कर गयी प्लावित तन–मन सारा ।'

'झरना' की अधिकाश कविताए प्रेमानुभूति के विभिन्न पक्षो को अभिव्यक्ति देती है। अनेक रूपो मे कवि स्वय को व्यजित करना चाहता है अर्थात् वह अधिक उन्मुक्त भावभूमि पर है। 'झरना' की भावनाओ का एक सीमित ससार है फिर भी कवि उनका क्रियान्वयन पूरी सक्षमता से करता है। प्रकृति के साथ मानवीय भावो के सामीप्य की जो प्रक्रिया आरभ हुई थी, उसे यहाँ एक गति मिलती है और वे एक दूसरे मे घुल–मिल जाते हैं, इससे भावनाओ के ससार को गहराई मिलती है। 'झरना' मे वेदना, करुणा का जो वातावरण बना है वह आदर्शीकरण अथवा व्यर्थ की आरोपित आध्यात्मिकता से आच्छादित नही है। कवि ने इतना साहस जुटा लिया है कि वह अपनी पीडा को व्यक्त कर सके। 'विषाद' कविता की पक्तियाँ है–

'किसी हृदय का यह विषाद है
छेडो मत यह सुख का कण है
उत्तेजित कर मत दौडाओ
करुणा का विश्रान्त चरण है।'

'झरना' की कविताओ मे स्वच्छन्दतावाद का जो रूप उभरता है उसकी पहली पहचान यही है कि कवि अपनी वैयक्तिक अनुभूतियो का प्रकाशन करने मे अधिक निसकोच भाव से काम लेता है। प्रसाद ने अपनी वैयक्तिक वेदनानुभूति मे प्रकृति को मुख्य सहचरी के रूप मे स्वीकारा और इस दिशा मे सचेष्ट रहे कि यह वेदना उनकी नितान्त व्यक्तिगत कुठा बनकर न रह जाय और वृहत्तर मानवीय अनुभूति से उसका मेल हो। यह मानवीय सवेदना प्रसाद के काव्य को महत्तम ऊँचाइयो पर ले जाती है।

'झरना' की कविताओ की मूल प्रवृत्ति गीतात्मक है। यहाँ कवि की प्रेम भावना गीतो के रूप मे प्रस्फुटित हुई है। गीतो की प्रेरणा कवि का स्वयं का व्यक्तित्व है। कवि की भावना अन्तर्मुखी है । कवि की अतरानुभूति सहज रूप मे व्यक्त हुई है। इसलिए 'झरना' के गीत सफल कहे जा सकते है विद्वानो ने 'झरना' को गीतो की प्रयोगशाला कहा है।[9] क्योकि यहाँ कवि कई प्रकार के प्रयोग करना चाहता है, उसकी अनुभूतियाँ नये रास्ते खोजना चाहती हैं ताकि जीवन और जगत की अधिक सश्लिष्ट भावनाओ की अभिव्यक्ति की जा सके। कुल मिलाकर 'झरना' छायावादी काव्य के आगमन की सूचना देता है।

आँसू : व्यक्तित्व का प्रकाशन

छायावादी रचनाओ मे 'ऑसू' का विशिष्ट स्थान है। प्रसाद की इस रचना का प्रथम प्रकाशन 1925 ई0 मे श्री मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य–सदन, चिरगॉव, झॉसी से हुआ था। इसमे कुल 126 छद थे। वेदनानुभूति एव करुणा की तीव्रता होने के कारण इसमे कवि की भावना एकरूपता लिये हुए है। प्राय सभी छदो मे वेदना का प्रसार है। इस दृष्टि से इसे विरह काव्य की सज्ञा दी जा सकती है। आरभ मे मिलन के भी कुछ चित्र है किन्तु उनकी अनुभूति क्षणिक है और सारा काव्य विरह की वेदना से आपूरित है। वियोगावस्था के मर्मिक चित्र यहॉ अकित है। अत मे, सुख और दुख, मिलन तथा वियोग को चिरतन सत्य मानता हुआ कवि अपनी दार्शनिक उद्भावना व्यक्त करता है–

'चेतना लहर न उठेगी
जीवन समुद्र थिर होगा,
सध्या हो सर्ग प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा।'

'ऑसू' के अधिकाश छद अपने मे स्वतत्र है, जिनके कारण भावो को एकसूत्रता नही मिल पाती, साथ ही उनमे क्रमबद्धता न होने के कारण अन्विति का अभाव है। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आक्षेप किया था कि 'वेदना की कोई एक निर्दिष्ट भूमि न होने से सारी पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव नही निष्पन्न होता।'[10] साथ ही 'ऑसू' की अनूठी उक्तियो ने उन्हे इतना प्रभावित किया कि उसकी प्रशसा मे उन्होने लिखा– 'पर अलग–अलग लेने पर उक्तियो के भीतर बडी ही रजनकारिणी कल्पना व्यजक चित्रो का बडा ही अनूठा विन्यास भावनाओ की अत्यन्त सुकुमार योजना मिलती है।'[11]

'ऑसू' का द्वितीय सस्करण 1933 ई0 मे प्रकाशित हुआ। इसमे 190 छद थे। इस परिवर्द्धित सस्करण मे कवि ने अपने व्यक्तित्व को नयी दिशा दी है। इस सस्करण के मुक्त छदो मे भी एक क्रमबद्धता मिलती है जिससे कथा का आभास मिलता है। इसमे प्रसाद के सजग एव विकासमान व्यक्तित्व की सूचना मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम सस्करण के समय कवि पर वेदना की छाया बहुत अधिक थी और वह एक प्रकार से भावाभिभूत था। यही कारण है कि यहॉ पीडा की अनुभूति बहुत तीव्र है

और एक प्रकार की भावाकुलता इस अवसर पर देखी जा सकती है। दूसरे सस्करण तक आते–आते आठ–नौ वर्षों मे कवि अपने बहुत से उच्छवासो को निशेष कर देता है। जीवन के अन्य दृश्यो की ओर भी उसकी दृष्टि जाती है । यह कवि–व्यक्तित्व का विस्तार है। जगत के अन्य दृश्यो से अपना सम्बन्ध स्थापित करने मे उसे अधिक सफलता मिली है। इस सस्करण का वेदना–दर्शन विशेष द्रष्टव्य है। प्रथम सस्करण मे कवि की वेदना व्यक्तिगत अधिक है, इसीलिए वह निराशा के साथ समाप्त होता है। यह सस्करण जीवन के दृश्यो से जुडा अधिक है।

'ऑसू' प्रसाद के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रकाशन है और व्यक्तित्व भी ऐसा, जहॉ कवि अपनी नितान्त निजी और वैयक्तिक प्रेमानुभूति को साहस के साथ व्यक्त कर सकता है। कोई भी अनुभव जब जीवन–सन्दर्भों से गहरे रूप मे जुडने की ताकत रखता है, तभी वह रचना मे अधिक सार्थक होकर आता है। 'ऑसू' मे प्रसाद स्वय को स्वतत्र भूमि पर छोडते हैं, निसकोच भाव से अपनी बात कहते हैं। इतना कर सकने के लिए आत्माभिव्यक्ति के जिस साहस की अपेक्षा होती है, वह कवि ने सचित कर लिया है।

'ऑसू' के भाव–जगत का मूलाधार कवि की आत्म–स्वीकृति है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे यह नये मोड की सूचना है, क्योकि जब अन्य द्विवेदी युगीन कवि श्रृगार का नाम लेने से भी घबडाते थे, तब प्रसाद ने अपनी प्रेम कथा सुना सकने का साहस किया। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की स्थापना और उसकी प्रामाणिक अभिव्यक्ति की दिशा मे यह मील का पत्थर है।

'ऑसू' एक गीतात्मक काव्य है, जिसमे कवि ने नितान्त वैयक्तिक जीवन प्रसगो को व्यक्त करना चाहा है। आरम्भ मे कवि की विषाद–डूबी चेतना है, जहॉ वह स्वय को लगभग वेदना से अभिभूत स्थिति मे पाता है। प्रिय की असख्य स्मृतियो से गुजरता हुआ वह यह महसूस करता है कि उसका प्रिय उससे अपृथक् है। वह उसके व्यक्तित्व का एक अश है। प्रिय का आकर्षक आगमन और उसका सहसा चले जाना, इन दोनो बिन्दुओ के बीच सुख का जो ससार विद्यमान है, वह भुलाया नही जा सकता। प्रिय की अनेक छवियॉ कवि बार–बार स्मरण करता है और अपने प्रिय का एक सश्लिष्ट चित्र बनाना चाहता है। ऑसू का यह सौन्दर्याकन, रुपाकन किसी सीमा तक अशरीरी भी कहा जा सकता है कवि मे उसे शारीरिक इकाई तक सीमित नहीं रखा है–

'विकसित सरसिज वन वैभव
मधु ऊषा के अचल मे
उपहास करावे अपना
जो हॅसी दे पल मे।'

× × × × ×

'चचला स्नान कर आवे
चन्द्रिका पर्व मे जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी।'

'ऑसू' मे सौन्दर्यांकन मे कुछ रुढ उपमानो का प्रयोग किया गया है पर कवि की रोमानी प्रवृत्तियॉ सौन्दर्य के विषय मे अपनी मानसिक प्रतिक्रिया भी व्यक्त करती है। यहॉ कवि उस सौन्दर्य का उपभोक्ता है, वह तटस्थ नहीं है, 'ऑसू' मे विगत और वर्तमान का एक ऐसा समन्वित रूप है कि उसमे फ्लैश बैक पद्धति तक का प्रयोग दिखाई देता है। जब कवि प्रिय के साथ विताये गये क्षणो का स्मरण करता है, ऐसे अवसर पर भावाकुल क्षणो का आ जाना भी प्रसाद जैसे स्वच्छन्दतावादी कवि के लिए स्वाभाविक है, पर उन्हे बराबर अपने व्यक्तित्व का एहसास है जिसके कारण वे ऐसे क्षणो से बाहर आने की शक्ति भी स्वय मे सचित कर लेते है। 'ऑसू' मे प्रतिपादित वेदना सम्बन्धी व्याख्या कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों पर उसके रचनाकार की विजय है। प्रसाद अपनी व्यक्तिगत सीमाओ से बाहर निकलते हैं और बाह्य जीवन से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जिस वेदना को वे अब तक अकेले भोग रहे थे, उसमे प्रकृति भी सम्मिलित होती है। वेदना जैसे सश्लिष्ट, गम्भीर, अमूर्त भाव का मूर्तिकरण करना सरल नहीं है, इसलिए आरभ मे यह तश्वीर धुँधली है पर काव्य के अन्त मे जो दृश्य आये हैं, वे कवि के उठते हुए व्यक्तित्व का प्रमाण है–

'मुँह सिये झेलती अपनी
अभिशाप ताप ज्वालाये

देखी अतीत के युग से
चिर मौन शैल मालाएँ
जिन पर न वनस्पति कोई
श्यामल उगने पाती है
जो जनपद परस तिरस्कृत
अभिशप्त कही जाती है।'

'ऑसू' यह सकेत करता है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य वैयक्तिक अनुभूतियो का सक्षम प्रयोग करता हुआ जीवन की अन्य दिशाओ का समावेश भी स्वय मे कर सकता है। एक प्रकार से प्रसाद यहॉ स्वय को ठीक–ठीक पहचानते हैं। 'ऑसू' मे मानवीय भावनाओ की समर्थ अभिव्यक्ति है–

'जगती का कलुष अपावन
तेरी विदग्धता पावे
फिर निखर उठे निर्मलता
यह पाप पुण्य हो जावे।'

कवि इन विषमताओ के बीच जीवन का लक्ष्य पा लेना चाहता है। उसकी चेतना वरदान बनकर उसे लक्ष्य तक पहुॅचाती है। यहॉ कवि की पीडा निराशाजन्य न होकर जीवनदायी है। उसका काव्य वैयक्तिक भावनाओ से ओत–प्रोत होते हुए भी सामाजिक भूमिका पर निर्मित है। 'ऑसू' मे वह सुख–दुख की व्याख्या करता हुआ दुख को भी जीवन मे अनिवार्य मानता है। यहॉ कवि ऐसे तात्विक निष्कर्ष पर पहुॅचता है जिसके आगे अधिक शकाएँ नही रह जातीं। इसीलिए 'ऑसू' कवि की मानवतावादी दृष्टि का पोषक है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इसे एक प्रकार से एक 'मानवीय विरह काव्य' माना है। इस दृष्टि से 'ऑसू' एक श्रेष्ठ रचना है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे 'ऑसू' जिस मोड की सूचना है, उससे स्वच्छन्दतावादी काव्य की सभावनाओ के द्वार खुलते हैं।

लहर : प्रेम–यौवन–सौन्दर्य का स्वर

'लहर' प्रसाद जी की प्रौढ रचनाओ का सग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 1933 ई0 मे हुआ था। इसमे कवि की ओर से कोई भूमिका नहीं है। इसमे कुल 33 कविताएँ सग्रहीत है। आरभिक भाग की कविताएँ गीत हैं, दूसरे भाग की कविताएँ गीत न होकर वर्णनात्मक, कथात्मक हैं। 'लहर' की सर्वाधिक कविताएँ प्रेम और यौवन से सम्बद्ध है। उन्हे प्रणय–गीत कहा जा सकता है। कुछ कविताएँ एतिहासिक हैं। कुछ मे बौद्ध दर्शन की छाप है। कुछ कविताएँ प्रमुखत प्रकृति से सम्बन्धित है। कुल मिलाकर प्रेम, यौवन और सौन्दर्य के स्वर ही मुखरित हुए है।

'लहर' सग्रह तक पहुँच कर कवि अपने सीमित अनुभवो को गहरा सकने मे पूर्ण समर्थ होता है और वृहत्तर जीवन सन्दर्भो से गहरे जुड सकने की शक्ति पा लेता है। यहाँ आकर कवि के व्यक्तित्व को एक समाकलन मिल जाता है। भावनाओ का केन्द्रित होना, विचारो की परिपक्वता और अभिव्यक्ति की शक्ति 'लहर' मे सहज दृष्टव्य है। 'लहर' के गीतो मे वैयक्तिक प्रेमानुभूतियो के प्रकाशन मे गभीरता मिलती है। कवि ने स्वय को अभिव्यक्ति मोह से मुक्तकर लिया है। 'लहर' एक गहरी अन्तर्यात्रा मे सम्मिलित होने को बाध्य करती है। । यहाँ कवि ने जो अनुभव सम्पत्ति प्राप्त की है वह उन सब का सयोजन मानवीय सदाशयता से प्रेरित होकर करना चाहता है।

व्यक्ति–मन का क्रमश अधिक वस्तून्मुखी तथा निर्वैयक्तिक होने का प्रयत्न 'लहर' की रचनाओ का प्रेरक है। यह तटस्था कवि की प्रेम सम्बन्धी रचनाओ मे भी देखी जा सकती है। 'मुझको न मिला रे कभी प्यार !' जैसी पक्तियाँ, दमित इच्छाओ की पूर्ति का सकेत नहीं हैं, बल्कि एक अधिक यथार्थ दृष्टि की परिचायक है।

'लहर' की एक बडी प्रसिद्ध रचना है– 'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे–धीरे।' कुछ लोगो के अनुसार यह रहस्यवादी कविता है और कवि अपने नाविक (मन या गुरु) से ब्रह्म तक पहुँचाने को कहता है। कुछ लोगो के अनुसार यह पलायनवादी कविता है। कवि इस ससार के कटु सत्यो से परेशान होकर इसे छोडकर भागना चाहता है। इसमे सदेह नहीं कि ऐसी ध्वनि कविता से निकलती है। 'छोटी–सी कुटिया मे रच दूँ नयी व्यथा साथिन को' जैसी पक्तियो को, या करुणा तथा दुख से सम्बन्धित

अधिक लिखने को, कुछ लोग इसी बात का प्रमाण मानते हैं कि प्रसाद का स्वर पलायनवादी है। वस्तुत किसी एक कविता या दो–चार पक्तियो के आधार पर किसी कवि का मूल्याकन उचित नही कहा जा सकता। जिस प्रसाद ने आनन्दवादी दृष्टिकोण अपनाकर सुख–दुख, विरह–मिलन, हृदय–मस्तिष्क के समन्वय द्वारा स्वस्थ जीवन के उपभोग का सदेश अनेक स्थलो पर दिया, उसे निराशावादी और पलायनवादी नहीं कहा जा सकता। इस कविता को दो सदर्भो मे देखा जा सकता है– या तो उनके किसी विशेष क्षण की वह रचना हो जब किसी कारणवश वे ससार से ऊब गए हो। यदि ऐसा ठीक है तो एक क्षण के भाव को पूरी दृष्टि पर थोपना गलत ही होगा। या फिर कवि इस कविता मे अपने मस्तिष्क के आदर्श ससार का चित्र भी खीच रहा है जिसमे सुख और शाति का साम्राज्य हो। डॉ0 प्रेमशकर ने इस गीत के सम्बन्ध मे लिखा है– 'ले चल मुझे भुलावा देकर जैसे गीतो मे प्रसाद जिस मानवीय सदाशयता के स्वप्न से परिचालित है, उसमे कल्पना के अतिरिक्त क्षण हो सकते हैं, पर कुल मिलाकर उसके पीछे एक बेहतर दुनिया पाने की मनोकामना है।'[12]

'लहर' की एक लम्बी कविता 'प्रलय की छाया' है। यह एक ऐतिहासिक कविता है। इसमे श्रृगार की प्रधानता है, किन्तु साथ ही यौवन, रूप, वासना, आत्मग्लानि आदि को लेकर नारी हृदय मे उठने वाले सघर्ष और उसके घात–प्रतिघात, क्रिया–प्रतिक्रिया तथा उनके मन की चचलता एव बाहरी शान शौकत पर आकर्षित होने आदि का बडा ही मार्मिक वर्णन है। तत्वत इसमे ऐतिहासिकता का थोडा सा आधार मात्र है। उसके सहारे कवि का मुख्य ध्येय नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना है। अलाउद्दीन ने गुजरात पर चढाई की थी और विजयी होकर वहॉ की सुप्रसिद्ध सुन्दरी रानी कमलावती को पत्नी रूप में ग्रहण किया था। कमला ने पद्मिनी की भॉति जौहर नहीं किया। यह सोचकर उसे आत्मग्लानि होती है। इसी प्रसग ने अपने विगत् जीवन की अन्य बाते भी उसे याद आती है। इन्ही बातो का इस रचना मे वर्णन है। भावो की सहजता, भावानुकूल अभिव्यक्ति, अलकारो के सुन्दर और अत्यन्त सार्थक प्रयोग तथा आवेगपूर्ण प्रवाह आदि सभी दृष्टियो से यह रचना बडी ही प्रौढ है।

कामायनी : प्रौढ़तम कृति

'कामायनी' प्रसाद की प्रौढतम कृति है। इसका प्रकाशन सन् 1935 ई0 मे हुआ था। यह कृति प्रसाद की सारी साधना एव चिन्तन का निचोड है। हिन्दी के परम्परागत महाकाव्य वर्णन प्रधान रहे है, किन्तु 'कामायनी' मे प्रसाद ने एक अलग पथ बनाया है। उसमे मानव–मनोवेगो के विश्लेषण और साकेतिकता पर बल है। इसीलिए महाकाव्य होते हुए भी इसे किसी लम्बे–चौडे कथानक की आवश्यकता नहीं पडी। 'कामायनी' मे कुल 15 सर्ग हैं – चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इडा, स्वप्न, सघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य, आनन्द। 'कामायनी' की सक्षिप्त कथा इस प्रकार है–

देवताओ के निर्बाध विलास के कारण प्रलय हो चुकी है। सम्पूर्ण देव सृष्टि नष्ट हो चुकी है। केवल मनु शेष है। किसी महा मत्स्य का एक चपेटा खाकर उनकी नौका उत्तर गिरि से आ टकराती है और वे इसी स्थान पर उतर पडते है। वही बैठे मनु देवो के अतीत वैभव, प्रलय की भयानक विभीषिका तथा जीवन की नश्वरता आदि का ध्यान करके चिन्ता मे लीन हैं। धीरे–धीरे पानी सूख रहा है। प्रलय–निशा का अन्त हो रहा है और सुनहरा प्रभात झॉक रहा है।

प्रभात नई आशा लेकर आता है। प्रकृति धीरे–धीरे फिर से मुस्कराने लगती है। यह देखकर चिन्ताग्रस्त मनु मे भी नई आशा का सचार होता है। वे स्वस्थ चित्त होकर एक पर्वत गुफा मे अपना निवास बनाते हैं। शालियॉ चुनकर पाक यज्ञ करते है तथा यह सोचकर कि शायद कोई और भी प्रलय की ज्वाला से बचा हो, अवशिष्ट अग्निहोत्र कुछ दूर पर रख देते है। एकान्त जीवन उनको खलता है।

काम–गोत्रजा श्रद्धा कभी उधर आती है और मनु के रखे अवशिष्ट अग्निहोत्र से वह अनुमान लगाती है कि इधर कोई व्यक्ति है। आगे बढने पर वह मनु को पाती है। मनु का पौरुष उसे आकर्षित करता है और उसका सौन्दर्य मनु को। एक दूसरे को जानने का प्रयास होता है। प्रलय की छाया से मनु अब भी विपन्न हैं। श्रद्धा उन्हे जीवन की सार्थकता बताकर कर्म मे लीन होने और जीवन पथ पर आगे बढने को उत्साहित करती है। उसके प्रेम और ममता का सहारा पाकर मनु की विरक्ति कुछ दूर हो जाती है।

श्रद्धा के आगमन से मनु के एकान्त जीवन मे विरसता समाप्त होती है। जीवन के प्रति एक नवीन आकर्षण का उदय होता है। धीरे–धीरे अन्जाने ही उनके हृदय मे काम का स्फुरण होता है। प्रकृति का मोहक रूप उसे और भी दीप्त करता है। श्रद्धा और मनु और भी निकट होते जाते है और अन्त मे दोनो एक दूसरे पर अत्यधिक आकर्षित होकर एक–दूसरे को समर्पण करते हैं और उनमे वासना का भाव जगता है।

वासना आने पर नारी मे लज्जा का आना स्वाभाविक है। श्रद्धा के हृदय मे लज्जा का भाव जगता है। नारीत्व पूर्णरूपेण उभर आता है। लज्जा नारी का सबसे बडा आभूषण है। इस सर्ग मे लज्जा और श्रद्धा मे बातचीत के माध्यम से नारी का आदर्श, उसके जीवन का उद्देश्य आदि बाते बडे सुन्दर ढग से व्यक्त की गयी है।

प्रलय का दारुण दृश्य मनु को विस्मृत हो गया है। श्रद्धा ने उनके जीवन मे आकर एक नवल और मादक आकर्षण पैदा कर दिया है। वे कर्म की ओर झुकते हैं। सोम पान की इच्छा भी उनके मन मे जगती है। मनु की भाँति ही प्रलय से दो असुर पुरोहित 'किलात' और 'आकुलि' भी बचे रह गये थे। वे जब श्रद्धा द्वारा पालित स्वस्थ–सुन्दर पशुओ को देखते है तो उनकी आमिष–लोलुप रसना खाने को ललचा उठती है। दोनो आपस मे परामर्श करके मनु के पास पहुचते हैं और उन्हे यज्ञ करने को उत्साहित करते हैं, साथ ही स्वय पुरोहित बनने को तैयार हो जाते हैं। मनु यज्ञ करते हैं और उसमे पशुओ की बलि दते हैं। आग धधक रही है। चारो ओर खून के छीटे पडे हैं, हड्डियाँ बिखरी है। श्रद्धा को वह वीभत्स और भयकर दृश्य बहुत बुरा लगता है। वह रूठी हुई अलग रहती है। उधर मनु सोम पान करके मस्त हो उठते हैं और उनकी वासना भी प्रदीप्त हो उठती है। वे स्वय श्रद्धा के पास पहुँचते है। श्रद्धा रुष्ट है, किन्तु मनु के लिए उसके हृदय मे अतुलित प्रेम भी है। वह उनके स्पर्श से रोमाचित हो उठती है। वह उन्हें मीठे शब्दो मे फटकारती है, किन्तु मनु के द्वारा अनुनय–विनय करने पर वह भी सोम–पान करती है।

श्रद्धा गर्भवती हो चुकी है। वह गृहस्थी जुटाने में लगी है। शालियॉ एकत्र करती है। दिन भर तकली चलाती है। उसने एक कुटीर का भी निर्माण कर लिया है। मनु को यह सब बुरा लगता है। वह

श्रद्धा पर एकाधिकार चाहते है। वे चाहते है कि वह केवल उनकी सेवा मे रहे। भावी सन्तान के प्रति उनके मन मे ईर्ष्या जगती है। उन्हे लगता है कि श्रद्धा का प्रेम सन्तान के आगमन के कारण बॅटने वाला है। वे नाराज होकर वहॉ से चले जाते हैं। श्रद्धा उन्हे रोकने का असफल प्रयास करती है।

श्रद्धा को छोडकर जाने के बाद मनु इधर–उधर लक्ष्यहीन घूमते है। घूमते–घूमते वे उजडे सारस्वत नगर मे पहुँचते हैं। वहॉ उन्हे इडा नाम की सुन्दरी मिलती है जो उन्हे दुखी देखकर उनका स्वागत करती है। उसके कहने से एक प्रबधक के रूप मे मनु उजडे हुये सारस्वत प्रदेश की उन्नति मे जी जान से जुट जाते हैं। कवि ने इडा को बुद्धिमय नारी बताया है।

मनु के चले जाने पर श्रद्धा बहुत दुखी होती है। जिसके चरणो पर उसने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था, वह उसे छोडकर चला गया था। इस दुख और निराशा की घडियो मे वह मॉ बनी। उसका पुत्र मानव धीरे–धीरे कुछ बडा हुआ। श्रद्धा मानव को जरा भी रोकती–टोकती नहीं, कि कही वह भी न रुष्ट होकर चला जाय। एक दिन श्रद्धा ने स्वप्न मे देखा– मनु का सुन्दर नगर बसा हुआ है। उनके निर्देशन मे वहॉ के लोगो ने खूब उन्नति की है। मनु सिहासनारूढ है। कोई सुन्दरी उन्हे मदिरापान करा रही है। मनु तृप्त नहीं हो रहे है। वे कहते हैं कि मेरा हृदय अब भी सूना है। वे इडा को अपनी प्रणयिनी बनाने का सकेत करते हैं। इडा को आश्चर्य होता है। वह कहती है– 'मैं आपकी प्रजा हूँ। मुझसे ऐसी बाते क्यो ?' मनु कहते हैं– 'तुम प्रजा नही मेरी रानी हो, मेरा प्रणय स्वीकार करो।' यह कहते–कहते मनु वासना से उत्तेजित होकर इडा का आलिगन करते है और वह भय से कॉप कर अपनी रक्षा के लिए पुकार करती है। भयकर गर्जन से दिशाए गूँज उठती है। भूचाल सा आ जाता है। शकर का तीसरा नेत्र खुलता है और वे ताडव करने लगते हैं। प्रजा एकत्र हो जाती है। इडा क्रोध और लज्जा से आवेष्टित बाहर निकल आती है और मनु प्रहरियो को द्वार बन्द करने की आज्ञा देकर सोने चले जाते है। श्रद्धा स्वप्न की विकरालता से कॉप उठी। उसकी ऑखे खुल गयी।

श्रद्धा का स्वप्न सचमुच सत्य था। सारस्वत प्रदेश मे यही हुआ। अत्यधिक बौद्धिक होने पर व्यक्ति का पतन ही होता है। मनु के साथ भी यही बात हुई वे इडा को, जो प्रजा थी और प्रजा राजा की सन्तान के समान है, पत्नी बनाने पर तुल बैठे। इस पर प्रजा बिगड खडी हुई। प्रजा ने महल का

सिहद्वार खोल दिया और भीतर आ गयी। मनु ने कहा कि मैने तुम्हे सुख–समृद्धि दी है। इस पर प्रजा बोली कि सुख समृद्धि क्या दी है, हमे मशीनो का दास बना दिया है और बौद्धिकता का प्राधान्य देकर सचय की वृत्ति जागृत कर दी है। हम लोभी हो गये है। इस प्रकार विवाद बढा और दोनो मे सघर्ष हुआ। एक ओर थे मनु और दूसरी ओर पूरी प्रजा, जिसके नेता वही किलात और आकुलि असुर पुरोहित थे। मनु ने भयकर आग्नेयास्त्रो से उन दोनो को मार डाला, किन्तु अन्त मे वे स्वय भी इस सघर्ष मे घायल होकर गिर पडे। इस प्रकार प्रसाद इस सघर्ष के माध्यम से आज की भौतिक उन्नति और उसके दुष्परिणामो का सकेत करते हैं।

मनु के गिरने के बाद युद्ध बन्द हो गया। किन्तु पूरे नगर मे जैसे दुख, क्षुब्धता और मलिनता छा गयी। इडा की विचित्र स्थिति थी। वह अन्तर्द्वन्द्व की आग मे जल रही थी। मनु ने उसके साथ अत्याचार किया था, इसलिए वह उनसे घृणा कर रही थी, किन्तु उसी मनु की सहायता से उसका उजडा सारस्वत प्रदेश धन–धान्य और भौतिक उन्नति से परिपूर्ण बना था, यह सोचकर मनु के प्रति उसके हृदय मे ममता उमडती थी और वह उन्हे क्षमा कर देना चाहती थी। उसने निष्कर्ष निकाला कि विश्व मे अच्छे–बुरे दोनो हैं। दोनो ही स्वीकार्य है। इडा इसी उधेड–बुन मे थी कि उसी समय मानव को लेकर श्रद्धा आ पहुँचती है। उसकी करुण अवस्था देखकर इडा द्रवित हुए बिना न रह सकी। इतने मे पास ही श्रद्धा ने मनु को घायल और बेहोशी की हालत मे देखा। उसका स्वप्न सच निकला। वह बोली– 'आह! प्राण प्रिय यह क्या ?' उसकी ऑखे गीली हो गयी। इडा यह देखकर चकित थी। श्रद्धा मनु के पास जाकर उन्हे सहलाने लगी। मनु की मूर्च्छा दूर हुई। श्रद्धा को देखकर वे रोने लगे। श्रद्धा के बतलाने पर मानव ने अपने पिता को पहचाना। मनु वहॉ से दूर जाना चहते थे, किन्तु श्रद्धा ने स्वस्थ होने तक वहॉ रुकना आवश्यक समझा। मनु रुके तो, किन्तु उन्हे वहॉ से घृणा हो रही थी। उनकी समझ मे यह बात आ चुकी थी कि श्रद्धा को छोडकर उन्होने अपने जीवन की सबसे बडी भूल की थी। एक रात, सभी लोग सो रहे थे। मनु सोच–विचार मे लीन थे। उन्हे पूरा विश्व दुखमय दिखाई दे रहा था। निर्वेद के भाव उनमे भरते जा रहे थे। अन्त मे, उन्होने वहॉ से चले जाने का निर्णय ले लिया। प्रात. जब लोग उठे तो

मनु गायब थे। मानव– 'पिता कहॉ ?' कहकर उन्हे व्यग्र होकर खोजने लगा। श्रद्धा दुखो मे उलझ गयी और इडा इन सारे अनर्थों के लिए अपने को दोषी समझ कर ग्लानि मे डूब गई।

श्रद्धा बहुत दुखी थी। उसे देखकर मानव भी बहुत उद्विग्न था। इडा ने श्रद्धा से क्षमा मॉगी। उसने अपने प्रदेश मे फैले सघर्ष, गर्व, बौद्धिकता आदि के लिए भी अपने आपको दोषी बतलाया। श्रद्धा बोली– 'सिर चढी रही, पाया न हृदय।' वह कहती है कि अपने–अपने व्यक्तिवादी रास्ते पर चलकर ही यहॉ के सब लोग भ्रमित हुए तथा तुमने भी सरल राह छोड दी। अन्त मे, श्रद्धा ने मानव को इडा के हाथो मे सौप दिया और मनु को खोजने के लिए निकल पडी। जाते समय उसने मानव को सन्देश दिया, जो प्रसाद जी का विश्व को सन्देश है–

'हे सौम्य इडा का शुचि दुलार,
हर लेगा तेरा व्यथा–भार।
वह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय।
इसका तू सब सन्ताप निश्चय,
हर ले, हो मानव भाग्य उदय।
सबकी समरसता का प्रचार,
मेरे सुत सुन मॉ की पुकार।'

अर्थात् श्रद्धा और तर्क या हृदय और बुद्धि के सामंजस्य से ही मन ठीक पथ पर चल सकता है और मनुष्य का भाग्योदय हो सकता है।

खोजते–खोजते श्रद्धा ने मनु को एक गुफा मे पा लिया। मनु ने जब सुना कि सारस्वत प्रदेश के शासन के लिए श्रद्धा मानव को इडा को सौप आयी है तो वे कुछ दुखी हुये। किन्तु श्रद्धा ने कहा कि देने से कोई भिखारी नही बनता। कुमार को देकर मैने तुम्हारी कालिमा धो दी। मनु यह सनुकर श्रद्धा की महानता पर मन्त्रमुग्ध हो गये। श्रद्धा के यथार्थ रूप को उन्होने देखा और उनकी ज्ञान की ऑखे खुली,

एक विचित्र प्रकाश उन्हे दिखाई पडा और नृत्यलीन नटेश के उन्हे दर्शन हुए। मनु बेसुध होकर पुकार उठे–

'यह क्या श्रद्धे! बस तू ले चल,
उन चरणो तक दे निज सम्बल।
सब पाप–पुण्य जिसमे जल–जल,
पावन बन जाते है निर्मल।
मिलते असत्य के ज्ञान लेश,
समरस आखण्ड आनन्द वेश।'

मनु की इच्छानुसार श्रद्धा उन्हे लेकर हिमालय पर चढती है। सर्वत्र शान्ति है। श्रद्धा आगे–आगे चल रही है और मनु पीछे–पीछे। रास्ता भयानक है। मनु थक कर पीछे लौटना चाहते है। श्रद्धा उन्हे सहारा देती है। चढाई समाप्त होती है। समतल भूमि पर आकर मनु को कुछ शान्ति मिलती है। मनु को तीन अलग–अलग आलोक बिन्दु दिखाई पडते हैं। मनु आश्चर्य चकित होकर उनका रहस्य पूछते है। श्रद्धा बतलाती है– 'इस त्रिकोण के मध्य बिन्दु तुम्ही हो। ये इच्छा, ज्ञान और क्रिया के लोक हैं और उनके रग क्रमश लाल, श्वेत अैर कृष्ण है। इच्छा लोक से ही पाप–पुण्य का जन्म होता है। क्रिया लोक मे सभी कर्मो के दास है। हिसा और हार मे भी गर्भ अनुभव करते हैं, ज्ञान लोक मे व्यक्ति सुख और दुख से उदासीन रहता है, किन्तु यहॉ भी तृप्ति नही मिलती। यहॉ तर्क की प्रधानता है। यहॉ के जीवन मे आनद नहीं है। ये तीनो अलग–अलग है, यही मानव जीवन की विडम्बना है–

'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यो हो पूरी मन की।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।'

इतना कहते –कहते श्रद्धा मुस्करा उठी और वे तीनो लोक प्रज्वलित होकर सम्बद्ध हो उठे। विश्व मे डमरू की ध्वनि गूँज उठी–

'स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद मे
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।'

मनु और श्रद्धा वही साधना मे लीन हो गये। कुछ दिन बाद सारस्वत नगर के तीर्थयात्रियो का दल उस तीर्थ की यात्रा करने आया। इसमे इडा और मानव भी थे। उनके साथ धर्म का प्रतीक बैल भी था। उन लोगो ने वहॉ जा कर उस पवित्र भूमि तथा श्रद्धा के दर्शन किये। मनु ने लोगो को कैलास का दर्शन कराया और बतलाया की यहॉ सभी लोग समरस और आनन्द मे मग्न है। यात्रियो ने भी वहॉ देखा–

'समरस थे जड या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतना एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।'

'कामायनी' के कथानक का आधार पौराणिक तथा कल्पित घटनाये है। दोनो को एक मे गूँथकर कथा को रूपायित किया गया है। 'कामायनी के आमुख मे प्रसाद ने लिखा है– 'यह अख्यान इतना प्रचीन है कि इतिहास मे रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, साकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करे तो मुझे कोई आपत्ति नही। मनु अथार्त् मन के दोनो पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमश श्रद्धा और इडा से भी सरलता से लग जाता है। 'श्रद्धा हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु । (ऋगवेद 10–151–4)।' इन्हीं सब के आधार पर 'कामायनी' की कथा–सृष्टि हुई है। हॉ, कामायनी की कथा श्रृखला मिलाने के लिए कही–कहीं थोडी बहुत कल्पना को भी काम मे ले आने का अधिकार मै नही छोड सका हूँ।'[13]

गठन और प्रवाह मे कुछ सामान्य दोषो के बावजूद, समवेतता यह सुगठित और प्रवाह युक्त है। पूरी कथा स्वाभाविक गति से आगे बढकर आनन्द सर्ग के केन्द्र बिन्दु पर पहुँचती है। अनावश्यक घटनाये

बिल्कुल नहीं हैं इसी कारण इसमे महाकाव्योचित घनत्व है। बाह्य विस्तार की दृष्टि से इसका कथानक बहुत महाकाव्योचित नही है, किन्तु यह सकारण है। 'कामायनी' प्रिय प्रवास या साकेत की तरह वर्णनात्मक और घटना प्रधान काव्य न होकर छायावादी प्रवृत्ति के अनुरूप अन्तर्मुखी, गीतितत्व–प्रधान और विश्लेषण–प्रधान महाकाव्य है। इसमे विस्तृत इतिवृत्तात्मकता के अभाव के पूर्ति भावनात्मक पक्ष की प्रबलता तथा मानसिक धरातल की विशदता एव गहराई से हो गयी है। इसी कारण इसे कुछ लोगो ने प्रगीतात्मक महाकाव्य कहा है। इसका का कथानक एक तो बाह्य धरातल पर चलता है, किन्तु इस बाह्य का आयाम अधिक नहीं है। दूसरी ओर, यह आन्तरिक धरातल पर मानव–चेतना तथा उसके अन्तर्द्वन्द्वो को लेकर आगे बढता है और इस रूप मे इस कथानक मे महाकाव्योचित आयाम, सघनता एव सशक्तता है। कथानक की सारी शक्ति, उसकी सारी गरिमा उसके आन्तरिक रूप मे ही है, जहॉ यह विश्व के अन्य महाकाव्यो की तरह एक व्यक्ति, एक वश या एक जाति जीवन गाथा न होकर समग्र मानवता के विकास गाथा है।

जहॉ तक मानव जीवन की अधिकाधिक समस्याओ, भावो और परिस्थितियो को लेने का प्रश्न है, इसमे बाह्य जगत को कम लिया गया है। 'कामायनी' मे मानव चेतना और उसके भाव जगत को पर्याप्त गहराई से लिया गया है। मानसिक भावो के विश्लेषण प्रधान इस महाकाव्य के बहुत से सर्गों के नाम तो भावो पर ही आधारित हैं। कवि ने भावो का चित्रण गहराई से किया है, साथ ही भावो के ये चित्र सजीव और मार्मिक हैं। वस्तुत अन्तर्जगत के चित्रण की दिशा मे इस महाकाव्य ने काव्य–जगत को एक नई दिशा दी है। यो भौतिक जगत के भी अनेक दृश्य, बाते, परिस्थितियॉ, सघर्ष आदि इसमे आये है और बडे ही जीवत ढग से चित्रित किये गये है। अपनी मूल चिता और परिकल्पना मे कामायनी युग काव्य है।[14]

पात्रो की उदात्तता की दृष्टि से भी 'कामायनी' उच्चकोटि की है। यह नायिका प्रधान प्रबन्ध है। भारतीय दृष्टि से नायक में जो धीरोदात्तता आपेक्षित है, वह श्रद्धा मे पूर्ण रूपेण है। इसमे नायक मनु अपने प्रारम्भिक जीवन मे पतित तथा तामसिक गुणो के प्रतीक है, किन्तु बाद मे उनमे भी उदात्तता की गरिमा के दर्शन होते हैं। मनु को प्रसाद ने आदर्श का पुतला न बनाकर मानवोचित दुर्बलताओ से युक्त चित्रित किया है, जो उन्हे अधिक जीवंत बना देता है। यो भी इस सृष्टि के आदि पुरुष होने के नाते वे

नायकत्व के सर्वथा अधिकारी है। इडा और मानव का व्यक्तित्व भी पर्याप्त उच्च है। इडा आरभ मे बुद्धिवाद के अतिरेक से आच्छादित होने पर भी महाकाव्योचित है। प्राय महाकाव्यो मे प्रतिनायक या खलनायक भी होता है, जिसके कारण सघर्ष की तीव्रता बढती है। रुपकत्व के कारण कामायनी मे मानव की तामसिक प्रवृत्तियॉ ही प्रतिनायक जैसी हैं और उनसे आरभ मे तो मनु अभिभूत होते हैं, किन्तु अन्त मे उन्हे पराजित करके मानवता को विजयिनी बनाते है।

महाकाव्य देश–काल मे बॅधा या उनसे सम्बद्ध होता हुआ भी इस बात मे उनमे ऊपर होता है कि उसके अनेक अकन, विश्लेषण, समाधान, सार्वकालिक और सार्वदेशिक होते हैं। 'कामायनी' मे यह गुण भी है। 'कामायनी' मे सृष्टि का आदि युग चित्रित है। आज के वर्ग–भेद, ऊॅच–नीच, छोटे–बडे, शासक–शासित, शोषक–शोषित, नारी का स्वातन्त्र्य सघर्ष या विश्वबन्धुत्व, समत्व आदि भी स्पष्ट या सकेत रूप मे आये हैं। उदाहरणार्थ–

'वर्गों की खाई बन फैली कभी नही जो जुडने को।

× × × × ×

शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।'

आन्तरिक तथा बाह्य अनेक धरातलो पर जो समस्याऍ ली गयी है, उनमे कई शाश्वत और सार्वकालिक है।

महाकाव्यो मे उद्‌देश्य की महानता सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। इस दृष्टि से 'कामायनी' सभवत विश्व साहित्य मे अप्रतिम है। वैसे तो महान उद्‌देश्य सभी महाकाव्यो मे होते है किन्तु वे प्राय विशिष्ट धर्म ,विशिष्ट वर्ग या विशिष्ट संस्कृति के लोगो के लिए होते हैं। प्रसाद ने इन सारी सीमाओ को लॉघकर मानव मात्र के लिए सदेश दिया है। वह सदेश अन्धविश्वासपूर्ण धर्म, पुराण या इस तरह की किसी अन्य भित्ति पर आधारित न होकर वैज्ञानिक और मनोविज्ञान से अनुमोदित है। आज मनुष्य बौद्धिक और भौतिक अतिरेक से पीडित और स्वार्थ की कारा मे बन्द होने के कारण बडी असहायावस्था मे तथा अशान्त है। प्रसाद इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सामजस्य एव बुद्धि तथा हृदय के समन्वय द्वारा प्रेम के 'स्व' की परिधि विस्तृत करके 'स्व' और 'पर' का भेद मिटाकर हर प्रकार की समरसता स्थापित करने का

सदेश देते हैं। इसी पथ पर चल कर शाश्वत मानव मूल्यो की प्रतिष्ठा हो सकेगी और टूटा तथा अस्वस्थ मानव–जीवन स्वस्थ, पूर्ण और शान्त हो सकेगा। प्रसाद ने लिखा है–

'शापित न यहॉ कोई,
तापित न यहॉ कोई।'

इस छद मे उसी स्वस्थ समाज का चित्र दिया गया है। इस महान उद्देश्य की प्रेरणा कवि को बौद्धो के मध्यम मार्ग, शैव दर्शन की समरसता तथा आधुनिक युग के मानववाद एव डार्विन के विकासवाद आदि विभिन्न स्रोतो से मिली ज्ञात होती है।

भारतीय दृष्टि से महाकाव्य का उद्देश्य अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति है। 'कामायनी' का उद्देश्य भी मोक्ष कहा जा सकता है, किन्तु मोक्ष केवल उस लोक का न होकर इस लोक का भी है। उसके आधार पर हम जीते जी मोक्ष के आनद के भागी हो सकते हैं। प्रसाद भाव, कर्म और ज्ञान के सामजस्य द्वारा समरसता और आनन्द की सिद्धि का सदेश देते है। आज के जीवन मे इन तीनो का अलगाव और असामजस्य मानव जीवन की सबसे बडी विडम्बना है। तीनो का समन्वय, मानव जीवन की मूल और सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या का निश्चय ही चिरन्तन समाधान है। दर्शन और मनोविज्ञान की सुदृढ पीठिका पर आधारित प्रसाद के चिन्तन की यह गरिमा उनकी विराट प्रतिभा का प्रतिफल है।

'कामायनी' अपने बाह्य या कला–पक्ष की दृष्टि से भी भव्य है उसकी कला की महाकाव्योचित गरिमा असदिग्ध है। कामायनी की भाषा पग–पग पर प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता एव चित्रात्मकता के सहज स्वाभाविक अभूषणो से अलकृत है। शब्द–शिल्पी प्रसाद ने अपनी सुकोमल शब्दावली को इस ढग से सजाया है कि भाव जैसे छलक पडते है। उनकी प्रगल्भ कल्पना अप्रस्तुत चयन मे इतनी कुशल है कि उनका अलकरण–विधान भावो को मूर्त कर देता है। समृद्ध बिम्ब–योजना, अलकारो का अबोझिल, सहज, भावोचित तथा व्यजक प्रयोग, रसानुकूल उतार–चढाव उनकी भाषा की कुछ अन्य विशेषताऍ हैं । निष्कर्षत 'कामायनी' की शैली प्रणय भावना और मादक सौन्दर्य जैसे मधुर तथा प्रलय जैसे भयानक मनस्थितियो जैसे सूक्ष्म और बाह्य रूपो जैसे स्थूल सभी के चित्रण मे अत्यन्त समर्थ है। छन्द भी भाव एव विषय के अनुकूल हैं।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

विद्रोही चेतना के कवि

अपने विद्रोही स्वर और असमझौतावादी रुख के कारण निराला का छायावादी कवियो मे एक विशिष्ट स्थान है । अपने कृतित्व के आरम्भ मे उन्हे प्रकाशको, सम्पादको एव आलोचको के विरोध का सामना करना पडा। निराला को आलोचको से अधिक उनके पाठको ने स्वीकारा। प्रारम्भ मे उनके काव्य को समझने की जिन आलोचको ने चेष्टा की, उनमे आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी सबसे महत्वपूर्ण हैं। बाद मे डॉ0 रामविलास शर्मा ने निराला के व्यक्तित्व एव कृतित्व का अनुशीलन कर साहित्य जगत को निराला के महत्व से अवगत कराया।

निराला के जीवन और उनकी रचना मे अन्तर्विरोध कम है। उन्होने जैसा जीवन जिया वैसा ही लिखा भी। फिर भी अपनी वैयक्तिक अनुभूतियो को उन्होने अपनी रचना मे एक सीमा से अधिक प्रक्षेपित नहीं होने दिया। जीवन के उतार–चढाव मे वे वृहत्तर समाज से जुडने की सामर्थ्य बढा लेते थे, जिस कारण अन्तर्मुखी होने से बच जाते थे। उनका जीवन सघर्ष भरा था, जिसे उन्होने मौन भाव से स्वीकारा था। दु ख उन्हे अभिभूत नहीं कर सका, यद्यपि अन्तिम क्षणो मे वह उन्हे तोड गया। उनकी रचनाओ मे कई ऐसे सकेत मिलते हैं। 'सरोज–स्मृति' की अन्तिम पक्तियॉ इस बात का प्रमाण है कि उन्हे अपनी व्यथा का बखान करना अरुचिकर प्रतीत होता था–

'दुख ही जीवन की कथा रही।
क्या कहूँ आज जो नही कही।।'

निराला अपने जीवन के अन्तिम क्षणो तक सृजनरत रहे। इस बीच भारतीय इतिहास ने कई आरोह–अवरोह देखे और आजादी भी आयी। बहुत से लेखको ने सुविधा की नई स्थितियो से समझौता कर लिया, पर निराला की सघर्ष गाथा स्वतत्रता की प्राप्ति के बाद भी समाप्त नही हुई। उनके जीवन मे कुछ ऐसी दुखद घटनाए घटी जिन्होने कई बार उन्हे तोड कर रख दिया, फिर भी बार–बार वे उनसे उबर जाते थे। भीतर का संकल्प एक अदम्य जिजीविषा, जीवन से निरन्तर साक्षात्कार, वेदान्ती दृष्टि–

इन सबने मिलकर उनकी लम्बी सृजन यात्रा के पाथेय दिया। उनकी आन्तरिक पीडाये कई बार कविताओ मे झॉकती हैं, पर उनके काव्य मे ऐसे क्षण बहुत कम मिलेगे जब कोई विषय–परिस्थिति उन्हे पूरी तरह दबोच ले। वे अपनी वैयक्तिक पीडाओ को अपने रचनाकार पर कभी हावी नही होने देते। रचना मे उनकी तटस्थता अथवा निर्वैयक्तिकता उनके कवित्व को उच्चकोटि का प्रमाणित करती है।

हिन्दी साहित्य के स्वच्छन्दतावादी कवियो मे अपनी वैयक्तिक अनुभूतियो से ऊपर उठने की शक्ति सबसे अधिक निराला मे है। व्यक्ति–सवेदन को समाज–सवेदन से जोड सकने की शक्ति उनमे सबसे अधिक है। इसलिए उनकी कविता मे गहराई के साथ जीवन का विस्तार भी है। निराला ने अपने जीवन और विचारधारा के कुछ महत्वपूर्ण सूत्र अपनी रचनाओ मे दिये हैं। इसके अतिरिक्त कवि के समकालीन मित्रो ने अपने सस्मरणो क़े माध्यम से भी सकेत किये हैं। डॉ0 रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' नाम से महाकवि की सम्पूर्ण जीवनी तैयार की है। निराला का प्रारम्भिक जीवन वैसवाडा एव बगाल मे बीता था, जहॉ के वातावरण का प्रभाव उन पर पडा था। बगाल मे रहते हुए निराला भारतीय नवजागरण के सर्वोत्तम धरातल से परिचित हुए। बगला काव्य और साहित्य के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप से साक्षात्कार करके निराला ने यही रामकृष्ण परमहस तथा विवेकानन्द के अद्वैत दर्शन को अपनाया, जो उनके काव्य का एक मुख्य पक्ष है। उन्होने 'रामकृष्ण कथामृत' तथा 'भारत मे विवेकानन्द' का अनुवाद किया। 'रवीन्द्र कविता कानन' मे उन्होने रवीन्द्रनाथ टैगोर के विषय मे एक लम्बी भूमिका लिखी और उनकी कविताओ का अनुवाद किया। इसी तरह आनन्द मठ, कपाल कुण्डला तथा दुर्गेश नन्दिनी का भी उन्होने अनुवाद किया। डॉ0 राम रतन भटनागर ने अपने ग्रन्थ 'निराला और नवजागरण' मे निराला के व्यक्तित्व की भूमिका के रूप मे भारतीय नव जागरण का विस्तृत विवेचन करते हुए लिखा है–

'निराला हिन्दी को बगाल के रेनसॉ की देन हैं। वह शताब्दी के अन्त मे महिषादल राज्य मे पलकर बगाल की शस्य श्यामला भूमि और नारिकेल कुंजो की शीतल जलवायु से रस खीच कर बडे होते है और अठारह वर्षों तक बगाल के नये जीवन का अंग बने रहते है। दो वर्ष घर (गढाकोला) रहकर वह जीविकोपार्जन के लिए कलकत्ता पहुँचते हैं और कलकत्ता के दस वर्षों के अपने जीवन मे श्री रामकृष्ण

मिशन की अनेक प्रवृत्तियो और 'मतवाला' से सम्बधित होकर सास्कृतिक साधना के सोपानो पर ऊँचे–ऊँचे चढते जाते है।'[15]

निराला आधुनिक हिन्दी काव्य मे वसत के अग्रदूत है। उनका काव्य स्वच्छन्दतावाद को अर्थ दीप्ति देता है उसके नये आयाम विकसित करता है और वैयक्तिक प्रतिक्रियाओ से लेकर प्रगति, प्रयोग तक जाता है। निराला का स्वाभिमान उन्हे असमझौतावादी बनाता है। इसीलिए राजकीय स्तर पर वे अनपुजे रह गये। यद्यपि हिन्दी जनता का जितना आदर–सम्मान उन्हे मिला, बहुत कम लोगो को वह सम्मान नसीब होता है। निराला सवेदन की द्रवणशीलता मे भिक्षुक और विधवा को अपनी ममता देते हैं। इलाहाबाद के फुटपाथ पर पत्थर तोडती हुई मजदूरनी के प्रति सहानुभति व्यक्त करते हैं, पर स्वाभिमानी ऐसे कि गॉधी और नेहरू से भी हिन्दी के मामले मे टक्कर ले सकते है। उच्चतर मानवमूल्यो के लिए जीने वाले निराला टूट गये, पर झुके नहीं, अपना ईमान बेचने से उन्होने इन्कार कर दिया। सबसे बडी बात यह कि अभावो और दर्दों के बावजूद अपनी रचना को अपराजेय रखा । वे सच्चे अर्थों मे मानवीय सदाशयता से प्रेरित सार्थक विद्रोह के रचनाकार है। उन्होने जाति, धर्म, सम्प्रदाय की जर्जर मान्यताओ को चुनौती दी। 'प्रेम सगीत' मे उन्होने व्यग्य किया–

'ब्राह्मन का लडका
मैं उसको प्यार करता हूँ
जात की कहारिन वह
मेरे घर की पनहारिन वह
आती है होते तडका
उसके पीछे मैं मरता हूँ।'[16]

निराला के व्यक्तित्व के बनने मे कई प्रकार के प्रभाव सक्रिय रहे है, पर उन्होने अपनी विद्रोही चेतना मे उन सब का समाहार किया। निराला मूलत स्वच्छन्दतावादी व्यक्तित्व के रचनाकार है, पर इस रोमानी आदोलन के जितने पक्ष उनकी रचनाओ मे उजागर हुए हैं उतने किसी मे नही प्राप्त होते। उन्होने स्वच्छन्दतावादी काव्य को विस्तृत आयाम दिया। इसलिए हिन्दी प्रगतिवाद उनमे अपना प्रस्थान बिन्दु

स्वीकार करता है और नया हिन्दी काव्य उनमे अपना पूर्वाभास देखता है। निराला की कृतियो मे भारतीय नवजागरण अपनी पूरी सर्जनात्मकता मे प्रतिफलित है। महिषादल की सुरम्य प्रकृति उनके काव्य मे विद्यमान है। निराला श्रेष्ठ ऋतुगीतो के निर्माता हैं। वैसवाडे का पिछडा समाज उनकी कृतियो को यथार्थवादी तेवर देता है। वेदान्त ने उन्हे आत्मविश्वासी बनाया और उनकी कविताओ को एक आध्यात्मिक आशय से सम्पन्न किया। इस प्रकार उनकी रचनाये कई भूमियो का सस्पर्श करती हैं और उनकी कृतियो को वैविध्य देती हैं।

काव्य कृतियाँ

निराला का कृतित्व वैविध्य भरा है। उन्होने गद्य–पद्य दोनो की सभी विधाओ मे रचनाएँ की है। निराला ने काव्य के क्षेत्र मे 'अनामिका' के साथ प्रवेश किया, जिसका प्रकाशन 1922–23 ई0 मे हुआ था। उस समय इस सग्रह मे केवल सात कविताएँ थी जो बाद मे अन्य सकलनो मे प्रकाशित हुईं। निराला की प्रतिनिधि कविताओ का सकलन 'परिमल' 1930 ई0 मे प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'गीतिका' का प्रकाशन हुआ जिसमे 101 गीतो का सकलन है। 1937 ई0 मे 'अनामिका' का दूसरी बार प्रकाशन हुआ । 1938 ई0 मे 'तुलसीदास' काव्य प्रकाशित हुआ। 1942 ई0 मे व्यग्य कृति 'कुकुरमुत्ता' का प्रकाशन हुआ। 1943 ई0 मे 'अणिमा' सकलन सामने आया। 1946 ई0 मे 'बेला' और 'नये पत्ते' नाम से दो सकलन सामने आये। 1950 ई0 मे 'अर्चना', 1953 ई0 मे 'आराधना' तथा 1954 ई0 मे 'गीत कुज' सग्रह प्रकाशित हुए। निराला का अतिम काव्य सकलन 'साध्य काकली' (1969 ई0) है, जिसका प्रकाशन उनके मरणोपरान्त हुआ।

परिमल–गीतिका : वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व का आभास

यह निराला की कविताओ का प्रथम प्रतिनिधि सकलन है। इसके पूर्व प्रकाशित 'अनामिका' की कविताएँ धीरे–धीरे अन्य सकलनों मे स्थान पा गईं। 'परिमल' की भूमिका मे निराला ने घोषणा की– 'मनुष्यो की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यो की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना। मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, प्रत्युत उससे साहित्य मे एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।'[17] इस भूमिका मे उन्होने स्वच्छन्दतावादी काव्य की कई स्थापनाओ को

स्पष्ट किया। उन्होने काव्य की मुक्त स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए कहा कि –'साहित्य की मुक्ति उसके काव्य मे दीख पडती है। इस तरह जाति के मुक्ति–प्रयास का पता चलता है। धीरे–धीरे चित्र प्रियता छूटने लगती है, मन एक खुली हुई प्रशस्त भूमि मे विहार करने लगता है।'[18] इसीलिए निराला ने अपनी स्वच्छन्दतावादी वृत्तियो के लिए मुक्त छन्द अपनाया जिसे उन्होने जातीय छन्द घोषित किया। काव्य की मुक्ति का जो सकल्प निराला ने 'परिमल' की भूमिका मे लिया उससे उनके विद्रोही स्वभाव का पता चलता है। उन्होने बराबर मुक्ति की कामना की और हर प्रकार के निरर्थक बन्धनो को अस्वीकार किया।

'परिमल' की कविताएँ तीन खण्डो मे विभक्त हैं। तीनो खण्डो मे कुल अठहत्तर कविताएँ सग्रहीत हैं। सकलन के प्रारम्भ मे एक लघु प्रार्थना है– 'जग को ज्योतिर्मय कर दो'– कवि प्रार्थना करता है कि प्रिय, पृथ्वी के तरु–तृण गुल्म जीवन्मृत है, इसमे नूतन जीवन भर दो। इससे निराला की मानवीय सदाशयता का सकेत मिलता है। प्रथम खण्ड के गीतो मे कवि ने अपनी रोमानी भावना का परिचय दिया है । यद्यपि इनमे बौद्धिक अनुभूति का योग है, पर इसे मात्र भावात्मक उच्छ्वास नही कहा जा सकता। कई बार इनमे बौद्धिक प्रतिक्रियाओ को प्रमुखता मिली है जिसे हम कवि का आत्म सयम भी कह सकते हैं। प्रथम गीत 'मौन' मे ही कवि की सयमित अभिव्यक्ति दिखाई देती है, जो निराला के भावानुशासन से सम्बद्ध है। 'प्रिया के प्रति' जैसी कविताओ मे कवि को प्रिया का स्मरण हो आता है, पर वह अपनी स्वच्छन्दतावादी भावनाओ को इन्द्रियो से ऊपर उठा सकने मे सचेष्ट हैं। इस खण्ड मे प्रकृति चित्रो की पर्याप्त सख्या है। वासती, वसत समीर, तरगो के प्रति, जलद के प्रति आदि मे प्रकृति दृश्यो का उपयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त गीतो मे भी प्रकृति की छवियाँ अकित हुई हैं। 'निशा के उर की कली खिली' गीत मे निशा–सुन्दरी का चित्र है, एक प्रकार से उसका मानवीकरण किया गया है–

'खडी सोचती नमित नयन मुख
रखती पग उर काँप पुलक सुख,
हँस अपने ही आप सकुचि धनि
गति मृदु मद चली।

प्रकृति और मनुष्य को निकट लाने की चेष्टा स्वच्छन्दतावादी काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति है। इसे प्रकृति पर मानवीय भावो का आरोपण कहा जाता है, पर निराला मे यह स्थिति अधिक सश्लिष्ट है। एक ओर प्रकृति दृश्य हैं, दूसरी ओर कवि की वैयक्तिक अनुभूतियॉ और इन्ही के साथ विराट मानव जगत जिसके प्रति कवि गहन दायित्व की भावना से सम्पन्न है। इसीलिए 'प्रभाती' जैसी कविताओ मे ये स्थितियॉ एक साथ सयोजित दिखाई देती हैं। भोर का समय है, रात लगभग बीत चुकी है, प्रिया के लिए जागरण गीत गाया जा रहा है। अन्धकार से प्रकाश मे लाने का आवाहन है, पर यह मात्र रोमानी भावना नहीं है। यह चेतना के जागरण का आध्यात्मिक गीत हो सकता है और राष्ट्र के लिए उद्‌बोधन भी। यद्यपि सम्बोधन रूप मे प्रिय का उपयोग है–

'जीवन प्रसून वह वृन्तहीन
खुल गया उषा नभ मे नवीन,
धाराऍ ज्योति सुरभ उर भर
बह चली चतुर्दिक कर्म लीन,
तुम भी निज तरुण तरग खोल
नव अरुण सग हो लो–
मुद्रित दृग खोलो।'

प्रथम खण्ड की लम्बी कविता है– 'यमुना के प्रति'। यमुना के माध्यम से कवि भारत के पराजित वर्तमान का सकेत करता है। उसे बार–बार उस वैभव–पूर्ण अतीत का स्मरण हो आता है, जब श्याम यमुना के कूल कछारो पर बशी बजाया करते थे। वह बशी बट कहॉ गया ? नट नागर श्याम कहॉ गये ? वृन्दावन धाम कहॉ है ? आज तो ऐसा लगता है कि मानो यमुना विषाद मे डूबी हुई अपने सुखकर अतीत का स्मरण मात्र करके रह जाती है। उसकी स्थिति वियोगमग्ना नायिका के समान है। कवि चाहता तो यमुना के माध्यम से भारत की पिछली सास्कृतिक स्थिति को उभार सकता था, क्योकि जिन कृष्ण के क्रिया–कलापो का साक्ष्य यमुना उपस्थित करती है, वे केवल रसिक शिरोमणि व्यक्ति मात्र नही है। वे महाभारत के सूत्रधार भी हैं और इस दृष्टि से राजनीतिज्ञ भी। जो उगलियॉ बशी बजाकर वशीकरण मत्र

पढना जानती है, वे ही गोवर्धन पर्वत धारण कर सकती है और सुदर्शन चक्र भी उनमे है। पर 'यमुना के प्रति' कविता निराला की स्वच्छन्दतावादी रोमानी भावनाओ को व्यक्त करती है। यहॉ यमुना को मुख्य रूप से कृष्ण के रसिक रूप की याद आती है–

'कहॉ छलकते अब वैसे ही
ब्रज नागरियो के नागर ?
कहॉ भोगते अब वैसे ही
बाहु, उरोज, अधर, अम्बर ?
बॅधा बाहुओ मे घट क्षण–क्षण
कहॉ प्रकट बकता अपवाद ?
अलको को, किशोर पलको को
कहॉ वायु देती सवाद ?'

'परिमल' के द्वितीय खण्ड मे कविताओ का स्वरूप लगभग वही है, कुछ प्रेम कविताए है, जहॉ कवि अपनी निजी भावनाओ को व्यक्त करता है। पर इनकी सख्या कम है जिससे प्रमाणित होता है कि कवि स्वय से बाहर झॉकने की चेष्टा मे है। वह अपने अनुभूति–जगत का विस्तार करना चाहता है और उसकी चेष्टा है कि जीवन के अधिकाधिक चित्र उसकी चेतना मे सम्मिलित हो। इसी खण्ड मे विधवा, भिक्षुक जैसी कविताए भी है जिन्हे निराला की प्रगतिशील भावना के आरम्भ रूप मे स्वीकारा जाता है।

द्वितीय खण्ड के अत में 'बादल–राग' शीर्षक से छ कविताए हैं। एक ही शीर्षक से कई कविताओ की भाव भूमि अलग–अलग है। प्रथम कविता मे कवि मेघो से प्रार्थना करता है– 'मुझे गगन का सघन छोर दिखा ताकि कवि का स्वय का आकाश विस्तृत हो।' दूसरी कविता मे 'मेघ', विप्लव के नव जलधर हैं, तीसरे मे वे धरा के सेवक हैं, जिन्हें पाकर व्याकुल श्यामा के आधरो की प्यास मिटेगी। चौथी और पॉचवी कविता में भी इसी प्रकार के भाव हैं, जिनमे सृष्टि मेघों से सुख पाती है। 'बादल राग' की छठी कविता मे बादल को क्रान्ति का अग्रदूत माना गया है। इस कविता की रचना करते समय विद्रोही निराला के समक्ष भारतीय कृषक की शोषित स्थिति का चित्र है। उन्होने शोषित समाज की विषमताओ का

सकेत किया है। विप्लव के बादलो के स्वागत के लिए हर छोटा पौधा तैयार है क्योकि– 'विप्लव के रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।'

'ध्वनि' नामक प्रसिद्ध गीत निराला की आस्था को व्यक्त करता है। स्वय को विराट जीवन से जोडकर ही कवि ने यह आस्था प्राप्त की है। इस गीत की विशेषता है कि निराला ने आस्था–विश्वास की जो शक्ति पायी है, उसका उपयोग वे समाज के लिए करना चाहते है। यह उनकी चेतना का अरुणोदय है। वे निद्रित कलियो पर अपना स्वप्न–मृदुल कर फेर कर एक नया मनोहर प्रत्यूष जगाना चाहते है। पुष्प–पुष्प की तन्द्रालस लालसा खीच लेना चाहते हैं। कवि की आस्था है–

'मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण
इसमे कहॉ मृत्यु
है जीवन ही मेरा
अभी पडा है आगे सारा यौवन
स्वर्ण–किरण–कल्लोलो पर बहता रे यह बालक मन
मेरे ही अविकसित राग से
विकसित होगा बन्धु दिगन्त –
अभी न होगा मेरा अन्त
अभी–अभी ही तो आया है
मेरे वन मे मृदुल वसन्त

परिमल के तृतीय खण्ड का आरभ निराला की प्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' से होता है। यह निराला की आरंभिक कविताओ मे से एक है। सन् 1916 ई0 के आस–पास इसकी रचना हुंई थी, पर इसमे एक प्रौढता दिखाई देती है। विजन वन वल्लरी पर सोती हुई सुहाग–भरी स्नेह स्वप्न–मग्न, अमल–कोमल–तनु तरुणी जुही की कली प्रकृति की खुली भूमि प्रस्तुत करती है। सम्पूर्ण प्रकृति ही यहॉ प्रेम के क्रिया–व्यापार का खुला मच है। वसन्त के क्षणो मे दूरदेश के प्रेमी का सहसा अपनी प्रिया के लिए आकुल हो उठना और संसार के सारे अवरोध 'उपवन– सर– सरित – गहन – गिरि – कानन –

कुज – लता – पुज' को पार कर, प्रिया के पास पहुॅच जाना, प्रिय की अदम्य आकाक्षा और उसके विद्रोही स्वभाव का संकेत करते है। 'जूही की कली' मे निराला भारतीय समाज की बहुसख्यक इकाई के जीवन मे प्रणय–प्रसग और उसकी सार्थक परिणति के मार्ग में आने वाली बाधाओ की ओर सकेत करना चाहते है। यह कविता हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य मे केवल एक नये मोड की सूचना नहीं देती, वरन् वह रोमानी काव्य की नयी–नयी सभावनाओ का सकेत भी करती है। इसमे निराला मानव के प्रेम–व्यापार के लिए जूही की कली अथवा मलयानिल जैसे प्रकृति रूपो का ऐकान्तिक उपयोग नही करते, वरन् सारा खेल प्रकृति के विस्तृत रगमच पर घटित होता है। यह निराला की स्वच्छन्द वृत्ति है, जो मनुष्य के निजी सम्बन्धो के लिए भी अधिक खुली भूमि अपनाती है। इसीलिए मिलन के घनिष्ठतम् क्षणो मे भी कवि एक निर्लिप्तता जैसी बरतता दिखाई देता है। दृश्य को उसकी गतिशीलता मे एक छोटे से गीत मे सपूर्ण कर देना कवि की अभिव्यक्ति कौशल का भी प्रमाण है और अकुठित स्वच्छन्दतावादी की मिसाल भी।

'जागो फिर एक बार' शीर्षक से दो मुक्त छन्द की कविताएॅ हैं। एक ही शीर्षक होते हुए दोनो लगभग विपरीत भाव–भूमि पर उपस्थित हैं। पहली कविता प्रिया द्वारा प्रिय के लिए गाया गया गीत है। ऊपरी तौर पर उसमे रोमानी भावना दिखाई दे सकती है, पर कविता का आशय गहरा है। एक ओर तत्कालीन सदर्भो मे वह राष्ट्र के लिए उद्‌बोधन का सकेत हो सकता है दूसरी ओर दार्शनिक स्तर पर यह चेतना के जागरण का गीत कहा जा सकता है। दूसरी कविता गुरु गोविन्द सिह के माध्यम से देश प्रेम की भावना को व्यक्त करती है और ओजगुण सम्पन्न है।

इस सग्रह की अतिम कविता 'पचवटी प्रसग' है, जिसमे कवि ने नाट्य शिल्प अपनाया है। प्रथम खण्ड मे सीता अयोध्या के बधे राजसी जीवन और वन की खुली जिन्दगी मे अन्तर देखती हैं और राम स्वीकारते है कि वनस्थली चारुचित्रा है। वे एक जीवन दर्शन प्रस्तुत करते हैं, जो आत्मा के विस्तार पर बल देता है और जो निराला की विचार भूमि की ही अभिव्यक्ति है–

'छोटे से घर की लघु सीमा मे

बॅधे है क्षुद्र भाव

यह सच है प्रिये।

प्रेम का पयोधि तो उमडता है

सदा ही निस्सीम भू पर ।

दूसरा खण्ड लक्ष्मण के वक्तव्य से निर्मित है। लम्बे स्वगत कथन मे लक्ष्मण सीता को मॉ कहकर मन–ही–मन उन्हे आदि–शक्ति–रुपिणी स्वीकारते हैं। तीसरे खण्ड मे सूर्पणखा का स्वगत कथन है जिससे उसके रूपगर्विता होने का पता चलता है। निराला ने सूर्पणखा के सौन्दर्य चित्रण मे स्वच्छन्दतावादी शिल्प का प्रयोग किया है। नख–शिख सौन्दर्य–वर्णन का चित्र है–

'देख यह कपोल कठ

बाहु बल्ली कर सरोज

उन्नत उरोज पीन क्षीण कटि

नितम्ब भार चरण सुकुमार

गति मन्द–मन्द

छूट जाता धैर्य ऋषि–मुनियो का

देवो–भोगियो की तो बात ही निराली है।'

चौथे खण्ड मे लक्ष्मण की दार्शनिक समस्याओ का समाधान करते हुए राम जीवन–जगत की व्याख्या करते हैं और व्यष्टि–समष्टि के सम्बन्धो पर विचार करते हैं। पॉचवे खण्ड मे सूर्पणखा राम के प्रति अपना स्नेह व्यक्त करते हुए विवाह प्रस्ताव करती है, राम स्वय को विवाहित कहकर लक्ष्मण की ओर सकेत करते हैं। लक्ष्मण द्वारा तिरस्कार करने पर सूर्पणखा क्रोधित हो जाती है। लक्ष्मण उसके नाक–कान काट लेते है। यही पचवटी प्रसग समाप्त हो जाता है।

'परिमल' निराला के कवि–व्यक्तित्व की सभावनाओ को हमारे सामने लाता है। उनके काव्य में पर्याप्त वैविध्य के दर्शन होते है। अपने प्रथम चरण मे ही एकाधिक भाव–खण्डो को काव्य मे सयोजित कर सकना यह प्रमाणित करता है कि स्वच्छन्दतावादी वृत्ति के कवि होते हुए भी निराला बाहरी दुनिया से जुडे हुए है यद्यपि उसे समझने के लिए वे अपनी दृष्टि का आश्रय लेते हैं। 'परिमल' मे वैयक्तिक अनुभूतियॉ हैं, जो प्रेम–भावना समन्वित गीतात्मक कविताओ मे व्यक्त हुई है। प्रिय–प्रिया के कई सघन

अनुभूति–चित्र हमे देखने को मिलते है– मौन, निवेदन, अजलि, स्मृति, प्रिया के प्रति आदि। दूसरे प्रकार की कविताएँ ऋतुओ से सम्बद्ध है। कुछ आध्यात्मिक भावना समन्वित कविताएँ भी है। कुछ प्रगतिशील भावना से जुडी कविताएँ भी है। 'परिमल' सग्रह मे निराला ने मुक्त छन्द मे विभिन्न भाव–भूमि की कविताएँ सग्रहीत की है। भाषा के क्षेत्र मे उन्होने सस्कृत का आश्रय लिया है। उनकी शब्दावली प्राजल है। 'परिमल' मे निराला अपने वैविध्य भरे कवित्व का आभास देते हैं।

गीतिका

यह गीतो का सग्रह है। इस सग्रह की भूमिका मे निराला ने भारतीय गीत–सृष्टि का इतिवृत्त प्रस्तुत करने के बाद अपना मौलिक दृष्टिकोण स्पष्ट किया है। यहाँ सगीत के विषय मे उनके शास्त्रीय ज्ञान का भी पता चलता है। आरभ मे सरस्वती वन्दना है। इसमे कवि वीणावादिनि से सामाजिक वर की कामना करता है जिससे चेतना का विकास और जीवन को नयी दिशा दे सकने मे इन गीतो का सक्रिय योग हो –

'वर दे, वीणा वादिनि वर दे

× × × × ×

काट अन्ध–उर के बन्धन स्तर

बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर

कलुष भरे तम हर प्रकाश भर

जगमग जग कर दे।'

'गीतिका' के गीत कई प्रकार की भाव भूमियो से गुजरते है। सर्वप्रथम प्रेम और सौन्दर्य के गीत हैं, जहाँ कवि की स्वच्छदतावादी वृत्तियाँ सजग है। 'गीतिका' मे प्रणय–भावना का एक ही सूत्र उभरता नहीं दिखाई देता, उसके कई रूप हमे देखने को मिलते हैं। प्रिय के साथ व्यतीत क्षणो की छवियाँ गीतकार के मानस में आती है और स्मृति की सहायता से वह उन्हे पुन. पुन पाना चाहता है। अधिकांश गीतो मे गीतकार अपनी प्रणयानुभूति को प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति देता है। कई बार अपनी वैयक्तिकता को

उदात्त भूमि पर ले जाने के लिए उसमे प्रकृति अथवा अधिक सामाजिक स्थितियो का प्रवेश कराया गया है। 'प्रिय यामिनी जागी' गीत के अन्त मे किसी ऐसी ग्रामवधू का चित्र भी सम्मिलित होता दिखाई देता है जो रात्रि के अतिम प्रहर मे ही अपनी दिनचर्या आरम्भ कर देती है– चक्की पीसती या धान कूटती हुई। एक ओर कवि की वैयक्तिक अनुभूतियॉ हैं, दूसरी ओर एक सामाजिक चित्र भी। इन दोनो का सयोजन यहॉ हुआ है।

'गीतिका' मे वैयक्तिक अनुभूतियो पर कवि की विजय एक महत्वपूर्ण तथ्य है, जिससे गीतो को नयी–नयी दिशाए मिलती हैं। कवि के भाव लोक मे नयी दीप्ति आती है और व्यक्ति–सवेदन, समाज–सवेदन से जुडते है। विद्यादेवी सरस्वती और शक्ति की देवी दुर्गा की उपासना से कवि का आत्मविश्वास लौटता है। एक प्रकार से यह काव्य पुनर्जन्म का क्षण भी कहा जा सकता है– जब कवि नये सकल्पो के साथ रचना मे अग्रसर होता है। वह कहता है– 'जय जीवन की जीवन पर।'

'गीतिका' मे ऋतु चित्रो की पर्याप्त सख्या है। वर्षा और वसन्त निराला की प्रिय ऋतुएॅ है जिनमे से वर्षा तो उनके सामने अनेक रूपो मे आती है। बादल उनके लिए विभिन्न अनुभूतियो के वाहक बने है। वर्षा के अतिरिक्त वसन्त और शिशिर का भी उन्होने वर्णन किया है। ये गीत निराला के प्रकृति–निरीक्षण और उसके प्रति उनकी रागात्मकता को व्यजित करते हैं। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो के कारण वे कई बार प्रकृति और मानव की भावनाओ को सयोजित करने की चेष्टा करते हैं।

अनामिका : स्वच्छन्दतावाद का प्रतिनिधित्व

अनामिका का प्रकाशन सन् 1937 ई0 मे हुआ। इसमे उनके नये तेवर और सामाजिक यथार्थ की उनकी पहचान भी साफ होती है। इसमे कुछ प्रेम, अध्यात्म के गीत है, कुछ बौद्धिक रचनाएॅ हैं, शोकगीत, यथार्थगीत तथा व्यंग्य रचनाएॅ है। इस सग्रह मे निराला का वैविध्य पूरी तरह खुल जाता है और स्वच्छन्दतावादी काव्य को नये आयाम मिल जाते हैं। धनन्जय वर्मा ने लिखा है– 'एक ही ग्रथ मे विरोधाभास का यह रूप उनकी व्यापकता और विविधता, विराटता और विस्तार का ही परिणाम है, हमारे मत मे सब दृष्टियो से 'अनामिका' निराला का ही नहीं, पूरे स्वच्छन्दतावादी युग का प्रतिनिधि काव्य–सग्रह है।[19]

'अनामिका' मे गीतो और छोटी कविताओ की सख्या कम होती गयी है तथा निराला वृहत्तर प्रयोगो मे अधिक रुचि लेने लगे है। यथार्थ जीवन की सपृक्ति बढ जाती है और कवि मात्र सदाशयता से सतुष्ट होता नहीं दिखता। उनकी चेतना मे समाज का वह वर्ग अपनी सपूर्ण विषमता मे प्रवेश करता है जिसे दलित शोषित कहा जाता है।

'अनामिका' की प्रथम कविता 'प्रेयसी' मे हम निराला के रोमानी तेवर, आध्यात्मिक स्वभाव के साथ ही उन्हे उस सामाजिक वैषम्य को छूते हुए देख सकते हैं जिसकी ओर वे अधिकाधिक उन्मुख होते गये और उन्होने स्थिति मे बदलाव के लिए व्यग्य तक का सहारा लिया। इसमे प्रकृति चित्रो के माध्यम से प्रिय–प्रिया के घनिष्ठ मिलन का सकेत है– सजल शिशिर धौत पुष्प ज्यो प्रात मे एकटक किरण–कुमारी को देखता है, अथवा प्रेयसी के शब्दो मे–

'याद है, उष काल –
प्रथम किरण कम्प प्राची के दृगों मे
प्रथम पुलक फुल्ल चुम्बित वसन्त की
मजरित लता पर
प्रथम विहग बालिकाओ का मुखर स्वर
प्रणय मिलन गान
प्रथम विकच कलि वृत्त पर नग्न तनु
प्राथमिक पवन के स्पर्श से कॉपती ।'[20]

× × × × ×

हुआ रूप दर्शन, जब कृतविद्य तुम मिले. ।[21]

यहॉ साधारण प्रिय–प्रिया का संगम नही है। निराला ने यहॉ दो ज्योति–छवियो का मिलन कराया है।

'अनामिका' की व्यग्य रचनाएँ वैयक्तिक प्रतिक्रियाओ से आरम्भ होकर सामाजिक भूमियो तक जाती है। हिन्दी के सुमनो के प्रति, मित्र के प्रति, वन–बेला, दान, नर्गिस आदि व्यग्य कविताएँ हैं। 'वह तोडती पत्थर'– यथार्थ चित्र है, जिसे हिन्दी की प्रगतिशील कविता स्वीकारा गया है।

'अनमिका' मे दो लम्बी कविताए है– सरोज स्मृति, राम की शक्ति पूजा। सरोज स्मृति की रचना 1935 ई0 मे हुई जब निराला की एक मात्र कन्या सरोज का असामयिक निधन हो गया था। राम की शक्ति पूजा की रचना 1936 ई0 मे हुई।

सरोज स्मृति : स्वच्छन्दतावाद की नयी यथार्थ भूमि

'सरोज स्मृति' एक करुण दस्तावेज है जो वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनो है। जिस समय निराला की पत्नी मनोहरा देवी का निधन हुआ, सरोज लगभग दो वर्ष की थी और निराला ने एक साथ पिता–माता का दायित्व निभाया था। उनके लिए बेटी सरोज प्रिया मनोहरा देवी का स्मृति–चिन्ह भी थी। जिन विषम परिस्थितियो मे निराला ने अपनी इकलौती बेटी को खोया था, वे नियति अथवा भाग्य से सम्बन्धित नही हैं। इनके पीछे निराला का साहित्य सेवा का धर्म, मूल्यो के लिए जीने की प्रबल आकाक्षा और इन सबके ऊपर– रचनाकार का स्वाभिमान है। पर एक शोषित समाज का अर्थ तन्त्र, प्रकाशको को घोषणा की पूरी छूट देता है। डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है कि जब सरोज जीवन से सघर्ष कर रही थी, निराला के कई पत्रो के बावजूद प्रकाशको मे इन्सानियत नही जागी थी। अर्थात् सरोज का निधन जिन कारणो से हुआ, उन तक निराला पहुँच जाते है–शोषण पर आधारित एक जर्जर सामाजिक व्यवस्था। इसीलिए पुत्री के दर्द मे डूबकर भी वे समाज की सडी–गली मान्यताओं पर हमला बोलते हैं। वे अपने रचना–धर्म को ही धिक्कारने लगते हैं, स्वय को कोसते हैं–

'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित कर न सका
जाना तो अर्थोगमोपाय
पर रहा सदा सकुचित काय
लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर

हारता रहा मै स्वार्थ समर ।'[22]

कविता के प्रारभ मे पश्चाताप और विषाद की सम्मिलित पक्तियॉ हैं, फिर धीरे–धीरे कवि सरोज के बाल्यकाल के चित्र उरेहता है। ये दृश्य सहज स्वाभाविक हैं – भाई की मार खाना, उत्फुल्ल दृग, छल–छल रोना आदि। इसी के बीच सम्पादको की अज्ञानता के कारण लौटी हुई रचनाओ को पाकर कवि की उदासीनता है, पर शीघ्र ही निराला सरोज की ओर लौट पडते हैं। कुण्डली मे दो–दो विवाहो की भविष्यवाणी को निराला ने झुठलाकर पोथी–पत्रा पण्डितो पर तीखा व्यग्य किया है और अन्त मे सरोज से कुन्डली फडवाकर मानो एक गलत मान्यता का फातिहा पढ दिया हो। इसके बाद सरोज की युवावस्था का चित्र सयत स्वर मे कवि उभारता है–

'आयी, लावण्य भार थर–थर
कॉपा कोमलता पर सस्वर
ज्यो मालकौश नव वीणा पर,
नैश स्वप्न ज्यो तू मन्द–मन्द
पूरी उषा जागरण छन्द
कॉपी भर निज आलोक भार
कॉपा वन, कॉपा दिक प्रसार ।'[23]

बेटी के विवाह के लिए वर की तलाश मे अभावग्रस्त पर विद्रोही निराला अपनी जाति–विरादरी की दहेज लोभी प्रवृत्ति पर तीखे व्यग्य करते हैं, उन्हे 'कान्यकुब्जकुलकुलागार' कहते हैं। वह दहेज देकर पुत्री का विवाह करने से इन्कार कर देते हैं एक प्रगति शील विवाह रचाते है और समाज की जर्जर मान्यताओं को तिलाजलि देते हैं। निराला मे ही वह साहस है, वे अपनी पुत्री के लिए लिख सके– 'पुष्प सेज तेरी स्वय रची।' कविता के आरम्भ मे निराला ने बेटी सरोज को जीवित कविते कहकर सम्बोधित किया है, और काव्य के अत मे विषाद उन्हे घेर लेता है। वे स्वय को भग्यहीन समझते हुए कहते हैं–

'दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।'[24]

डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है कि 'सरोज स्मृति' मे निराला का आधा दुख सरोज की मृत्यु के कारण है, आधा उनके अपने सघर्षों के कारण।'[25]

सरोज–स्मृति एक ओर निराला की अपूरणीय वैयक्तिक क्षति है, पर साथ ही उन सामाजिक विषमताओ पर प्रहार भी जिसमें कि यशस्वी कवि अपनी बेटी को खो देता है। उनका करुणा भरा स्वर आक्रोश और व्यग्य में बदल जाता है। यहॉ निराला अपनी बेटी के कारुणिक निधन के माध्यम से विषमता भरे समाज पर आक्रामक मुद्रा मे प्रहार करते है। यह स्वच्छन्दतावादी काव्य का एक नयी यथार्थ भूमि पर पदार्पण करना है।

राम की शक्ति पूजा : महाकाव्य का लघु विधान

'अनामिका' की दूसरी लम्बी कविता 'राम की शक्ति पूजा' है। इस कथा के बीज देवी भागवत मे मिलते हैं। शक्ति पूजा का बगाल मे जो प्रचार है उसने भी कवि को प्रेरित किया। उन्होने पौराणिक आख्यान को नया संदर्भ दिया है। सर्वप्रथम, उन्होने राम को देवत्व से हटाकर मानवीय भूमि पर प्रस्तुत किया–

'स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर–फिर सशय,
रह–रह उठता जग जीवन मे रावण जय–भय।'[26]

'राम की शक्ति पूजा' के आरम्भ मे सूर्यास्त के उपरान्त खिन्न मन लौटती हुई राम की वानरी सेना का दृश्य है। इसमे राम का भी एक चित्र है–

'दृढ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल,
फैला पृष्ठ पर बाहुओ पर वक्ष पर विपुल।'[27]

उसके बाद राम की सभा का दृश्य है, जहॉ घने अन्धकार मे केवल एक मशाल जल रही है। पीछे महासागर गरज रहा है। जलती मशाल आशा का प्रतीक है। वीरत्व के इस प्रसंग मे निराला की चेतना सहसा सक्रिय हो उठती है। शकाकुल राम के समक्ष जनक–वाटिका–प्रसंग की स्मृति आ जाती है, जहॉ राम ने प्रथम बार सीता को लताओ की ओट से देखा था। राम–सीता के इस मिलन को निराला ने

गतिशील चित्र के रूप मे प्रस्तुत किया है। स्मृति–चित्र के बाद ही राम के मन मे एक सकल्प का उदय होता है। जब राम बार–बार स्वय को असमर्थ मान रहे थे, तब–

'ऐसे क्षण अन्धकार घन मे जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी–तनया–कुमारिका–छवि अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का, प्रथम स्नेह का लतातराल मिलन
नयनो का नयनो से गोपन, प्रिय सम्भाषण –
पलको का नव पलको पर प्रथमोत्थान पतन –
कॉपते हुये किसलय–झरते–पराग–समुदय
गाते खग, नव–जीवन–परिचय, तरु मलय–वलय
ज्योति· प्रपात स्वर्गीय, ज्ञात छवि प्रथम स्वीय –
जनकी नयन कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय ।'[28]

यह सारा दृश्य गतिशील है–नेत्रो का मिलन, वार्तालाप, सीता का लज्जा–अनुराग–मिश्रित भाव। सहसा दृश्य मे एक नये अर्थ का सचार–किसलयो का कॉपना, पक्षियो का सगीत और मलय वायु का तरु की परिक्रमा करना। एक दुनिया का बदल जाना। इसी कारण इस दृश्य का स्मरण आते ही राम एक बार पुन धनुर्भंग की मुद्रा मे आ जाते हैं और 'फिर विश्व विजय भावना हृदय मे आयी भर।' यह एक प्रकार से राम का आत्म साक्षात्कार है, जिसमे कवि ने प्रिया सीता को प्रेरणा के रूप मे प्रस्तुत किया है। इस रोमानी प्रसग के बाद हनुमान की शक्ति का चित्रण है। एक बार फिर राम का सशय है जो उनके अन्तर्द्वन्द्व से सम्बद्ध है। अन्त मे जाम्बवान का प्रस्ताव है– शक्ति की पूजा का। राम उसे स्वीकार कर शक्ति के पूजन मे तत्पर हो जाते हैं। इस प्रसग के निर्माण मे बगाल की शक्ति परम्परा का प्रभाव है जिसे निराला ने निकट से देखा था। पूजन के बीच एक नाटकीय स्थिति का प्रवेश कराया गया है कि जब राम एक सौ आठवॉ कमल (अतिम चरण का कमल) समर्पित करने को उद्यत होते है उसी समय राम की परीक्षा लेने के लिए शक्ति चुपके से वह कमल उठा लेती है। राम एक क्षण के लिए दुखी होते है

फिर सहसा निर्णय लेते हैं कि वे अपना कमल नेत्र शक्ति को अर्पित कर देगे और ज्यो ही वे इसके लिए तत्पर होते हैं– शक्ति स्वय उपस्थित होकर उन्हे आशीर्वाद देती हैं– 'होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन ।'

राम की शक्तिपूजा मे पौराणिक आख्यान के साथ निराला का व्यक्तित्व भी अन्तर्निहित है और कहा जा सकता है कि राम मे कई बार स्वय निराला इस रूप मे प्रवेश कर गये हैं कि दोनो को अलगा पाना कठिन है। कवि के जीवन सघर्ष राम मे मौजूद है– 'अन्याय जिधर है–उधर शक्ति।' यह एक तरह से मूल्यो की पराजय का सकेत है। राम के कथन मे आरम्भ मे विषाद आता है, किन्तु अगले ही क्षण निराला की वही अपराजेय मुद्रा आती है–

'धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।
जानकी! आह उद्धार प्रिया का हो न सका
वह एक और मन रहा राम का जो न थका।
जो नही जानता दैन्य, नही जानता विनय
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय।'[29]

निराला की यह रचना महाकाव्य की सभावना लिए हुए है। विराट चित्रो का निर्माण, उदात्त भाव प्रसग, सार्थक कल्पना, सगत प्रतीक विधान– ये सब महाकाव्योचित काव्य विधान है। ओज, वीरता–सम्पन्न चित्रो के साथ कोमल प्रसगो की योजना बताती है कि निराला का वैविध्य पूर्ण कौशल सभी भाव भूमियो का चित्रण समान अधिकार से कर सकता है। यदि हम आधुनिक महाकाव्य मे वर्णनात्मकता का आग्रह नहीं करते तो अपने अपेक्षाकृत लघु कलेवर मे राम की शक्ति पूजा मे महाकाव्योचित गरिमा विद्यमान है, इसमे सन्देह नहीं।

तुलसीदास : रचनाकार का सांस्कृतिक दायित्व

इस काव्य का प्रकाशन 1938 ई0 मे हुआ। इस काव्य में निराला पौराणिक जगत से आगे बढकर इतिहास के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। यह उनके विकसित व्यक्तित्व का सकेत है। वे 'तुलसीदास' मे खुली

इतिहास दृष्टि अपनाते हैं और जातीय आग्रहो से भी मुक्त होने की चेष्टा करते है। इसके अतिरिक्त इतिहास के साथ उनकी स्वच्छन्दतावादी कल्पना का भी योग यहॉ होता है, इसीलिए इतिहास का सपूर्ण द्वन्द्वात्मक चित्र उभरने नही पाता। रोमानी भावना को व्यक्त करने के लिए तुलसीदास और रत्नावली का प्रसग लिया गया है। इस कविता मे इतिहास और कल्पना, यथार्थ और स्वच्छन्दता का मिश्रण हुआ है। निराला ने तुलसीदास के माध्यम से अपने रचनाकार के सास्कृतिक दायित्व पर विचार किया है और उसमे आधुनिक सदर्भो का प्रवेश कराया है। दूधनाथ सिह ने 'तुलसीदास' कविता के सम्बन्ध मे लिखा है– 'तुलसीदास' निराला के निजी सास्कृतिक अन्धकार की चिन्ता से शुरू होती है। कविता के प्रारम्भ मे तुलसी नहीं है। भारत के अध. पतन, उसके सास्कृतिक अन्धकार, आर्य सस्कृति पर मुस्लिम सस्कृति की विजय से उत्पन्न खिन्नता का वर्णन–निराला स्वय करते हैं, फिर भी वे अतीत के ध्वस्त वैभव और शौर्य का स्मरण करते हैं और पाते हैं कि किस तरह सम्पूर्ण जाति का मस्तिष्क, उसकी बौद्धिक ऊर्जा और उसका पराक्रम नष्ट हो गया है। इसी विनष्ट शौर्य का प्रतिफलन सास्कृतिक अँधेरे मे हुआ है। सम्पूर्ण भारत के बौद्धिक, राजनैतिक और सास्कृतिक पतन का यह चित्र निराला शुरू से दसवे छन्द तक करते चले जाते हैं। भारत के नभ का सास्कृतिक सूर्य शीतल हो गया है। मुसलमानो का सर्वत्र शासन है। पजाब, फिर कोसल–बिहार, फिर धीरे–धीरे सम्पूर्ण देश उनके एकछत्र अधिकार मे चला गया। एक झझावात की तरह, बर्फीली ऑधी की तरह उत्तर से दक्षिण की ओर मुगलो का प्रसार बढता गया। बुदेलखण्ड, कालिजर, जोधपुर, मारवाड–सब उनके नीचे रौंद दिये गये। वीरता और शौर्य के प्रतीक राजपूत अब सिर्फ राजाओ के वेश मे गुलाम हैं, या चाटुकारिता मे लीन है।'[30]

निराला ने 'तुलसीदास' के माध्यम से भारत की पराजित सस्कृति के जो भयावह दृश्य प्रस्तुत किये है वे आधुनिक सदर्भो के बहुत करीब हैं। यहॉ निराला हिन्दू राष्ट्रवाद से आगे बढकर एक ओर सारे प्रश्न को विलास और आध्यात्मिक सघर्ष का रूप देते हैं, दूसरी ओर वे समाज के निम्न वर्ग को अपनी सवेदना देते हैं। यहॉ सघर्ष दो जातियो के बीच न होकर, दो जीवन–दृष्टियो के बीच है। ऐसे पराभूत क्षणो में तुलसीदास अपने कवि दायित्व को पहचानते हैं, शाखा के नव–विहग की भॉति वे मुक्त आकाश

मे उडते हैं और जीवन की नयी–नयी छवियाँ उनके समक्ष खुलने लगती हैं। तुलसी की चेतना ऊर्ध्वमुखी होती है और वे सकल्प लेते हैं–

'करना होगा यह तिमिर पार–
देखना सत्य का मिहिर द्वार–
बहना जीवन के प्रखर ज्वार मे निश्चय।
लडना विरोध से द्वन्द्व समर
रह सत्य मार्ग पर स्थिर–निर्भर
जाना भिन्न भी देह, निज घर निसशय।'

निराला 'तुलसीदास' काव्य मे अपनी स्वच्छन्दतावादी चेतना का प्रकाशन कराने के लिए रत्नावली का प्रवेश कराते हैं। रत्नावली की ही प्रेरणा से तुलसी के व्यक्तित्व में सृजन का नया द्वार खुलता है। नारी के प्रति निराला का आदर भाव उनके सपूर्ण काव्य मे देखा जा सकता है। निराला नारी को समाज मे एक सम्मानित स्थान देना चाहते थे। रत्नावली एक क्षण के लिए स्मृति मे आकर चली जाती है, पर तुलसी की चेतना का रूपान्तरण हो जाता है। वह प्रिया और प्रकृति मे विलक्षण साम्य देखते हैं–

'वह श्री पावन, गृहिणी उदार
गिरि–वर उरोज, सरि पयोधार
कर–वन–तरु, फैला फल निहारती देती,
सब जीवो पर है एक दृष्टि
तृण–तृण पर उसकी सुधा–वृष्टि
प्रेयसी, बदलती वसन सृष्टि नव लेती।'

रत्नावली की प्रेरणा से तुलसीदास मे एक प्रबल संस्कार जागता है, उनका काम भाव समाप्त हो जाता है। तुलसी श्री शारदा भारती के सचेतन रूप को देखते है। डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है– 'धीरे–धीरे वह बाहर आये। हृदय मे वही परिचित मूर्ति थी। अपना क्षुद्र रूप छोडकर वह विश्व का आश्रय बन गयी थी। सुख के जल पर तिरती हुई कमला के रूप मे सामने आयी। कविता के प्रारम्भ मे भारत

का जो सास्कृतिक सूर्य अस्त हो गया था, वह पुन उदित हुआ और रत्नावली ही 'प्राची दिगन्त उर मे पुष्कल कवि रेखा' बन गयी।'[31]

रत्नावली तुलसी के लिए एक प्रेरणा बनती है। निराला ने अपने कवि जीवन मे सृजन की प्रेरणा अपनी प्रिया से ग्रहण किया था। तुलसीदास के जीवन के एक छोटे से खण्ड का उपयोग करके निराला अपना आशय प्रकट करने मे सफल हुए हैं।

'तुलसीदास' जैसा काव्य निराला की रचना-सामर्थ्य का प्रमाण प्रस्तुत करता है। यह स्वच्छन्दतावादी चेतना को बौद्धिक स्तर पर लाने की चेष्टा मे समस्त स्वच्छन्दतावादी चेतना को एक आयाम देता है।[32] इस रचना के माध्यम से निराला ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य केवल वैयक्तिक रागात्मक अनुभूतियो के प्रकाशन का नाम नहीं है, उसमे महान सास्कृतिक आशय की रचनायें भी प्रस्तुत की जा सकती हैं। 'तुलसीदास' मे कथा कहना कवि का मुख्य आशय नही है, इसीलिए उसकी प्रवृत्ति वर्णनात्मक नहीं है। यह निराला की सास्कृतिक दृष्टि और स्वच्छन्दतावादी चेतना से निर्मित काव्य है। इस सास्कृतिक दृष्टि मे उनकी राष्ट्रीय भावना का भी योग है। इसे स्वच्छन्दतावादी काव्य की राष्ट्रीय चेतना के रूप मे समझना चाहिए, जिसमे कवि अपने देश को भौगोलिक इकाइयो से बाहर ले जाकर वृहत्तर मानव-जीवन से जोडने का उपक्रम करता है।[33]

निराला के काव्य सग्रह 'अणिमा' का प्रकाशन 1943 ई0 मे हुआ। इसमे कई प्रकार की रचनाएँ सम्मिलित हैं जिनसे कवि के बदलते तेवरो का पता चलता है, जबकि कुछ रचनाएँ पिछले चरण से जुडी हुई। इसमे प्रसाद, शुक्ल जी, रैदास, बुद्ध, विजय लक्ष्मी, महादेवी के अतिरिक्त स्वामी प्रेमानन्द के विषय मे एक लम्बी कविता है। व्यक्तियों पर लिखी गयी कविताएँ प्राय- निराला की भावना का ही प्रकाशन है। इस सग्रह मे कवि का काव्य-स्वर बदला दिखाई देता है, जैसे धीरे-धीरे कवि का मोह भग हो रहा हो। यद्यपि यह स्वच्छन्दतावाद के विरोध मे जाने वाले किसी मूर्तिभजक का आक्रोश नहीं है, पर 'अणिमा' मे अब उन्मुक्त प्रणय, सौन्दर्य के गीत तथा प्रकृति के परम रागात्मक ऋतु-चित्रों की सख्या कम हो गयी है। प्रकृति के दृश्यो और ऋतु-चित्रो का कम होते जाना निराला के जिस बदलाव की सूचना देता है, उसमे मनुष्य और उसका यथार्थ अधिक स्थान पाते है।

निराला के काव्य सग्रह 'बेला' (1943 ई0) और 'नये पत्ते' (1946 ई0) उसी बदले हुए काव्य–चरण से जुडे हैं। 'साध्य काकली' निराला का अतिम काव्य सकलन है जिसका प्रकाशन सन् 1969 ई0 मे हुआ। इसमे लगभग सत्तर रचनाएँ सग्रहीत है।

निराला ने एक लम्बी और सार्थक काव्य–यात्रा तय की –1916 ई0 से 1961 ई0 तक । लगभग पैंतालीस वर्ष मे उनका काव्य अनेक सामाजिक, वैयक्तिक स्थितियो से गुजरता रहा है और इन सबके बीच उनके काव्य के तेवर भी बदलते रहे। उनका काव्य हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की अनेक सभावनाओ का प्रमाण है।

सुमित्रानन्दन पन्त

प्रकृति के कवि

सुमित्रानन्दन पन्त छायावाद के वृहद चतुष्टय कवियो मे से एक है। अपनी समूची रचना सामर्थ्य के साथ वह एक तरफ छायावादी काव्यान्दोलन के प्रवर्तन मे अपना सहयोग देते हैं, दूसरी तरफ अपनी रचना धर्मिता के वैशिष्ट्य के साथ कलात्मक एव भावात्मक दोनो दृष्टियो से छायावाद की प्रतिष्ठा मे अपना योगदान सुनिश्चित करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावादी भावधारा की रचनाओ पर लिखते हुये सबसे अधिक महत्व सुमित्रानन्दन पन्त को दिया है, जिसका मूल कारण यह है कि शुक्ल जी कविता मे प्रकृति के आलम्बन रूप के पक्षधर थे और पत के यहॉ किचित प्रकृति का काव्यात्मक सश्लेष ही प्रधान रूप से रचनात्मक उत्कर्ष प्राप्त करता है।

पन्त ने एक लम्बी काव्य–यात्रा तय की है। उन्हे अनेक काव्यान्दोलनो को देखने का अवसर मिला। उनकी जन्मभूमि कौसानी अपने अछूते प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए विख्यात है। अपनी आरभिक कविताओ के आधार पर पन्त 'प्रकृति के कवि' कहलाये। सामने दिखायी पडने वाले हिमालय के बर्फ ढके पर्वत शिखर और आस–पास देवदारु, चीड की सघन वनखण्डी, मौका पाकर घर में घुस जाने वाले बादल और कडकती बिजली से निकट की मुलाकात। पन्त ने प्रकृति को अपने इतना समीप पाया कि वह उनके अवचेतन मे प्रवेश कर गयी और उनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गयी। पंत ने 'साठ वर्ष '

एक रेखाकन' नामक आत्मकथा मे इसका उल्लेख करते हुए 'आत्मिका' नामक कविता की पक्तियॉ उद्धृत की है–

> 'हिमगिरि प्रान्तर था दिग् हर्षित, प्रकृति क्रोड ऋतु शोभा कल्पित
> गन्ध गुँथी रेशमी वायु थी, मुक्त नील गिरि पखो पर स्थित।
> आरोही हिमगिरि चरणो पर, रहा ग्राम वह मरकत मणि–कण
> श्रद्धानत आरोहण के प्रति, मुग्ध प्रकृति का आत्म–समर्पण।'

पन्त के काव्य मे प्रकृति ने आरम्भ से प्रमुख भूमिका का कार्य किया, पर बदलते जीवन सन्दर्भों मे उसके स्वरूप मे भी परिवर्तन होते गये हैं। शुरू–शुरू मे पन्त प्रकृति के प्रति विस्मय विमुग्ध थे, पर धीरे–धीरे कवि के वैयक्तिक सवेदन उसमे सम्मिलित होते गये और एक रोमानी जगत निर्मित हुआ। पन्त की स्वच्छन्दतावादी चेतना की बनावट मे प्रकृति के प्रति उनकी बदलती प्रतिक्रियाओ का भी प्रभाव रहा है। जो प्रकृति आरम्भ मे पन्त के सम्मुख अपने स्वतन्त्र रूप मे उपस्थित थी, उसे उन्होने आगे चलकर प्रिया, सखी, सगिनि आदि के रूप मे देखा और यह उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का प्रकाशन कहा जायेगा। प्रकृति और मानवीय भावनाओ के सवाद की प्रक्रिया हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति मानी जाती है और इस दिशा मे पत का प्रदेय महत्वपूर्ण है।

कुमायूँ की नैसर्गिक प्राकृतिक छवि के साथ–साथ पारिवारिक सस्कारो ने भी पन्त के व्यक्तित्व के निर्माण मे अपना योगदान दिया है। बचपन मे ही मॉ को खोकर पन्त उस वात्सल्य से वचित हो गये जिसे भारतीय सन्तान का रक्षा–कवच कहा जाता है। सभवत इसीलिए उनके मन में नारी के प्रति एक पूजा–भाव विद्यमान रहा है और उन्होने सदैव उसे आदर की दृष्टि से देखा है। इसी क्रम मे उन धार्मिक सस्कारों का भी प्रभाव है, जो पिता के पास जुटने वाले साधु–सन्तो के माध्यम से उन्हे प्राप्त हुए।

उच्च शिक्षा के लिए अल्मोडा जाकर कवि को पहली बार नागरिक जीवन का परिचय हुआ और यहॉ उन्होंने अपना नाम गुसाईं दत्त से बदलकर सुमित्रानन्दन रख लिया। उनका साहित्यिक सस्कार बनाने मे उनकी सस्कृत शिक्षा का भी योग रहा है। इलाहाबाद आने पर यहॉ के साहित्यिक वातावरण ने उनकी रचना को एक नयी प्रेरणा दी। प्रयाग के विद्यार्थी काल में पन्त अंग्रेजी साहित्य, विशेषतया रोमानी

कविता से प्रभावित हुये। उन्होने लिखा है– 'उन्नीसवी शती के कवियो मे कीट्स, शेली, वर्ड्सवर्थ तथा टेनिसन ने मुझे गम्भीर रूप से आकृष्ट किया। कीट्स के शिल्प–वैचित्र्य, शैली की सशक्त कल्पना, वर्ड्सवर्थ का प्राजल प्रकृति–प्रेम, कॉलरिज की असाधारणता तथा टेनिसन के ध्वनि बोध ने मेरी कविता–सम्बन्धी रूप विधान के ज्ञान को अधिक पुष्ट, व्यापक तथा सूक्ष्म बनाया। इन कवियो की विशेषताओ को हिन्दी काव्य मे उतारने के लिए मेरा कलाकार भीतर ही भीतर प्रयत्न करता रहा। काव्य–सगीत मे व्यजनो की योजना से शक्ति तथा चित्रात्मकता और स्वरो की सहायता से सूक्ष्मता तथा मार्मिकता आती है। इसका ज्ञान मुझे अग्रेजी कवियो के रूप–शिल्प के बोध से ही प्राप्त हुआ।'[34]

पन्त दस वर्षों तक कालाकॉकर मे रहे, जहॉ उन्होने अपना अध्ययन–क्रम जारी रखा। 'नौका विहार' जैसी श्रेष्ठ कविता की रचना पन्त ने कालाकॉकर मे ही रहकर की।

पन्त ने अपनी जीवन–यात्रा मे अनेक उतार–चढाव देखे। उनकी रचनाओ पर भी इसकी छाया पडी है। दो–दो महायुद्ध उनके जीवन काल मे आये, जिन्होने विश्व समाज को मथ दिया और भीषण विनाश के दृश्य उपस्थित हुए। स्वय भारतीय जीवन मे, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता सग्राम के दौर मे साम्राज्यवादी दमन चक्र चला और बाद मे आजादी भी आयी। अनेक उतार–चढावो मे पन्त का काव्य गुजरा है और उसमे वे अन्तर्विरोध देखे जा सकते है जिनके मूल मे सामाजिक गतिविधियॉ सक्रिय रही है।

लम्बी काव्य यात्रा

पन्त के काव्य ने एक लम्बी यात्रा की है और बीसवी शताब्दी का लगभग तीन चौथाई भाग उनके सामने से गुजरा है। परिमाण मे उनके काव्य का विपुल आकार है और 'लोकायतन' जैसे दीर्घ आकार वाले प्रबन्ध काव्य के अतिरिक्त उनके लगभग दो दर्जन काव्य–ग्रन्थ प्रकाश मे आते हैं। पन्त की रचनाओ मे बदलाव आये हैं और इसका कारण उनकी बदली हुई विचारधारा है। 'चिदम्बरा' मे 'युगवाणी' (1937–38 ई0) से लेकर 'वाणी' (1957 ई0) तक की कविताएँ प्रस्तुत करते हुए उन्होने 'चरण चिन्ह' नामक लम्बी भूमिका में अपने मन्तव्य को स्पष्ट किया है। पन्त ने 'पल्लव', 'आधुनिक कवि' के अतिरिक्त 'छायावाद: एक पुनर्मूल्याकन' नामक समीक्षा–ग्रन्थ मे काव्य के सम्बन्ध मे अपनी मान्यताओ को स्पष्ट करना चाहा है।

'पल्लव' मे पन्त ने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियो के विषय मे नयी सौन्दर्यवादी घोषणाएँ की और रचना के बदलते जगत का विस्तृत विवेचन किया। 'पल्लव' की 'प्रवेश' नामक भूमिका को 'हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का घोषणा पत्र' कहा जाता है। यह भूमिका 1926 ई0 मे लिखी गयी थी। 1941 ई0 मे जब पन्त ने 'आधुनिक कवि' नाम से अपनी कविताओ का सचयन किया तो 'पर्यालोचन' नामक भूमिका मे उन्होने अपने बदलाव का औचित्य प्रमाणित किया। इस बीच उनके 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' काव्य निकल चुके थे, जो कवि की स्वच्छन्दवादिता को सामाजिक यथार्थ के निकट ले आते हैं। 1947 ई0 मे 'स्वर्णकिरण' का प्रकाशन हुआ, जिसमे 1944–45 ई0 की कविताएँ सकलित है, तब उनकी दृष्टि मे एक दूसरा बदलाव आया। उनकी युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या की रचनाओ को प्रगतिवादियो ने सराहा था। शिवदान सिह चौहान ने उन्हे 'भविष्य का कवि' कहा था। बाद मे पन्त अरविन्द दर्शन की ओर मुड जाते हैं। पन्त की रचनाओ में जो मोड तेजी से आये हैं और जिन्हे उन्होंने बार–बार छोडकर नये रास्ते अपनाये है, उसका एक कारण पन्त का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व भी है। आरम्भ से ही कल्पना उनके काव्य मे सर्वाधिक सक्रिय रही है। इसी ने उनको बार–बार नयी दिशाओ की ओर मोडकर, फिर स्वय अपने ही जगत मे लौट आने के लिए बाध्य किया है।[35]

सुमित्रानन्दन पन्त की प्रथम प्रकाशित काव्यकृति 'उच्छ्वास' है जिसका प्रकाशन 1921 ई0 मे हुआ था। पन्त की 1918–19 ई0 के बीच लिखी कविताओ का प्रकाशन 'वीणा' नाम से 1927 ई0 मे हुआ। उसके पूर्व 1926 ई0 मे 'पल्लव' का प्रकाशन हो चुका था। पन्त का 'ग्रन्थि' नामक काव्य 1920 ई0 मे रचा गया था। पन्त की प्रमुख काव्य रचनाये इस प्रकार हैं– पल्लव (1926 ई0), वीणा (1927 ई0), गुजन (1932 ई0), युगात (1936 ई0), युगवाणी (1939 ई0), ग्राम्या (1940 ई0), स्वर्ण किरण (1947 ई0), स्वर्णधूलि (1947 ई0), युग पथ (1949 ई0), उत्तरा (1949 ई0), अतिमा (1955 ई0), वाणी (1958 ई0), कला और बूढा चॉद (1959 ई0), लोकायतन (1964 ई0), सत्यकाम (1975 ई0)।

वीणा–ग्रन्थि : रोमांटिक प्रवृत्तियों का प्रकाशन

'वीणा' का प्रकाशन 1927 ई0 में हुआ। पन्त ने इस काव्य सग्रह की भूमिका 'विज्ञापन' में स्वीकार किया है कि इसकी अधिकाश रचनाएँ 1918–19 ई0 मे लिखी गयी थीं। इस सग्रह मे तिरसठ

गीत–रचनाएँ सग्रहीत है। एक प्रार्थना भाव इन कविताओ का मुख्य स्वर दिखाई देता है। इन गीतो मे बार–बार 'मॉ' सम्बोधन का प्रयोग हुआ है। इसमे परिवार के आस्तिक सस्कारो के साथ प्रकृति की विराटता के सम्बन्ध मे पत की प्रतिक्रियाओ का योग है। प्रकृति की असख्य छवियो के विषय मे कवि की जिज्ञासा का उदय होता है, वह उसे रहस्यमय लगती है और वह उसमे किसी अदृश्य सत्ता के दर्शन करता है।

'वीणा' का प्रथम गीत 'प्रेयसि कविते' को सम्बोधित है, जिसमे कवि प्रार्थना करता है कि 'नव वसन्त ऋतु मे आओ, नवकलियो को विकसाओ ।' यहॉ एक प्रकार का परम्परा पालन भी दिखाई देता है–सरस्वती वन्दना जैसा। किन्तु इसमे केवल धार्मिक पूजन भाव नही है, क्योकि कवि 'शब्दो मे जीवन लाओ' जैसी आधुनिक विनय भी करता है। पन्त के सरस्वती वन्दन मे अपने आत्मविश्वास को पाने का प्रयत्न भी निहित है।[36] पन्त द्वारा मॉ को सम्बोधित कविताऍ विशेष रूप से विचारणीय हैं, यहॉ कवि का समर्पण–भाव द्रष्टव्य है–

'विश्व प्रेम का रुचिकर राग
पर सेवा करने की आग
इसको सन्ध्या की लाली–सी
मॉ! न मन्द पड जाने दे,
द्वेष द्रोह को सान्ध्य जलद–सा
इसकी छटा बढाने दे।'

उन कविताओ मे जहॉ कवि की वैयक्तिक जीवनानुभूति के सकेत मिलते है वहॉ उसकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की झलक मिलती है। 'वीणा' की कविताओ ने स्वच्छन्दतावादी कविता की मुख्य प्रवृत्ति मिलती है–जडता मे चेतनता का आरोप या जड पदार्थ को चेतन रूप में स्वीकारना। यहॉ छाया को सम्बोध–गीत के रूप मे व्यक्त किया जाता है। पन्त की स्वच्छन्दतावादी वृत्ति का अधिक सक्षम प्रकाशन इस कविता मे हुआ है–

'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि
पाया तूने यह गाना ?'

प्रथम रश्मि के लिए तरुवासिनि, बहुदर्शिनि, नभचारिणि, अन्तर्यामिनि आदि जिन सम्बोधनो का उपयोग किया गया है, उससे केवल युवती होने का भाव ही नही होता वरन् कवि के रोमानी अन्दाज का भी पता चलता है। पन्त ने प्रिया के स्मृति– चित्रो को प्रथम रश्मि मे समाहित कर दिया है और सम्पूर्ण प्रकृति–दृश्यो मे प्रिया परोक्ष रूप से मौजूद है। यही वह बिन्दु है जो स्वच्छन्दतावादी काव्य के रोमानी तेवरो को श्रृगार और प्रेम की अन्य कविताओ से अलग करता है। प्रकृति की पृष्ठभूमि मे पन्त ने प्रथम रश्मि के अनेक चित्र बनाये हैं जिनसे सूर्योदय के पूर्व का सारा दृश्य उभरता है। प्रहरी से झूमते हुए जुगनू, स्नेहहीन तारो के दीपक, श्वासशून्य तरु के पात, श्रीहीन शशिबाला का मुख आदि रात्रि के डूबने के दृश्य हैं। ऐसी स्थिति मे जब प्रथम रश्मि का आगमन होता है, तब जैसे एकाएक पट–परिवर्तन होता हो–

'निराकार तम मानो सहसा
ज्योति पुज मे हो साकार
बदल गया द्रुत जगत जाल मे
घर का नाम रूप नाना।'

इस कविता मे प्रथम रश्मि वस्तुपरक प्रकृति दृश्य मात्र नही है, बल्कि इसमे कवि की अपनी वैयक्तिक अनुभूतियाँ भी सम्मिलित हैं। पर उनकी तलाश गहरे जाकर ही हो सकती है। इसमे कवि प्रकृति और मानव–जीवन के सम्बन्ध का प्रश्न उठाता है।[37] प्रथम रश्मि का मानवीकरण और रोमानीकरण एक साथ देखा जा सकता है।

ग्रन्थि

'ग्रन्थि' की रचना पन्त ने 1920 ई0 मे की थी, परन्तु इसका प्रकाशन 1929 ई0 मे हुआ। 'ग्रन्थि' पन्त की रोमान्टिक वृत्तियो को एक प्रेम कथा के माध्यम से प्रकाश मे लाती है। इसमे कथाश स्वल्प है और कथानक मे उतार-चढाव नगण्य है। सन्ध्या के समय एक युवक की नाव ताल मे डूब जाती है और वह उसकी गहराई मे चेतनाशून्य हो जाता है। जब उसकी चेतना लौटती है तो वह पाता है कि उसका सिर एक युवती की गोद मे है। यही से उनके प्रेम की शुरुआत होती है और प्रिय-प्रिया के सम्बन्धो का उल्लेख। 'एक प्रात' शीर्षक से कथा का दूसरा खण्ड आरम्भ होता है, जिसमे प्रियतमा को सखियो के बीच दिखाया गया है। इनकी आपसी बातचीत मे प्रेम का रग गाढा होता है और उसके कई कोण उभरते हैं। तीसरे खण्ड की शुरुआत से ही दृश्य बदला हुआ दिखाई देता है और प्रिया का ग्रन्थि बन्धन किसी अन्य से हो जाता है। प्रेमी का विषादी रूप इसमे देखा जा सकता है। अन्तिम खण्ड 'प्रेमवचित' का है, जिसमे एक वियोगी का विषाद गहरा हुआ है। कुल मिलाकर यह एक दीर्घ विरह-गीत है। सम्पूर्ण विरह-काव्य किशोर भावुकता के धरातल से शुरू होकर उसी धरातल पर समाप्त होता है।[38] पन्त की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के आरम्भिक चरण मे 'ग्रन्थि' का महत्व इसलिए भी है कि यहॉ कवि एक प्रेम कथा की ट्रेजिडी के माध्यम से अपनी रोमानी वृत्तियॉ प्रकाशित करना चाहता है।

पल्लव : स्वच्छन्दतावाद का घोषणा पत्र

'पल्लव' का प्रकाशन 1926 ई0 मे हुआ। यह पन्त का प्रौढ काव्य-चरण है। 'प्रवेश' नामक इसकी भूमिका को हिन्दी 'स्वच्छन्दतावादी काव्य का घोषणा-पत्र' कहा जाता है। इसमे पन्त ने काव्य की पुरानी मान्यताओ के स्थान पर नये प्रतिमान स्थापित किये और रचना सम्बन्धी अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया। आरम्भ के इस कथन से कवि के आत्म विश्वास का पता चलता है-

'उस सुकुमार मॉ के गर्भ से जो यह ओजस्विनी कन्या पैदा हुई है, आज सर्वत्र इसी की छटा है, इसकी वाणी मे विद्युत है। हिन्दी ने अब तुतलाना छोड दिया, वह 'पिय' को 'प्रिय' कहने लगी है। उसका किशोर कन्ठ फूट गया, अस्फुट अग कट-छॅट गये, उनकी अस्पष्टता मे एक स्पष्ट स्वरूप की झलक आ गई, वक्ष विशाल तथा उन्नत हो गया, पदो की चचलता दृष्टि मे आ गयी, वह विपुल विस्तृत हो गई,

हृदय मे नवीन भावनाये, नवीन कल्पनाये उठने लगी, ज्ञान की परिधि बढ गई, चारो दिशाओ से त्रिविध समीर के झोके उसके चित्त को रोमांचित करने लगे, उसे चॉद मे नवीन सौन्दर्य, मेघ मे नवीन गर्जन सुनाई देने लगा। वह अज्ञात यौवन कलिका अब विकसित हो गई, प्रभात के सूर्य ने उसका उज्ज्वल मुख चूम उसे अजस्र आशीर्वाद दे दिया, चारो ओर से भौरे आकर उसे नव सन्देश सुनाने लगे, उसके सौरभ को वायुमण्डल इधर-उधर वहन करने लग गया, विश्व जननी प्रकृति ने उसके भाल पर स्वय अपने हाथ से केशर का सुहाग टीका लगा दिया, उसके प्राणो मे अक्षय मधु भर दिया है।'[39]

स्वच्छन्दतावादी काव्य की नयी भूमि का स्वरूप 'पल्लव' की भूमिका मे स्पष्ट कर दिया गया है। पत ने अपनी रचनाओ मे इसे प्रमाणित किया।

'पल्लव' शीर्षक की पहली कविता पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि कवि एक साथ कई स्तरो पर यात्रा करना चाहता है। यहॉ एक ओर प्रकृति का दृश्य है-नये-नये जन्मे कोपल विश्व पर विस्मित चितवन डालते हुये, हिलाते अधर, प्रवाल। यहॉ केवल वस्तुपरक प्रकृति-दृश्य नही है कि हमे प्रकृति की एक असग छवि का ही साक्षात्कार हो। कवि स्वय प्रकृति के इन दृश्यो मे अपनी सवेदनाओ के साथ सम्मिलित है। हृदय के प्रणय कुज मे लीन मूक कोकिल का मादक गान डाल को पुलकित कर देता है। कविता के अन्त मे पल्लवो को 'कल्पना के विह्वल बाल' कहकर सम्बोधित किया गया है और उन्हे अनेक भवनाओ का प्रतीक माना गया है। समापन पक्तियो मे सदाशयता का भाव है-

'कल्पना के ये विह्वल बाल,
ऑख के अश्रु, हृदय के हास,
वेदना के प्रदीप की ज्वाल,
प्रणय के ये मधुमास,
सुछवि के छाया वन की सॉस
भर गई इनमे हाव, हुलास।
आज पल्लवित हई है डाल
झुकेगा कल कुजित मधुमास।

मुग्ध होगे मधु से मधु बाल,

सुरभि से अस्थिर मरुताकाश।'[40]

यहॉ कवि के व्यक्तित्व की कई दिशाओ के सकेत एक साथ देखे जा सकते हैं, जिनके माध्यम से हम पन्त की स्वच्छन्दतावादी दृष्टि का आरम्भिक, परन्तु प्रौढ स्वरूप पहचान सकते हैं। प्रकृति के प्रति उनकी रागात्मकता के साथ उनके निजी सवेदनो का सकेत भी यहॉ मिलता है। जिस कल्पना तत्व को पन्त के काव्य का मूलाधार माना जाता है, उसकी ओर भी कवि ने यहॉ इशारा किया है।

'पल्लव' की कविताओ मे पत ने अपने रोमानी तेवर को सकोच, दुराव के साथ व्यक्त किया है। पत प्राय अपनी प्रणयानुभूति को दबा जाते हैं, इस दृष्टि से उन्हे दमित मनोवेगो का स्वच्छन्दतावादी कवि कहा जा सकता है।[41] 'उच्छ्वास', 'सावन–भादो' और 'ऑसू' जैसी कविताओ मे रोमानी अवसाद अथवा करुणा की समर्थ अभिव्यक्ति नहीं मिलती। कविताओ के बीच–बीच मे वैयक्तिक प्रसंगो की झलक मिलती है। किन्तु प्रकृति और प्रिया का रूप इतने मिल–जुल जाते हैं कि उन्हे स्पष्ट करना कठिन हो जाता है। 'उच्छ्वास' की तुलना मे 'ऑसू' मे पन्त मे आत्मस्वीकृति का भाव अधिक साहस के साथ आता है। कवि अपनी रोमानी वृत्तियो को स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखता है। कवि विरह (करुणा) को वरदान के रूप बताता है–

'वियोगी होगा पहला कवि,

आह से उपजा होगा गान,

उमड कर ऑखो से चुपचाप

बही होगी कविता अनजान।'[42]

'ऑसू' मे प्रकृति–दृश्यों के माध्यम से कवि ने अपने वैयक्तिक मनोभावो की अभिव्यक्ति की है। प्रकृति–दृश्यो के सहारे निजीपन की अभिव्यक्ति पन्त की स्वच्छन्दतावादी वृत्ति को अन्य कवियो से अलग करती है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

'मेरा पावस ऋतु–सा जीवन

मानस–सा उमडा अपार मन,

गहरे, धुँधले, धुले साँवले
मेघो से मेरे भरे नयन।'[43]

इस कविता मे पन्त का रोमानी अवसाद ज्यादा गहरा है। प्रकृति का सार्थक प्रयोग पन्त ने स्वच्छन्दतावादी वृत्तियो को प्रकाशित करने के लिए किया है।

प्रकृति से अपनी काव्य यात्रा का आरम्भ करते हुए पन्त ने उसे नयी दिशाओ मे मोडा और उसका अनेक प्रकार से उपयोग किया। 'पल्लव' मे 'छाया', 'मौन निमन्त्रण', 'बादल' कविताएँ प्रकृति–दृश्यो की दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी काव्य की उपलब्धि है। प्रकृति को उसकी समग्रता मे पा लेने और उसे एक सचित्र सम्भार के रूप मे प्रस्तुत कर सकने मे पन्त बेजोड है।

'पल्लव' की लम्बी कविता 'परिवर्तन' पन्त की बदलती मनोदशा बताती है। इसकी रचना 1924 ई0 मे हुई थी। इसके पहले ससार प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका देख चुका था, देश मे भी रजनीतिक हलचले तेज हो चली थीं, ऐसे वातावरण मे पन्त के लिए प्रकृति लोक की रोमानी दुनिय मे ही सीमित रह पाना सम्भव नही था। 'परिवर्तन' यथार्थ के सस्पर्श की कविता है और हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की नयी भगिमा की ओर इशारा करती है।

परिवर्तन अवश्यभावी है, उसका रथचक्र नही रोका जा सकता। इसीलिए पन्त कविता की शुरुआत इतिहास की भूमिका से करते हैं–

'कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?
भूतियो का दिगत छवि जाल,
ज्योति चुंबित जगती का भाल ?
राशि–राशि विकसित वसुधा का वह यौवन विस्तार ?
स्वर्ग की सुषमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार।

× × × × ×

अये, विश्व का स्वर्ण स्वप्न, ससृति का प्रथम प्रभात,

कहाँ वह सत्य, वेद विख्यात ?

दुरित, दुख–दैन्य न थे जब ज्ञात,

अपरिचित जरा मरण भ्रू पात।'[44]

परन्तु पन्त की इस कविता मे इतिहास के द्वन्द्व की भूमिका नहीं उभरती और न इतिहास–बोध ही उजागर होता है, क्योकि उनकी मूल दृष्टि स्वच्छन्दतावादी है। 'परिवर्तन' कविता का यह एहसास कि दुनिया बदलती है, स्वच्छन्दतावादी काव्य मे अपनी एक अहमियत रखता है। यह इस बात का प्रमाण है कवि रोमानी दुनिया के बाहर भी झाँकने की कोशिश कर रहा था। पन्त ने स्वीकार किया है कि बदलाव का क्रम वैयक्तिक जीवन से लेकर विश्व इतिहास और सस्कृति के घटनाक्रमो तक चलता है। व्यक्तिगत जीवन की बात कवि की रोमानी दृष्टि से सम्बद्ध है और सस्कृति के बृहत्तर सन्दर्भों की बात यथार्थ से उसके सस्पर्श का सबूत है। मधुमास मे सौरभ बिखर जाता है, पर शिशिर सूनी साँस भरता है– जीवन भार हो उठता है–

'शून्य साँसों का विधुर वियोग

छुडाता अधर मधुर सयोग,

मिलन के पल केवल दो–चार

विरह के कल्प अपार!

अरे, वे अपलक चार नयन

आठ आँसू रोते निरुपाय,

उठे–रोओं के आलिगन

कसक उठते काँटो–से हाय।'[45]

कवि जिन परिवर्तनो की बात करता है, वे इतिहास के किसी क्रम–विधान से परिचालित न होकर, प्राय आकस्मिक हैं। एक क्षण मे ही किसी नियति चक्र से दृश्य बदल जाता है। कविता के अन्त मे स्थिति का जो आध्यात्मीकरण किया गया है, उससे पन्त की दूसरी दिशा का पता चलता है। एक ओर वे रोमानी सवेदन के कवि हैं, दूसरी ओर यथार्थ को भी छूना चाहते हैं। उनके आरम्भिक सस्कार उन्हे

आध्यात्मिक भी बनाते हैं। परिवर्तन के क्रम मे जो उत्थान–पतन के क्षण आते है, उनमे पन्त औचित्य खोजना चाहते हैं–

'बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना ऑसू के जीवन भार,
दीन दुर्बल है रे ससार,
इसी से दया, क्षमा औ प्यार।'[46]

इस कविता मे एक नये बोध की सूचना भी हमे मिलती है, जब कवि आदर्शवादी ढग से यह मानते हुये कि परिवर्तन विधि के आधीन है, विनाश के भीतर से सृजन की कल्पना करता है।

'परिवर्तन' पन्त की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को प्रकृति और रोमास के जगत से बाहर निकालकर वृहत्तर सदर्भों की ओर बढने की सूचना देने वाली कविता है। यह स्वच्छन्दतावादी काव्य की यात्रा मे एक नये मोड का सकेत है।

गुंजन

'गुजन' का प्रकाशन 1932 ई0 मे हुआ। इस सग्रह मे पन्त की 1926 ई0 से 1931 ई0 के बीच लिखी गयी गीतात्मक कविताये सग्रहीत हैं। 'गुजन' तक आते–आते पन्त की निजी अनुभूतियॉ और निजी जीवन–प्रसंग उनकी कविताओ मे अधिक स्पष्ट होने लगते हैं। 'गुजन' कवि की गीतात्मक प्रवृत्तियो का प्रतिनिधित्व करने वाला काव्य–संकलन है, जिसमे अपनी बाते कहने के लिए गुजाइश रहती है। यहॉ कवि 'भावी पत्नी को' प्रिये, प्राणो की प्राण कहकर सबोधित करता है। वह उस छविमान मधुर मूर्ति के विषय मे सुखद कल्पनाऍ करता है। प्रकृति के उपादान उसे सज्जित करने के काम मे लाये गये हैं–

'अरुण अधरो का पल्लव–प्रात,
मोतियो सा हिलता हिम–हास,
इन्द्रधनुषी पट से ढॅक गात
बाल–विद्युत का पावस–लास,
हृदय में खिल उठता तत्काल

अधखिले—अगो का मधुमास,

तुम्हारी छबि का कर अनुमान।'

प्रिये, प्राणो की प्राण।'[47]

गुजन के कई गीत कल्पित प्रिया को निवेदित हैं– 'उषा वातायन से आकर तुम्हे विलोकती है,' 'वे ऑखे नीलकमल सी हैं।' कवि कल्पना करता है कि मधुर मधुवात डोलने लगी। कलियो के अलसाये पलक खुलने लगे हैं और भौरे चचल हो उठे हैं। प्रिया की मजुल मूर्ति देखकर मानो मधु के वन मे ज्वाल लग गयी हैं, किशुक, अनार, कचनार जैसे लालसा की लौ से लाल हो उठे हैं। यहॉ एक ओर प्रकृति का ऋतुचक्री वसन्त है, दूसरी ओर प्रिय के सौन्दर्य मे जन्मने वाला वह मधुमास है, जिसने कवि के जीवन को एक नया विन्यास दिया और प्रकृति पर जिसकी छाया देखी जा सकती है–

'प्रिये, कलि कुसुम—कुसुम मे आज

मधुरिमा मधु, सुषमा सुविकास,

तुम्हारी रोम—रोम छवि व्याज

छा गया मधुवन मे मधुमास।'

पन्त की रोमानी दुनिया का अधिकाश कल्पना द्वारा निर्मित होता है। उनकी समृद्ध कल्पना और प्रकृति को पास से देखी गयी अनुभूति ने उनके जीवन के प्रसगो का मनोनुकूल प्रयोग करने मे सहायता दी।

'गुंजन' सग्रह की अन्य प्रमुख कविताएं हैं– 'एक तारा', 'चॉदनी', 'नौका विहार'। इन कविताओ मे प्रकृति—चित्र पूरी शक्ति से उभारा गया है। 'एक तारा' के आरभ मे सन्ध्या के सन्नाटे का चित्र है, फिर धीरे—धीरे उतरता ॲधियारा और उस पृष्ठभूमि पर उदित होता शुक्र नक्षत्र। यह उज्ज्वल, अमन्द, अकलुष, अनिन्द्य नक्षत्र 'मूर्तिमान ज्योतित विवेक' का प्रतीक है। 'चॉदनी' कविता मे चॉदनी को एक सुन्दरी के रूप मे प्रस्तुत किया गया है और उसके कई चित्र कवि ने बनाये है—नभ के शतदल पर बैठी शारद—हासिनि, आभा की दुलहिन, लघु परिमल का घन आदि। 'नौका विहार' मे अधिक गतिशील चित्र मिलते हैं। कविता के प्रारम्भ मे गंगा का वर्णन है–

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्सना उज्ज्वल।
अपलक अनन्त नीरव भू–तल
सैकत–शैय्या पर दुग्ध–धवल
तन्वगी गगा, ग्रीष्म विरल
लेटी हैं श्रान्त, क्लान्त, निश्चल।'[48]

फिर चॉदनी रात के प्रथम प्रहर मे नौका विहार है। जल मे परी सी तैरती शुक्र की झलमल छवि है। मॉ के उर पर शिशु–से सोये धारा मे एक द्वीप का और उस पर 'छाया की कोकी को विलोकते हुये वियोगी कोक' का मार्मिक दृश्य है। इसके बाद नौका के लौटने का वर्णन है। अन्तिम छन्द मे दार्शनिक चिन्तन कवि की चेतना में प्रवेश करता है। कवि शाश्वतता के जिस दर्शन तक पहुॅचता है वह मानो मध्यकालीन नश्वरवादी दृष्टि का अतिक्रमण करते हुए आधुनिककालीन जिजीविषा का प्रमाण हो, जहॉ जीवन और जगत का सहज स्वीकार ही इष्ट है। कविता समर्थ और सशक्त कल्पना के माध्यम से एक रोमानी लोक की सृष्टि करती हुई यथार्थवाद की ओर सचरण करती है। गगा की धारा सा ही जीवन और जगत का विलास भी शाश्वत है, गति और सगम भी शास्वत है, यही मानो कविता का सदेश है।

प्रकृति के प्रति हृदय की मुक्ति का उद्घोष करने वाली यह कविता भौतिक जीवन की यात्रिकता और ऊब से मानवीय चेतना को प्रकृति के स्वच्छन्द सौन्दर्य की ओर आकृष्ट करती है।

'गुंजन' सग्रह की कई कविताए गीतात्मक होते हुए भी मानवीयता की विचारणा से सम्पन्न है। मानवीय सदाशयता 'गुजन' का मुख्य स्वर है। कवि सुख–दुख मे मैत्री चाहता है, सुन्दर विश्वासो से जीवन सुखमय बनता है–

'सुन्दर से नित सुन्दरतर,
सुन्दरता से सुन्दरतम,
सुन्दर जीवन का क्रम से,
सुन्दर सुन्दर जग–जीवन।'

पन्त के काव्य का पहला चरण 'वीणा' से 'गुजन' तक जाता है, पर उसका समापन वास्तव मे 'ज्योत्स्ना' नाटिका से होता है। यह पॉच अको की प्रतीकात्मक नाटिका है, जिसमे अमूर्त भावो को पात्रो के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। दुनिया की बिगडी हालत देखकर इन्दु अपनी पत्नी ज्योत्स्ना को पृथ्वी पर शासन के लिए भेजता है। ज्योत्स्ना स्वप्न, कल्पना, सुरभि, पवन की सहायता से पृथ्वी पर प्रेम सौन्दर्य का नया जीवन निर्मित करती है। इस नाटिका मे पन्त का मुख्य उद्देश्य विश्व बन्धुत्व की भावना का उपदेश है।

युगवाणी–युगान्त : स्वच्छन्दतावाद की नयी दिशा

पन्त के काव्य का दूसरा चरण 'युगांत' (1936 ई0), युगवाणी (1939 ई0) और ग्राम्या (1940 ई0) जैसे काव्य सकलनो के रूप मे आता है। 'युगान्त' मे पन्त ने स्वीकार किया है कि उनकी इन कविताओ मे 'पल्लव' जैसी कोमलकान्त पदावली का आभाव है। कवि महसूस करता है कि पुरानी व्यवस्था सड–गल गयी है और उसके स्थान पर नये समाज का निर्माण होना चाहिए–

'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
हे स्रस्त्र–ध्वस्त! हे शुष्क–शीर्ण!
हिम–ताप–पीत, मधुवात–मीत,
तुम बीत–राग, जड, पुराचीन!'

इसी प्रकार की भावनाएँ अन्यत्र भी दोहराई गयी है। 'युगान्त' पन्त की स्वच्छन्दतावादी दृष्टि को इतना मोड अवश्य देती है कि यहॉ प्रकृति के स्थान पर मनुष्य के बारे मे सोच–विचार किया गया है और दुनिया के बदलाव की बात की गयी है। प्रकृति को कल्पना लोक से बाहर निकाल कर अधिक कठोर भूमि मे लाने में 'युगान्त' की कविताएँ प्रयत्नशील है।

'युगवाणी' मे पन्त कल्पित सौन्दर्य लोक से बाहर निकलकर युग की सच्चाइयों से मुलाकात करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि छोटी–छोटी चीजों पर जाती है और उनके अनुभव क्षेत्र मे बढोत्तरी होती है। यहॉ से स्वच्छन्दतावादी कविता एक नई दिशा की ओर मुडने का संकेत करती है।

'युगान्त' और 'युगवाणी' मे कवि जिस वैचारिक भूमि की तलाश करता है उसका वास्तविक प्रयोग 'ग्राम्या' मे देखा जा सकता है। 'ग्राम्या' का प्रकाशन 1940 ई0 मे हुआ। यहाँ काव्य का अनुभूति पक्ष अधिक सक्रिय दिखाई देता है। कवि वक्तव्यो के जगत से बाहर निकल कर ठोस जमीन पर आना चाहता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य को नया मोड देने वाली ग्राम-जीवन की ये कविताएँ ग्राम-सौन्दर्य को सराहती है, और उसकी दयनीयता को भी देखती हैं। भारतमाता को ग्रामवासिनी कहते हुये 'ग्राम्या' मे जिन विशेषणो का उपयोग किया गया है, उससे ग्राम जीवन की दयनीयता का पता चलता है-

'भारत माता
ग्रामवासिनी

× × ×

मिट्टी की प्रतिमा
उदिसिनी।

× × ×

वह अपने घर मे
प्रवासिनी

× × ×

नत मस्तक
तरू तल निवासिनी।

× × ×

राहु ग्रसित
शरदेनु हासिनी।

× × ×

ज्ञान गूढ

गीता प्रकाशिनी।"[49]

'ग्राम्या' मे गॉव की जिन्दगी के जो चित्र पन्त ने उकेरे हैं, वे उनके द्वारा निकट से देखे गये थे। एक प्रकृति प्रेमी का यथार्थ के इन दृश्यो से जुडने और उन्हे एक नये मुहावरे मे प्रस्तुत करने की कोशिश स्वच्छन्दतावादी काव्य के इतिहास मे महत्वपूर्ण है।

पन्त के काव्य का तीसरा चरण तब आता है, जब वह रोमानी जगत छोडकर क्रमश जीवन यथार्थ की ओर बढ रहे थे। परन्तु सहसा उन्होने आध्यात्मिक वाना धारण कर लिया और अरविन्द दर्शन मे विशेष रुचि लेने लगे। 'स्वर्ण किरण' (1947 ई0), 'स्वर्ण धूलि', 'उत्तरा', 'रजत शिखर', 'शिल्पी', 'सौवर्ण', 'अतिमा' (1955 ई0), 'वाणी' (1957 ई0) आदि इस आध्यात्मिक काव्य चरण की रचनाएँ है। पन्त का यह नया आध्यात्मिक चरण उन्हीं के शब्दो मे, 'नवीन चेतना काव्य' अथवा 'नव मानवतावाद का साक्षात्कार' है। इसमे अरविन्द की ऊर्ध्व मानस चेतना की बराबर चर्चा हुई है। कवि मानो जीवन यथार्थ से असतुष्ट होकर किसी कल्पना लोक मे खो जाना चाहता है, जहॉ सब कुछ आदर्श रूप होगा। लगता है जैसे यथार्थ जगत से उसे विरक्ति हो गयी है। 'स्वर्ण किरन' (1947 ई0) से 'वाणी' (1957 ई0) तक पन्त का काव्य इसी आध्यात्मिकता से ओत प्रोत है।

पन्त के काव्य का चौथा चरण तब आता है जब वह 'कला और बूढा चॉद' (1959 ई0) और 'लोकायतन' (1964 ई0) जैसे काव्य की रचना करते है। परन्तु पन्त के काव्य के विभिन्न चरण स्वच्छन्दतावाद की शाखा के रूप मे नही माने जा सकते। फिर भी ये चरण उनके कवित्व को सम्पूर्णता प्रदान करते है।

महादेवी वर्मा

रहस्यवाद की कवयित्री

हिन्दी के छायावादी कवियों में प्रसाद, निराला और पन्त के साथ महादेवी वर्मा का नाम लिया जाता है। छायावाद के अन्य कवियो से भिन्न उनकी एक विशिष्टता है। वह अंग्रेजी और बगला के

रोमाण्टिक और रहस्यवादी काव्य से प्रभावित होती हैं। वह छायावाद के अन्तर्गत रहस्यवाद की कवयित्री मानी जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके विषय मे लिखा है–

'छायावादी कहे जाने वाले कवियो मे महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रही है। उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही इनके हृदय का भाव केन्द्र है जिनसे अनेक प्रकार की भावनाएँ, छूट–छूट कर झलक मारती रहती है।'[50]

महादेवी वर्मा रहस्यवाद को छायावाद का ही दूसरा चरण मानती हैं। इसका प्रथम चरण प्रकृति का वैविध्य और उसके सौन्दर्य का मानवीकरण है। जब स्वच्छन्दतावादी कवि प्रकृति–सौन्दर्य के प्रति समर्पित हुआ, तब रहस्यवाद की शुरुआत हुई। महादेवी वर्मा के शब्दो मे– 'इसी से इस अनेकरुपता (प्रकृति की) के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना, इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवादी नाम दिया गया।'[51]

महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य से रहस्यवाद को जोडकर उसे आधुनिक रूप दिया और मध्ययुगीन रहस्यवादी प्रवृत्तियो से उसके पृथक् व्यक्तित्व की घोषणा की। उन्होने आधुनिक रहस्यवाद को धर्म निरपेक्ष प्रमाणित किया और आत्मसमर्पण को उसका प्रस्थान बिन्दु घोषित किया। अलौकिक तत्वो के होते हुए उसमे अनुभूति की तीव्रता को एक आवश्यक उपादान के रूप मे स्वीकार किया।

महादेवी वर्मा का समस्त काव्य वेदनामय है। यह वेदना लौकिक वेदना से भिन्न आध्यात्मिक जगत की वेदना है जो उसी के लिए सहज सवेद्य हो सकती है, जिसने उस अनुभूति क्षेत्र मे प्रवेश किया हो। वैसे महादेवी इस वेदना को उस दुख की भी सज्ञा देती हैं जो सारे ससार को एक सूत्र मे बॉधे रखने की क्षमता रखता है। 'रश्मि' की भूमिका मे उन्होंने लिखा है– 'अपने दुखवाद के विषय मे भी दो शब्द कह देना आवश्यक जान पडता है। सुख और दुख के धूप–छाहीं डोरो से बुने हुये जीवन मे मुझे केवल दुख ही गिनते रहना क्यो इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यो का उत्तर दे सकना मेरे लिये किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। ससार साधारणत जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नही है। जीवन मे मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा मे सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुख की छाया नहीं पडी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है

कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।'[52] विश्व को एक सूत्र मे बॉधने वाला दु ख लौकिक दु ख ही होता है जो भारतीय साहित्य की परम्परा मे करुण रस का स्थायी भाव होता है। महादेवी ने इस दुख को नहीं अपनाया है। उन्होने लिखा है–

'मुझे दु.ख के दोनो ही रूप प्रिय है, एक वह जो मनुष्य के सवेदनशील हृदय को सारे ससार से एक अविच्छिन्न बंधनो मे बॉध देता है और दूसरा वह, जो काल और सीमा के बधन मे पडे हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।'[53]

महादेवी वर्मा के काव्य मे पहले प्रकार का नही, दूसरे प्रकार का क्रन्दन ही अभिव्यक्त हुआ है। यह वेदना सामान्य लोक हृदय की वस्तु नही है। सम्भवत इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उसकी सच्चाई मे ही सन्देह व्यक्त करते हुए लिखा है–

वेदना से इन्होने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती है। उसके आगे मिलन सुख को भी वे कुछ नहीं गिनती। वे कहती है कि– मिलन का मत नाम ले मैं विरह मे चिर हूॅ। इस वेदना को लेकर इन्होने हृदय की ऐसी अनुभूतियॉ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहॉ तक वे वास्तविक अनुभूतियॉ है और कहॉ तक अनुभूतियो की रमणीय कल्पना है, यह नही कहा जा सकता।'[54]

इसी आध्यात्मिक वेदना की दिशा मे प्रारम्भ से अन्त तक महादेवी के काव्य की सूक्ष्म और विवृत भावानुभूतियों का विकास और प्रसार दिखाई पडता है। किन्तु महादेवी वर्मा की व्याख्या उनके दु ख का स्वरूप निश्चित नहीं कर पाती। डॉ0 बच्चन सिह ने लिखा है–

'यह वेदना अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणय–निवेदन के रूप मे हुई है। छायावादी कवियो ने प्रेम–निवेदन को रहस्य के अनेक पर्तों मे लपेटकर उसे दिव्य, पवित्र, अलौकिक जाने क्या–क्या नाम दिया है। इस तरह वे परम्परागत नैतिकता के दबाव मे लिख रहे थे। इस दबाव और मुक्ति के आग्रह के बीच जो तनाव आया उससे छायावाद की प्रेम–कविता का जन्म हुआ। स्त्री होने के नाते महादेवी मे यह तनाव अधिक घने रूप मे उभरा। स्त्री और पुरुष की प्रेम जन्य वेदना में कोई मौलिक अन्तर नही होता है। पर परम्परागत संस्कारो के कारण स्त्री की अनुभूति मे तीव्रता अधिक होती है। कहना न होगा कि छायावादी

कवियो मे महादेवी जैसी वेदना–जनित विह्वलता किसी अन्य मे नहीं है। इसे उन्होने प्रकृति के नाना उपकरणो द्वारा अज्ञात प्रियतम के प्रति आत्मनिवेदन के रूप मे अभिव्यक्त किया है।'[55]

महादेवी वर्मा के प्रमुख काव्य सग्रह इस प्रकार है– नीहार, रश्मि, नीरजा, साध्यगीत, दीपशिखा।

नीहार : भावुकता का प्राधान्य

'नीहार' महादेवी वर्मा की प्रथम काव्य–कृति है। इसका प्रकाशन सन् 1930 ई0 मे हुआ था। इसकी भूमिका अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध' ने लिखी थी। इसमे महादेवी की 1923 ई0 से लेकर 1929 ई0 तक के बीच लिखी कुल 47 कविताएँ सग्रहीत हैं। यद्यपि ये कवयित्री की प्रारभिक रचनाएँ हैं पर इनमे काव्य की वह उत्कृष्टता और व्यक्तित्व की वह छाप स्पष्ट दिखाई पडती है, जो उनकी परवर्ती रचनाओ मे विशेष रूप से परिस्फुट और विकसित रूप मे सामने आयी।

महादेवी प्रेम की कवयित्री हैं। 'नीहार' मे प्रेम का जीवन पर व्यापक प्रभाव दिखलाया गया है। प्रिय से परिचय होने के पूर्व उनकी भावना प्रकृति के रूप रगो मे लीन होकर उसके स्पन्दनो का अनुभव करती थी, परन्तु प्रिय के सपर्क मे आने के बाद तो मन ऐसा भावलोक पा गया, जिसने समस्त प्रकृति को अपने ही रग मे रग दिया। प्रिया के साथ उसका मिलन केवल स्वप्न नही है–

'कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात,
भरे हुए अब तक फूलो मे
मेरे ऑसू उनके हास।'

भावना का सहज् एव स्वत स्फूर्त उच्छलन 'नीहार' के गीतों की मुख्य विशेषता है। 'नीहार' तक महादेवी वर्मा न तो व्यक्तिगत अनुभूतियो से तटस्थ हो पायी थी और न अभिव्यजना मे निर्वैयक्तिक। इन गीतो मे कच्चापन चाहे जितना हो, अनुभूति का ताप कलात्मक सौष्ठव की कमी का अनुभव नही होने देता। 'नीहार' मे महादेवी वर्मा ने एक सीमा तक अपने आपको उद्घाटित किया है। इसके गीतो– जैसी हार्दिकता तथा मार्मिकता परवर्ती संग्रहो मे कम ही देखने को मिलती है। महादेवी ने भी स्वीकार किया है

कि 'नीहार' का काव्य उस स्थिति का है, जब भावो के पारावार से गिरा मौन हो जाती है।[56] एक दूरागत झकार यद्यपि इसमे भी सुनायी पडती है और असीम–ससीम का खेल भी चलता है–

'जब असीम से हो जायेगा,
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव अमरता,
खेलेगी मिटने का खेल।'[57]

परन्तु वैयक्तिक सदर्भों के सस्पर्श 'नीहार' के गीतो को सजीवता प्रदान करते हैं। महादेवी प्रेम की पीडा को सिर माथे चढाकर टूटे तारो से ही निरन्तर करुण विहाग छेडती रहती हैं–

'पहली सी झकार नहीं है,
और नहीं वह मादक राग,
अतिथि किन्तु सुनते जाओ ?
टूटे तारो का करुण विहाग।'[58]

वह करुण विहाग इस आशा से छेडती है कि कभी तो प्रिय से मिलन होगा–

'नहीं अब गाया जाता देव,
थकी उँगली है ढीले तार,
विश्व वीणा मे अपनी आज,
मिला लो यह अस्फुट झंकार।'[59]

इस प्रकार 'नीहार' के गीतो मे भावुकता का प्राधान्य है।

रश्मि : चिन्तन की नयी दिशा

'रश्मि' महादेवी वर्मा का दूसरा काव्य सकलन है। इसका प्रकाशन 1932 ई0 मे हुआ था। इसमें कुल 35 कविताये संकलित हैं। इस संग्रह की कविताओ मे 'नीहार' की अपेक्षा अधिक प्रौढता है। इस सग्रह की कविताओ मे महादेवी के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य निखर कर सामने आया है। इनमे कवयित्री ने अपना निजी दार्शनिक और आध्यात्मिक व्यक्तित्व निर्मित कर लिया है।

महादेवी वर्मा ने अपने दु:खवादी दर्शन के सम्बन्ध मे अपनी कई कविताओ मे स्पष्ट किया है। ऐसी कविताएँ दो प्रकार की है– दार्शनिक चिन्तन प्रधान और आध्यात्मिक भूमि पर आधारित। 'दुख', 'रहस्य', 'विस्मय' आदि कविताये दार्शनिक हैं, जिनमे दुख का महत्व, सृष्टि का विकास और ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध की काव्यात्मक व्याख्या की गयी है। सृष्टि के विकास का सिद्धान्त महादेवी ने साख्य दर्शन से लिया है। ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध उन्होने शकर के अद्वैत के आधार पर निरुपित किया है। आध्यात्मिक अनुभूति युक्त कविताओ मे उन्होंने ब्रह्म के लिये जीव की व्याकुलता और विरह–वेदना की स्वानुभूत भावनाओ की अभिव्यक्ति की है। 'स्मृति', 'आह्वान', 'वे दिन', 'मेरा पता', 'पहिचान', 'निभृत', 'मिलन' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं, जिनमे महादेवी की वेदनामूलक रहस्यवादी अभिव्यक्ति हुई है।

रहस्यात्मक अनुभूतियो के अतिरिक्त इस सग्रह की अनेक कविताओ मे छायावाद की सामान्य प्रवृत्ति–विराट् विश्व के प्रति जिज्ञासा मूलक दृष्टि वर्तमान है। विश्व–जीवन, उसके मूल स्रोत, विकास और नाश, जगत् का सौन्दर्य और वैचित्र्य–सभी उनके कौतूहल पूर्ण प्रश्नों के विषय हैं। इस जिज्ञासा–वृत्ति के फलस्वरूप वह अपने और अपने अज्ञात प्रिय को तात्विक रूप में पहचानने मे सफल होती है। इस तरह उनकी विरह–वेदना ही उनकी व्यक्ति सत्ता का समष्टि सत्ता से तादात्म्य स्थापित करती है। 'रश्मि' का प्रकाश उसी ज्वलन्त वेदना का प्रकाश है।

महादेवी 'नीहार' की अपेक्षा 'रश्मि' को अपने अधिक निकट बतलाती हैं।[60] सच तो यह है कि 'नीहार' के रचनाकाल तक आत्मगोपनता की कला नहीं सीख सकी थी। उनकी सहज सवेदना पर संकोच तब तक हावी नहीं हुआ था। वैयक्तिक सदर्भों से जुडे रहने के कारण 'नीहार' के गीतो की हार्दिकता और आत्मीयता आगे चलकर स्वय उन्हीं को अटपटी लगती है, क्योकि इस बीच वे अपने प्रकृत भावावेगों को दबाने या रुपान्तरित करने की अभ्यस्त हो चली है। महादेवी तीव्र संवेदनो की कवयित्री हैं, उनकी प्रकृत भूमि अनुभूति है, चितन नहीं। जब वे 'रश्मि' काल मे भावलोक को छोडकर चितन के लोक मे प्रवेश करती हैं तो स्वयं यह प्रश्नकरती हैं– 'अश्रुमयि रंगिनि! कहॉ तू आ गयी परदेशिनी री!' बाह्य जगत से तटस्थ होकर वे पूर्णतः आत्मस्थ तथा अन्तर्मुख होने की चेष्टा करती है। महादेवी 'नीहार' की अपेक्षा 'रश्मि' को इसलिए अपने अधिक निकट मानती है, क्योकि वह चिंतन–प्रधान काव्य है। वे चिंतन

के आत्म–निरपेक्ष, सार्वभौमिक और निर्वैयक्तिक घेरे के भीतर आश्वस्ति तथा सुरक्षा का अनुभव करती है। प्रेम और वेदना तो आद्यन्त उनके काव्य–विषय हैं, परन्तु वे अपने प्रेम को निर्वैयक्तिक धरातल पर प्रतिष्ठित करते हुये वेदना का अभिव्यक्तिकरण कर देती हैं। मानवीय राग की कवयित्री वैराग्य की मुद्रा धारण कर लेती है। उनकी सवेदनशीलता दार्शनिक आधार लेने को बाध्य है। सुमित्रानदन पन्त भी मानते हैं कि नारी–हृदय का सहज सकोच और तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति की पृष्ठभूमि मे नारी–जीवन की सीमा ने ही महादेवी को मध्ययुगीन रहस्यवाद की ओर उन्मुख किया।[61] वे 'रश्मि' मे काव्य के भीतर दार्शनिक प्रश्नो को छेडने का उपक्रम करती हैं। वे ब्रह्म और जीव, जीवन और मृत्यु, मुक्ति और अमरता आदि पर अस्फुट विचार प्रस्तुत करती है। समुचित अभिव्यजना–शक्ति के अभाव मे 'रश्मि' की चितन प्रधान अनुभूति सब कहीं काव्य–रूप मे नहीं ढल सकी है। फिर भी कवयित्री इस तथ्य से परिचित हो चली है कि जिस निर्वैयक्तिक सार्वभौमिक और आध्यात्मिक अनुभूति की व्यजना उन्हे अभीष्ट है, वह प्रतीको के माध्यम से ही व्यक्त हो सकती है। प्रकृति विषयक कविताओ की इसमे कमी है। यहॉ प्रकृति का प्रयोग अधिकतर चितन और विचारो को मूर्त रूप देने के लिए हुआ है।

नीरजा : सामंजस्यपूर्ण भाव चेतना

'नीरजा' महादेवी का तीसरा काव्य–सग्रह है। इसका प्रकाशन 1934 ई0 मे हुआ था। इसमे कुल 58 कविताऍ सकलित है। जिस तरह इस सग्रह मे उनकी भावनाऍ अधिक सयमित, आत्मनिष्ठ और अभिव्यजना अधिक भावावेश युक्त हो गयी है, उसी तरह इसमे कविताओ का काव्य रूप भी गीति काव्य का है, क्योंकि गीतिकाव्य मे ही संयमित भावातिरेक की अभिव्यक्ति कम से कम शब्दो मे और आन्तरिक भाव लय के अनुरूप शेष छान्दसिक लय मे हो सकती है।

'नीरजा' मे महादेवी की वह सामजस्यपूर्ण भाव–चेतना दृष्टिगत होती है, जिसमें दु ख और सुख मिलकर एक हो गये है। डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है– 'इसमे वेदना काम्य होने से आगे बढकर आस्था बन जाती है। आस्था काव्य के रूप मे ढलकर सान्द्र हो उठती है और 'नीरजा' का काव्य रूप अपने स्थापत्य में अप्रतिम बन जाता है।'[62]

इस सग्रह मे प्रकृति–चित्रण की अधिकता है, किन्तु प्रकृति को महादेवी ने आलम्बन–रूप मे नही ग्रहण किया है। कही वह उद्दीपन रूप मे ग्रहीत है, कहीं प्रतीक और सकेत के रूप मे और कही केवल आलकारिक अप्रस्तुत के रूप मे। प्रकृति के विभिन्न रूपो मे कभी कवयित्री को अपने आध्यात्मिक प्रियतम का रूप दिखाई पडता है–

'तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाई रजनी विषाद मय।'

कभी प्रकृति उसे अपने ही समान उसी प्रियतम से मिलने के लिए आकुल दीख पडती है जिसके लिए वह स्वय तडप रही है। ऐसे गीतो में प्रकृति अभिसारिका के रूप मे दिखाई पडती है। इस कारण प्रकृति उसकी सहयोगिनी और सहायिका बनकर प्रिय के आगमन का सकेत करती है–

'मुसकाता सकेत भरा नभ,
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?'

कुछ ऐसे गीत हैं जिनमे प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण हुआ है। परन्तु इनमे भी प्रकृति को नारी रूप मे ही चित्रित किया गया है। 'धीरे–धीरे उतर क्षितिज से', ,विरह का जलजात जीवन', 'वीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ', 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल', 'मुखर प्रिय हौले बोल', 'टूट गया वह दर्पण निर्मम', 'ओ विभावरी' आदि अनेक श्रेष्ठ गीत इस सग्रह मे सग्रहीत हैं।

'नीरजा' महादेवी की प्रौढ कृति है। 'रश्मि' मे उन्होने चितन की दिशा तो पकड ली थी, परन्तु उनके पख सुकुमार थे और उडाने लम्बी। 'नीरजा' तक आते–आते उनकी अभिव्यजना शक्ति इतनी सक्षम हो चली थी कि एक सीमा तक चितन का भार उठा सके। उन्होने अपने लिए एक सीमित भाव–क्षेत्र चुन लिया। इसमे सदेह नहीं कि इस भाव–क्षेत्र पर उनका अच्छा अधिकार है। उनकी कल्पना एक निश्चित सीमा के भीतर उडाने भरती है। उन्हे अपने आकाश की लम्बाई–चौडाई का भी ज्ञान है और अपने डैनो की शक्ति का भी। 'नीरजा' तक पहुँचकर महादेवी तय कर लेती हैं कि उन्हे क्या कहना है, और क्या नहीं। और जितना कुछ कहना उन्होने तय किया, उसे कहने की योग्यता भी धीरे–धीरे सचित कर ली। अनुभूति पर चितन को तरजीह देकर उन्होने अपनी दार्शनिकता के अनुरूप सवेदनशीलता की सीमा

निर्धारित कर दी। यही कारण है कि तीव्र सवेदनो की कवयित्री होकर भी महादेवी अपने काव्य मे बिम्बो का कम और प्रतीको का अधिक प्रयोग करती हैं। इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है कि 'महादेवी वर्मा का चितन जिस अनुपात मे गहराता है, उसी अनुपात मे उनके काव्य मे प्रतीको का अधिक प्रयोग होने लगता है।'[63]

महादेवी के काव्य–सग्रहो मे 'नीरजा' का कई दृष्टियो से विशेष महत्व है। 'नीरजा' के गीत वैयक्तिकता के हल्के सस्पर्शों से प्राणवान हो उठे है। महादेवी जिस चितनमयी अनुभूति या अनुभूतिमय चितन को अपने काव्य का विषय बनाती हैं, 'नीरजा' के कई गीतो मे उसकी सफल अभिव्यजना हुई है। वे जिस विशिष्ट अनुभूति को ऑकना चाहती थी, उसके अनुरूप अभिव्यजना पद्धति का उन्होने इस बीच विकास कर लिया। अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की सहज मैत्री से उद्भूत 'नीरजा' की कुछ कवितायें टकसाल के निकले सिक्को के समान चमकदार और निर्दोष हैं। अनुभूति और चितन एक दूसरे मे घुल–मिल कर शब्द–रूप पा गये हैं। अपनी विशिष्ट अनुभूति को व्यजित करने के लिए उन्हें जिस प्रतीक शैली की तलाश थी, वह 'नीरजा' के रचना–काल मे मिल गयी। इसके अतिरिक्त केवल दुख के पक्ष को महत्व देने के कारण उनके जीवन–दर्शन मे जो एकागिता तथा एकपक्षता आ गयी थी, 'नीरजा' मे उसका परिहार तो नहीं हो सका, परन्तु महादेवी ने उसका अनुभव अवश्य किया। उन्होने लिखा है– 'नीरजा और साध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेगे जिससे अनायास ही मेरा हृदय सुख–दुख के सामजस्य का अनुभव करने लगा।'[64]

'नीरजा' मे भी प्रमुखता तो वेदना के स्वर को ही मिली है, यहॉ विशेषता यह है कि महादेवी के द्वारा वरण किये गये दुःख मे प्रिय के मिलन की अनुभूति भी शामिल है। इस सग्रह के गीतों मे प्रकृति–रूप–वर्णन में भी उल्लास और मादकता है–

'सिहर–सिहर उठता सरिता–उर,
खुल–खुल पडते सुमन सुधा भर।
मचल–मचल आते पल फिर–फिर,
सुन प्रिय की पदचाप हो गयी,

पुलकित यह अवनी,
सिहरती आ वसन्त रजनी।'[65]

सांध्यगीत : वैराग्य भावना

'साध्यगीत' महादेवी वर्मा का चौथा काव्य–सग्रह है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1936 ई0 मे हुआ था। इसमे 45 गीतो का सकलन किया गया है। इन गीतो मे ऐसी वैराग्य भावना मिलती है जो साधक को सुख–दुख दोनो मे समरस बनाती है।

'नीरजा' की भॉति 'साध्यगीत' मे भी महादेवी के काव्य प्रतीक बादल और दीपक हैं। दीपक उनके काव्य का केन्द्रीय प्रतीक है। वह अपने को ऐसा दीपक मानती हैं, जिसे उसके परोक्ष प्रियतम ने जीवन की ज्वाला देकर जलाया था और तब से वह जगत के अधकार मे अकेला जल रहा है। परन्तु मृत्यु की झझा उसे बुझा नहीं पायेगी, क्योकि यह आवागमन के रूप मे बार–बार जलेगा, बुझेगा। निष्काम और अचचल दीपक चिरसाधना मे लीन है। साधना की पूर्णता व्यक्तित्व के विसर्जन मे है, स्वेच्छा से दुख का आलिगन कर अपने आप को गलाते हुये चतुर्दिक् आलोक का पुज बिखेरना ही कवयित्री के जीवन की चरम सिद्धि है। इस प्रतीक की परवर्ती काव्य–सग्रहो मे केवल आवृत्ति ही नहीं होती, वरन् महादेवी की अन्तिम कृति का नामकरण भी इसी आधार पर हुआ है।

'साध्य–गीत' के हल्के प्रकाश के बीच रगीन छाया–चित्रो का नियोजन किया गया है। इस सग्रह तक आते–आते कवयित्री वास्तविक जगत् से रहा–सहा सम्बन्ध भी समाप्त कर पूर्णत आत्मस्थ और अन्तर्मुख हो जाती है। प्रेम का निर्वैयक्तीकरण तथा वेदना की अभिव्यक्ति 'सान्ध्यगीत' की रचनाओ को सूक्ष्म तथा आध्यात्मिक भूमिका प्रदान करते हैं। कवयित्री अपना परिचय देते हुये कहती हैं–

'मैं नीड भरी दुख की बदली।
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन मे आहत विश्व हॅसा
नयनों मे दीपक से जलते
पलको मे निर्झरिणी मचली।'

× × × × ×

'विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमडी कल थी मिट आज चली।'

यह उनका अपना ससार है– ऑखो मे दीप जलने का ससार, क्रन्दन मे दुखी विश्व के हसने का जगत्। यही उनका साध्य है और यही साधन भी है। इसे दूसरे शब्दो मे दुख की साधना भी का जा सकता है।

'रश्मि' मे तो महादेवी अधिकतर असीम के प्रति जिज्ञासा या दार्शनिक प्रश्नो के प्रति बौद्धिक और कुतूहलजन्य प्रतिक्रियाये व्यक्त करके रह जाती है, परन्तु 'साध्यगीत' मे उनकी प्रतिक्रिया कोरी बौद्धिक तथा विस्मयजन्य न रहकर गम्भीर तथा भावात्मक बन गयी है। 'नीरजा' की तुलना मे 'साध्यगीत' की रचनाओ मे आत्मनिरपेक्षता और भावो का ठडापन अधिक है। डॉ0 नगेन्द्र के मतानुसार भी 'साध्यगीत' मे जिस अनुपात मे पीडा का अभिव्यक्तीकरण हुआ है, उसी अनुपात मे उसकी अनुभूति की तीव्रता भी कम हुई है।[66] अनुभूति का ताप जिस मात्रा मे घटा है, उसी मात्रा मे चितन की अभिव्यक्ति हुई है। वास्तव मे, 'साध्यगीत' महादेवी के अन्तर्मुखी चिन्तन से प्रसूत काव्य ग्रन्थ है जिसमे भावो की तीव्रता कम और दार्शनिकता अधिक है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'साध्यगीत' की दार्शनिकता की सराहना करते हुये उसकी सीमाओ को भी रेखाकित किया है। वे इन गीतो की रहस्य–भावना से तो सतुष्ट प्रतीत होते हैं, परन्तु अभिव्यक्ति पक्ष से नही। वे 'साध्यगीत' की अनुपयुक्त रूप–योजना के दो कारण बतलाते हैं– काव्य शक्ति की अपेक्षया कमी और सीमित कल्पना–शक्ति।[67] काव्य मे अनुभूति–अभिव्यक्ति की आन्तरिक सगति अनिवार्य है। यदि किसी रचना का अभिव्यक्ति पक्ष दुर्बल प्रतीत होता है, तो उसकी दार्शनिक एकता की प्रशंसा का

कोई अर्थ नही है। सच तो यह है कि महादेवी मे न तो कल्पना–शक्ति का अभाव है और न सवेदनो की विरलता या शब्द भण्डार की कमी ही।

व्यक्तिगत दु ख–सुख को काव्य का एक मात्र विषय मानकर भी महादेवी को सामाजिक कारणो से अपने काव्य के लिए एक नयी दिशा ढूढने के लिए बाध्य होना पडा था। चितन का व्यक्ति–निरपेक्ष जगत उन्हे अपने लिए अधिक सुरक्षित जान पडा। अपनी अनुभूति को जीवन–सदर्भों से अलग करते हुये उन्होने उसे सार्वभौमिक और निर्वैयक्तिक रूप देकर चितन के अनुरूप बनाया और इस प्रकार अपने लिए एक रहस्यवादी भूमिका निर्मित की।

एक निर्धारित सीमा के भीतर काव्य–कला का पर्याप्त प्रस्फुटन महादेवी की काव्य–प्रतिभा का द्योतक है। 'साध्यगीत' मे उनकी इसी सीमा के सामर्थ्य के दर्शन होते हैं। इन गीतो मे भावोच्छ्वास और विह्वलता उतनी ही है जितनी एकाग्रता और तन्मयता। उनके चितन को जहॉ–जहॉ काव्य–रूप मिल सका, वहॉ रचना अच्छी बन पडी है–

'प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण–क्षण नवीन सुहागिनी मैं।'

दीपशिखा : ज्योति का लघु प्रहरी

'दीपशिखा' महादेवी वर्मा का पॉचवा काव्य–सग्रह है। इसका प्रथम सस्करण सन् 1942 ई0 मे प्रकाशित हुआ था। इसमे कुल 51 गीत सकलित है। पूर्ववर्ती काव्य–सग्रह मे यदि महादेवी साधनावस्था मे थी तो 'दीपशिखा' मे वे सिद्धावस्था मे पहुँच गयी है, जिसमे साधिका की आत्मा की दीपशिखा आराध्य की ज्योति मे विलीन हो गयी है। इस सग्रह मे 14 गीत तो पूर्णत दीपक के रूपक पर आधारित है और अन्य गीतो मे बीच–बीच मे दीपक का प्रसग बार–बार आया है। उन्होने लिखा है– 'आलोक मुझे प्रिय, पर दिन से अधिक रात का – दिन मे तो अन्धकार से उसके सघर्ष का पता ही नही चलता, परन्तु रात मे हर झिलमिलाती लौ योद्धा की भूमिका मे अवतरित होती है। इस नाते दीपशिखा मेरे अधिक निकट है।' 'यह मन्दिर का दीप अकेला' नामक कविता में वे लिखती हैं–

'यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो।

झझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी
जब तक लौटे दिन की हलचल
तब तक यह जायेगा प्रतिफल
रेखाओ मे भर आभा–जल
दूत सॉझ का इसे प्रभाती तक जलने दो।'

मध्यकाल मे दीपशिखा को सौन्दर्य का प्रतीक माना जाता था, छायावाद मे अधकार से जूझते हुये व्यक्तित्व का प्रतीक बन गयी। महादेवी अपनी अडिग आस्था के साथ कहती हैं–

'पथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला,
अन्य होगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते, दे शूल को सकल्प सारे,
दुख व्रती निर्माण उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बॉध देगे अक ससृति,
से तिमिर मे स्वर्ण बेला।'

महादेवी ने आरभ से ही अपने काव्य के चारो ओर एक सीमा रेखा खीच दी थी। इस सीमा से बाहर जाने की इच्छा भी उनके मन मे कभी नही जागी। इसके भीतर की चप्पा–चप्पा धरती उनकी जानी पहचानी है। महादेवी का महत्व नयी भाव–भूमियो और नवीन अभिव्यजना पद्धतियो के अन्वेषण की अपेक्षा अपनी सीमित काव्य वस्तु के पूर्ण परिष्कार में है। वे अपने सपूर्ण काव्य मे भावना और चितन की जिन स्थितियो को व्यक्त करती है, उनकी सख्या अधिक नही है। वे 'दीपशिखा' तक आते–आते उन सबो से पूर्णत परिचित हो चली थी। उन्हे व्यक्त करने के लिए जिस विशिष्ट अभिव्यजना–पद्धति का उन्होने विकास किया था, 'दीपशिखा' की रचना तक उस पर उनका पूरा अधिकार हो चला था। वे 'नीहार' के

रचनाकाल से अनुभूति और अभिव्यक्ति के जिन क्षेत्रो का अन्वेषण करने को चली थी, 'दीपशिखा' मे उस अन्वेषण की पूर्णता देखने को मिलती है।

'दीपशिखा' का महत्व नये भाव या कलागत प्रयोगो के कारण नही, वरन् पिछले प्रयोगो को चरितार्थता तक पहुँचाने मे है। इसमे महादेवी की भावाभिव्यजना का सबसे समर्थ तथा विकसित रूप देखने को मिलता है। उन्होने जिस प्रतीक शैली का वर्षों से अभ्यास किया था, 'दीपशिखा' मे उसका सहज, आयासहीन प्रयोग हुआ है। शब्द-चयन, अलकार-विधान, और छन्द-योजना इत्यादि के सम्बन्ध मे भी यही बात कही जा सकती है। 'दीपशिखा' तक पहुँचकर महादेवी पूर्णत अन्तर्मुखी हो गयी है। बाह्य जगत् से उनका रहा-सहा सम्बन्ध भी समाप्त हो गया। उनके काव्य की अनुभूति या तो क्षीण हो गयी है या चितन के रूप मे ढल गयी है। आभ्यान्तर के प्रति उनके समर्पण को सम्पूर्णता मिल गयी है। 'साध्यगीत' की दार्शनिकता यहॉ और गहरायी है। उनकी चितन-प्रधान अनुभूति को यहॉ निश्चय ही अधिक व्यक्त और मूर्त रूप मिल सका है। भावना, चितन और अभिव्यजना का यह सयोग 'दीपशिखा' को महादेवी ही नही, वरन् उनके युग की भी एक महत्वपूर्ण कृति बना देता है।

काव्य-साधना का अतिम चरण होने के नाते 'दीपशिखा' मे महादेवी की दृष्टि की एकपक्षता और एकागिता काफी कम हो गयी है। उन्हे 'नीरजा' और 'साध्यगीत' के रचनाकाल मे इस एकागिता का अनुभव हुआ था और उन्होने दु ख-सुख के सामजस्य की बात कही थी। 'दीपशिखा' मे एक हद तक यह सामजस्य घटित होता है। यहॉ महादेवी अपनी पीडा से उबर जाती है। पीडा का जो भी दश अब शेष रहा था, वह समाप्त हो जाता है। डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है कि 'यहॉ पीडा की ज्वाला ही दीपशिखा बन गयी है जो पृथ्वी को आलोकित करके अपना घुल जाना ही वरदान मानती है।'[68]

'दीपशिखा' का केन्द्रीय प्रतीक 'दीपक' है। इसके अतिरिक्त इसमें यात्रा, मेघ, सरिता और शिशु-जननी प्रतीको के भी विशेष प्रयोग हुये हैं। ये सारे प्रतीक किसी न किसी रूप मे प्रेम की साधना से जुडे है। 'नीहार' का स्वप्न 'दीपशिखा' तक बराबर चलता है। यह स्वप्न उनके जीवन की सबसे बडी निधि है। उनका काव्य इसी स्वप्न की कलात्मक परिणति है। बाह्य जगत और व्यावहारिक जीवन से परे

यह स्वप्न लोक ही उनका वास्तविक जीवन है। इस स्वप्न लोक मे प्रेम की सत्ता है। वे कहती है–

'मैं पलको मे पाल रही हूँ
यह सपना सुकुमार किसी का
जाने क्यो कहता है कोई
मैं तम की उलझन मे खोई
धूममयी वीथी–वीथी मे
लुक–छिप कर विद्युत–सी रोई
मैं कण–कण मे टाल रही अलि
ऑसू के मिस प्यार किसी का।'

'दीपशिखा' मे मेघो पर कई सुन्दर गीत मिलते है–

'कहॉ से आये बादल काले ?
कजरारे मतवाले?
शूल भरा जग धूल भरा नभ
झुलसी देख दिशाए निष्प्रभ
सागर मे क्या सो न सके यह
करुणा के रखवाले ?'[69]

दीपक और मेघ की भॉति यात्रा और यात्री भी 'दीपशिखा' के प्रमुख प्रतीको मे है। एक तरह से महादेवी का सम्पूर्ण काव्य ही एक अनोखे स्वप्न–लोक की यात्रा है। रात्रि का सघन अधकार चारो ओर फैला है, आकाश मे बादल घुमड रहे हैं, दिशाओ मे तूफान चल रहे है, पथ कठिन भी है और अनजान भी और यात्री अकेला है, दूर कहीं पर दीप जल रहा है, वेदना और अश्रुकणो का पाथेय लेकर यात्री इस पथ पर बढ चलता है–

'पथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।

और होगे चरण हारे

और है जो लौटते दे शूल को सकल्प सारे

दुखव्रती निर्माण उन्मद

ये अमरता नापते पद

बॉध देगे अक ससृति से तिमिर मे स्वर्ण बेला।"[70]

महादेवी मूलत प्रेम और वेदना की कवयित्री है। उनका प्रेम अर्न्तमुख और पीडा अन्तश्चेतना मूलक है। इसके अनुरूप उनकी व्यजना भी सूक्ष्म, निगूढ और प्रतीकात्मक है।

संदर्भ

1 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – आधुनिक कविता–यात्रा, पृष्ठ–21

2 गजानन माधव मुक्तिबोध – कामायनी· एक पुनर्विचार, पृष्ठ–45

3 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – प्रसाद–निराला–अज्ञेय, पृष्ठ–34

4 डॉ0 प्रेमशकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –148

5 डॉ0 रामरतन भटनागर – जयशकर प्रसाद जीवन दर्शन–कला व कृतित्व, पृष्ठ–94

6 डॉ0 प्रेमशकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–159

7 इन्द्रनाथ मदान – जयशकर प्रसाद चितन और कला, पृष्ठ–9

8 वही, पृष्ठ–8

9 डॉ0 प्रेमशकर – प्रसाद का काव्य, पृष्ठ–193

10 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–593

11 वही, पृष्ठ–594

12 डॉ0 प्रेमशकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–171

13 जयशकर प्रसाद – कामायनी–आमुख

14 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – आधुनिक कविता–यात्रा, पृष्ठ–41

15 डॉ0 रामरतन भटनागर – निराला और नव जागरण, पृष्ठ–70

16 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – नये पत्ते, पृष्ठ–46

17 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – परिमल–भूमिका, पृष्ठ–12

18 वही, पृष्ठ–15

19 धनंजय वर्मा – निराला काव्य और व्यक्तित्व, पृष्ठ–139

20 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – अनामिका, पृष्ठ–14

21 वही, पृष्ठ–13

22 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – अनामिका, पृष्ठ–90

23 वही, पृष्ठ–93–94

24 वही, पृष्ठ–98

25 रामविलास शर्मा – निराला राग–विराग, पृष्ठ–30

26 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – अनामिका, पृष्ठ–110

27 वही, पृष्ठ–110

28 वही, पृष्ठ–110–111

29 वही, पृष्ठ–117

30 दूधनाथ सिह – निराला . आत्महता आस्था, पृष्ठ–124–125

31 रामविलास शर्मा – तुलसीदास और राम की शक्ति पूजा (निराला–सपादक–इन्द्रनाथ मदान), पृष्ठ–80

32 डॉ0 प्रेमशकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–257

33 वही, पृष्ठ–257

34 सुमित्रानन्दन पन्त – साठ वर्ष एक रेखाकन, पृष्ठ–32–33

35 डॉ0 प्रेमशकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–298

36 वही, पृष्ठ–304

37 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, पृष्ठ–156

38 डॉ0 बच्चन सिह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–191

39 सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव–भूमिका (प्रवेश), पृष्ठ–15–16

40 सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव, पृष्ठ–52

41. डॉ0 प्रेमशकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–310

42. सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव, पृष्ठ–62

43. वही, पृष्ठ–62

44 सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव, पृष्ठ–140

45 सुमित्रानन्दन पत – पल्लव, पृष्ठ–142

46 वही, पृष्ठ–151

47 सुमित्रानन्दन पन्त – तारापथ (भावी पत्नी के प्रति–गुजन से), पृष्ठ–95

48 सुमित्रादन पन्त – तारापथ (गुजन से), पृष्ठ–107

49 सुमित्रानन्दन पन्त – ग्राम्या (भारत माता), पृष्ठ–48

50 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–487

51 महादेवी वर्मा – साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, पृष्ठ–94

52 महादेवी वर्मा – रश्मि–भूमिका, पृष्ठ–6

53 वही, पृष्ठ–7

54 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–487

55 डॉ0 बच्चन सिह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–202–203

56 महादेवी वर्मा – यामा (नीहार), पृष्ठ–57

57 वही, पृष्ठ–5

58 वही, पृष्ठ–4

59 वही, पृष्ठ–1

60 महादेवी वर्मा – यामा–भूमिका (अपनी बात), पृष्ठ–6

61 इन्द्रनाथ मदान – महादेवी (सपादित), पृष्ठ–10

62 डॉ0 बच्चन सिंह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–204

63 इन्द्रनाथ मदान – महादेवी (सपादित), पृष्ठ–6

64 महादेवी वर्मा – यामा–भूमिका (अपनी बात), पृष्ठ–6

65. महादेवी वर्मा – यामा (नीरजा), पृष्ठ–130

66 डॉ0 नगेन्द्र – आस्था के चरण, पृष्ठ–585

67 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी – हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी, पृष्ठ–167

68 डॉ0 नगेन्द्र – आस्था के चरण, पृष्ठ–585

69 महादेवी वर्मा – दीपशिखा, पृष्ठ–48

70 वही, पृष्ठ–2

अध्याय–6

उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य

अध्याय –6

उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का चरमोत्कर्ष छायावादी काव्य के रूप मे विगत सदी के दूसरे दशक के उत्तरार्द्ध से आरम्भ होकर चौथे दशक के उत्तरार्द्ध तक अपने सर्वोत्तम सृजन–क्षणो से गुजरता है। इसके बाद प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नयी कविता आदि काव्यान्दोलन प्रारभ होते हैं। साहित्य के सदर्भ मे किसी प्रवृत्ति के लिए समय की कोई विभाजक रेखा नही खीची जा सकती। साहित्य मे कई प्रवृत्तियॉ एक साथ चलती रहती हैं। इस समय तक आकर स्वच्छन्दतावादी चेतना क्षीण होने लगती है, किन्तु यह चेतना पूरी तरह नष्ट नहीं हो जाती अपितु अन्त सलिला की भॉति प्रवाहित होती रहती है। इसके स्वरूप और सस्कार मे परिवर्तन आ जाता है। इसके कथ्य और शिल्प के दृष्टिकोण मे अन्तर आ जाता है। यह स्वच्छन्दतावादी धारा गीतात्मकता के रूप मे प्रकट होती है। इस परिवर्तित दृष्टिकोण के बाद भी इसमे एक उद्याम आवेगमयी अनुभूति विद्यमान है जो इसे स्वच्छन्दतावाद के विशिष्ट गुणो से युक्त बनाता है। इस काल के प्रमुख उत्तर स्वच्छन्दतावादी कवियो मे माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवशराय 'बच्चन', रामधारी सिह 'दिनकर' तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी

एक भारतीय आत्मा

उत्तर स्वच्छन्दतावादी कवियो मे माखनलाल चतुर्वेदी का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी पूरी काव्य–चेतना हमारे राष्ट्रीय इतिहास के उस दौर में सक्रिय हुई थी, जब अपने देश की पराधीनता की प्रतीति के कारण 'क्रान्तिशील' राष्ट्रीयता प्रबुद्ध, ईमानदार और सवेदनशील भारतीय का सबसे मूल्यवान और सार्थक गुण था। राष्ट्रीयता की धारा और प्रखर तथा वेगवती हो गयी थी। सत्ता से असहमति अब पर्याप्त नहीं थी, उसका स्थान अब विरोध एवं विद्रोह ने ले लिया था। सच्ची भारतीय आत्मायें अब असहयोगी एव विद्रोही की भूमिका में आ गयी थीं। जीवन के अन्य क्षेत्रों की भॉति तत्कालीन साहित्य की

भी महत्वपूर्ण प्रेरणा यदि विद्रोही राष्ट्रीयता हो गयी तो इसे स्वाभाविक ही कहा जायेगा। माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने लिए जब 'एक भारतीय आत्मा' का उपनाम चुना तो वे अपने समय के सच्चे भारतीय नागरिक एव सच्चे साहित्यकार दोनों की सच्ची भूमिका का ऐलान कर रहे थे। उन्होने कविता या कारा के स्थान पर कविता और कारा दोनो को स्वीकार किया। कविता लिखकर वे कैदी बने और कैदी बनकर कविताएँ लिखी।

माखनलाल चतुर्वेदी ने अपेक्षाकृत छोटी उम्र मे लिखना आरम्भ कर दिया था, यद्यपि उनकी रचनाओ का प्रकाशन विलम्ब से हुआ। जब 1913 ई० मे खण्डवा से 'प्रभा', कानपुर से 'प्रताप' और बाद मे 'कर्मवीर' पत्र (जबलपुर से 1919 ई० से, खण्डवा से 1925 ई० से) आरम्भ हुये, तब माखनलाल जी की रचनाये प्राय. 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से प्रकाशित होने लगी। उनकी प्रथम प्रकाशित पुस्तक 'कृष्णार्जुन युद्ध' है। यह एक नाटक है। इसके बाद 'हिमकिरीटिनी' (1942 ई0), 'साहित्य देवता' (1943 ई0), 'हिमतरगिणी' (1949 ई0) 'माता' (1952 ई0), 'युग चरण', 'समर्पण', 'वेणु लो गूँजे धरा', 'बीजुरी काजल ऑज रही' आदि ग्रन्थ प्रकाशित हुए। 'साहित्य देवता' इनकी विशिष्ट कृति है। इसे गद्य काव्य कहा गया है।

कवि के क्रमिक विकास को दृष्टि मे रखकर हम माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओ को दो श्रेणी मे रख सकते हैं– आरंभिक काव्य, परवर्ती काव्य। उनकी रचनाओ की प्रवृत्तियॉ प्राय स्पष्ट और निश्चित है। राष्ट्रीयता उनके काव्य का कलेवर है तो भक्ति और रहस्यात्मक प्रेम उनके काव्य की आत्मा।

माखनलाल चतुर्वेदी का व्यक्तित्व कई रेखाओ से मिलकर बना है। आरम्भ मे वे रचना और राजनीति को साथ लेकर चले, पर बाद मे उन्होने साहित्य से ही अपना रिश्ता रखा। पहले वे क्रान्तिकारी दल के सदस्य थे, पर धीरे–धीरे गॉधी जी के प्रभाव मे आ गये। इसीलिए 'हिमकिरीटिनी' की कविताओ मे बलिदान की भावनाओ को प्रमुखता मिली है। इसमे 'विद्रोही सिपाही', 'नाश का त्यौहार', 'बलिपन्थी', 'तिलक', 'मरण', 'त्यौहार' आदि कविताए सग्रहीत है। माखनलाल जी के परिवार का वैष्णव परिवेश, पिता और स्वय के शिक्षक का सस्कार, क्रान्तिकारियो का उग्रपन्थ, गॉधीवादी दृष्टि और इन सबके ऊपर उनकी रोमानी बनावट– इन सबके सम्मिलित योग से उनकी रचनाओ का निर्माण हुआ है और यदि इन

सबका सयोजन होकर एक सघटित व्यक्तित्व सामने आ सकता तो अधिक विराट पुरुष उभर सकता था। कई बार वे इन अनेक भूमियो पर जाते हुए स्वय को सयोजित नहीं कर पाते, उनमे उलझाव आ जाता है और चित्र स्पष्ट नही हो पाते। वे कई बार एक साथ कई स्तरो पर चलना चाहते हैं और सारे तत्वो का समीकरण होना शेष रह जाता है।[1] पर जहॉ वे ऐसा कर सके हैं वहॉ वे रोमाटिक काव्य को नया तेवर दे सकने मे महत्वपूर्ण भमिका अदा करते है।

स्वच्छन्दतावाद के कई कोण माखनलाल जी की रचनाओ मे उभरते हैं– आत्मानुभूति, आध्यात्मिक चेतना, राष्ट्रप्रेम प्रकृति–सौन्दर्य आदि। उनकी कविताये राष्ट्र के प्रति एक आतुरता भरी भावुकता से ओत प्रोत हैं। उसकी बनावट मे एक भारतीय आत्मा की रोमानी प्रवृत्ति अपनी भूमिका अदा करती है। कई बार वह प्रतीको के माध्यम से व्यक्त होती है। उनकी बहु उद्धृत कविता है– 'फूल की चाह'। इसमे छ पक्तियो मे बलिदान और भावना सजोयी गयी है। फूल न सुरबाला के गहनो मे गुँथना चाहता है, न प्रेमीमाला मे बिधने की कामना उसमे है। सम्राट के शव अथवा देवो के सिर पर चढने की इच्छा भी उसमे नहीं है–

'चाह नही मैं सुरबाला के गहनो मे गूथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला मे बिध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नही सम्राटो के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नही देवो के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इतराऊँ,
मुझे तोड लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेक,
मातृभूमि पर शीश चढाने जिस पथ जावे वीर अनेक।'

स्वाधीनता सग्राम की ऐतिहासिक गति ने जिसकी रचनात्मक प्रतिभा को और भी तीखा किया हो, साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी तथा पूँजीवादी शक्तियो के बेदर्द शोषण ने जिस ज्वाला को और धधकाया हो, वंदेमातरम् जैसे सांस्कृतिक सवेदन और सामर्थ्य–गुण–गर्जन ने जिस चेतना मे जागरण नाद भरा हो, उस 'पुष्प–पत्र' की चाह भला मातृभूमि के चरणो मे समर्पित होने के अतिरिक्त और हो भी क्या सकती थी।

'समय के पॉव' मे तिलक, गॉधी, सुभाष, गणेश शकर के माध्यम से राष्ट्रीय भावनाऍ प्रकाशित हुई हैं, जिनमे पता चलता है कि माखनलाल जी की आक्रोशी मुद्रा गॉधी जी के प्रभाव मे अधिक सयत हुई है। परन्तु इससे उसकी मूल बनावट मे अधिक अन्तर नही आया। तिलक के विषय मे उनका कथन है– 'लोकमान्य तिलक प्रत्येक क्षण भारतीय स्वतन्त्रता को एक दूसरे की पूरक समझते रहे। यह उनके स्वराज्य आन्दोलन और उनके सांस्कृतिक ग्रन्थो की रचना से स्पष्ट दिखाई देता है।'[2] बाल गगाधर तिलक के जादू भरे इरादो का अद्भुत जादू इस महाकवि पर भी चढकर बोलने लगा–

'सूरज सावधान हो जाओ मातृभूमि तुम धरती धीर,
पश्चिम तू भी शीघ्र समझ ले, नीति बदल बन जा गंभीर।
कर्म क्षेत्र मे आते हैं अब करने को जननी का त्राण,
कई करोड दु खो के व्याकुल, भारत के भावी विद्वान।'

गॉधी के लिये उन्होंने विश्व का अनहोना काव्य, महान मानव काव्य अथवा काव्य–मानव आदि सम्बोधनो का प्रयोग किया है जिससे उनकी राष्ट्रीय भावना प्रकट होती है। अफ्रीका मे गॉधी जी का रोमाचकारी सघर्ष माखनलाल जी के उत्साह को प्रेरित कर रहा था, तो विराट जन्म भूमि की विकृतियॉ रुपायित होकर उन्हे सघर्ष की चुनौती का निमत्रण दे रही थी। गॉधी जी के सत्याग्रह की ध्वनि समग्र विश्व मे गूॅज रही थी, तो माखनलाल जी भारतीयता की शान–अभिमान की कसौटी निर्धारित कर रहे थे–

'मेरे जीते पूरा स्वराज्य भारत पाये अरमान यही,
बस शान यही, अभिमान यही, हम कोटि–कोटि की जान यही।'

क्रान्तिचक्र का आह्वान

तत्कालीन भारत की दारुण परतन्त्रता, अग्रेजो की अन्यायपूर्ण दुरभिमानी सत्ताधारिता तथा घोर भयावह एव निकृष्टतम सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियो का जाल, प्रथम विश्वयुद्ध का निराशा–हताशा भर परिवेश, युद्ध की विभीषिकाओं के सम्मुख बिलबिलाता अपाहिज विश्व जीवन तथा व्यक्तिगत स्वार्थों अतृप्त अहम का शिकार बना पूरा वायुमण्डल – सभी कुछ कवि के हृदय को खण्डित भी करते हैं

उस विचलित होते भाव–हृदय को विद्रोही बनाने की भूमिका भी निभाते हैं। दैन्य और दैन्य उत्पन्न करने वाली शक्तियॉ सघर्ष भूमि का निर्माण करती हैं तो स्वाभिमान का शख श्रेणीवाद को मिटा देने के लिए क्राति चक्र का आह्वान करता है–

'पधारो, एक बार फिर सुने धनुष की वह अद्भुत टकार,
पधारो, मेघनाद दब जाय, हो पडे जहॉ कठिन हुकार।

× × × × ×

मातृ–भू कौशल्या की गोद आज हरी–हरी हो उठे
कष्ट मे लेता हूँ अवतार तुम्हारी बात खरी हो उठे,
नगारो से नगरो मे नाथ मुबारकवादी–सी सुन पडे,
कटीली जंजीरे कट जायँ जरा आजादी सी सुन पडे।'

माखनलाल जी ने नवीन युग और नयी पीढी को आह्वान और सस्कार दिया, उनकी परम आस्तिक, जागरूक, स्वाध्यायी, समर्पणशील, निर्भीक तथा स्वातन्त्र्य प्रिय सौन्दर्य दृष्टि ने हिन्दू–मुस्लिम एकता की महत्ता का अनुभव किया, पहचाना और भावाकुल अनुरोध किया कि इस भेद भाव की सकीर्णता मे मानव जीवन कलकित होता है–

'मन्दिर मे हो चॉद चमकता, मस्जिद मे मुरली की तान,
मक्का हो चाहे वृन्दावन, होवे आपस मे कुरबान।

× × × × ×

हिन्दी माता की दोनो ऑख, नाक को रखकर बीचो–बीच,
अश्रु की उज्ज्वल धारा छोड, प्रेम का पौधा देवे सीच।'

इस गुलाम और अनपढ देश मे मनुष्य को अशिक्षा के अभाव मे तिल–तिल कर पिसते या शोषित होते हुये भी कवि ने देखा। उस शोषण की पीडा और कथा को सुना, गुना, गुनगुनाया तथा जन–जन को सुनाया भी–

'अन्न नहीं है, फीस नही है पुस्तक है न सहायक हाय,
जी मे आता है पढ लिख ले, पर इसका है नही उपाय।
कोई हमे पढाओ भाई, हुये हमारे व्याकुल प्राण।
हा! हा!! रोते फिरते हैं भारत के भावी विद्वान।'

भारत की आत्मा से साधारणीकृत हो जाने वाली इस 'भारतीय आत्मा' ने उद्बोधन क्षमता, व्यापक दृष्टि, शोषितो और असहायो के प्रति हार्दिक सहानुभूति, सघर्षोन्मुखता, प्रखरता तथा स्पष्टता के कारण अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई और यह विशिष्ट पहचान ही उनके सामाजिक एव राष्ट्रीय सरोकारो को रेखाकित करती है। डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है– 'माखनलाल जी के काव्य ने साधारण युवको को ही नहीं तरुण क्रातिकारियो को भी प्रभावित किया। साम्राज्यवादी दमन से निडर होकर सघर्ष करने वाली नौजवानो की एक पूरी पीढी माखनलाल जी की कविताएँ गुनगुनाती हुई अपने अनुशासन और आत्मबल को दृढ कर चुकी है। ऐसी सफलता विरले ही कवियो को मिलती है।'[3]

राष्ट्रीय चेतना : रोमानी तेवर

माखनलाल जी की राष्ट्रीय–चेतना मे सास्कृतिक, रोमानी और यहॉ तक कि आध्यात्मिक पक्ष ऐसे घुल–मिल गये हैं कि उनकी कविताओ मे उसे खोज पाने का कार्य सरल नहीं होता और कई बार कविता की शुरुआत रोमानी होती है, पर उसमे राष्ट्रीय चेतना बसी रहती है। इसी तरह राष्ट्रीय सदर्भों की बात करते–करते कविताएँ आध्यात्मिक सकेत देने लगती है। उनकी कविताएँ केवल देश–प्रेम के भावोच्छ्वासो से संतुष्ट नहीं होतीं, वहॉ राष्ट्रीय चेतना का एक सपूर्ण बिम्ब मौजूद है। कवि राष्ट्र को उसकी समग्रता मे देखता है और उसके चित्र बनाता है। वह अपने व्यक्तित्व के साथ वहॉ उपस्थित है, केवल वक्तव्यों के साथ नहीं। प्राय. उनकी कविता 'कैदी और कोकिल' को उद्धृत किया जाता है। इसमे एक कैदी कोकिला को सम्बोधित करके अपनी राष्ट्रीय भावना का प्रकाशन करता है। क्या यह स्वय मे एक रोमानी कल्पना नही है कि एक पक्षी, जिसे वसन्त का प्रतीक माना जाता है और जिसे आम्र वन मे विहार करते दिखाया गया है, उसे राष्ट्रीय ज्वार में सम्मिलित किया जाय। पहले कवि कारागार की तसवीर बनाता है– ऊँची काली दीवारो का घेरा, डाकू–चोरो का साथ, पेट भर खाने का सिलसिला नही,

जीवन पर दिन–रात कडा पहरा। ऐसे परिवेश मे रात के गहरे अँधियारे मे कैदी कोकिला को सम्बोधित करता है कि सुबह–सुबह दुनिया को जगाने वाली कोयल क्या रात के आधे पहर मे विश्व को जगाने आयी है ? सम्पूर्ण कविता से गुजरने पर रोमानी प्रवृत्तियो के भीतर से झॉकती हुई राष्ट्रीय भावना दिखाई देती है। प्रकृति के दृश्य, जीवन–यथार्थ साथ–साथ मौजूद हैं। आरम्भ मे रोमानी तेवर है–

'दूबो के ऑसू धोती रवि किरणो पर,
मोती बिखराती विन्ध्या के झरनो पर।

× × × × ×

तेरे भी मीठे गीतो का पूरा लेखा,
मैने प्रकाश मे लिखा सजीला देखा।'

पर कविता राष्ट्रीय चेतना से जुडती है–

'क्या देख न सकती जजीरो का गहना ?
हथकडियॉ क्यो ? यह ब्रिटिश राज का गहना
कोल्हू का चरक चूँ ? जीवन का तान
मिट्टी पर अँगुलियो ने लिक्खे गान।
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड का कूआ।
दिन मे करुणा क्यो जगे, रुलाने वाली
इसलिये रात मे गजब ढा रही आली।'

इस शान्त समय मे–

'अन्धकार को बेध–सी रही क्यो हो ?
कोकिल बोलो तो !
चुपचाप मधुर विद्रोह बीज

इस भॉति बो रही क्यो हो ?

कोकिल बोलो तो।'

काव्य और जीवन में समन्वय

युगदृष्टि से सम्पन्न माखनलाल जी निरन्तर काव्य और जीवन मे युगीन समन्वय की खोज करते हैं। उनकी मान्यता थी कि दृष्टि का काम बाहर को देखना भी है और भीतर को भी। जब वह बाहर को देखती है, तब रचनाओ पर समय के पैरो के निशान पडे बिना नही रहते। जब वह भीतर को देखती है, तब मनोभावनाओ के ऐसे चित्र कलम पर आ जाते हैं, जिन्हे समय द्वारा शीघ्र नही पोछा जा सकता। यही कारण है कि ऑखो से दिखाई पडने वाले सब कुछ की ओर से ऑखे मूँद लेने पर उसका पता नही लगता, किन्तु भीतर से यानी अन्तश्चक्षु से दिखाई पडने वाली दुनिया, ऑखें मूँद लेने के बाद भी दिखाई पडती है, इसलिये वह समय या काल के हाथो मिटाये नहीं मिटती।

इसी मान्यता के आधार पर माखनलाल जी ने अपने अन्तश्चक्षु से दुनिया को देखकर उसके जिस युग सत्य को अपनी कविताओ मे अक्षरबद्ध किया है, वह समय की शिला पर अंकित होकर अमिट चित्र बन गया है और इसीलिये उनकी कविताये कालजयी तो हैं ही, प्रासगिक भी हैं, अर्थात् वे समय का नियन्त्रण करने वाली होकर समय से परे की वस्तु हैं। कालातीत होते हुये भी कालानुसरण की क्षमता से सम्पन्न हैं। चिर पुरातन होते हुये भी चिर नवीन है।

माखनलाल जी ने स्वच्छन्दतावाद के लगभग समानान्तर यात्रा की, इसलिए उनकी चेतना मे रोमानी तत्व सहज भाव से आ गये। थोडा वे राष्ट्रीय चेतना की ओर मुडे, थोडा आध्यात्मिकता की ओर, पर उनमे रोमानी प्रवृत्तियॉ बनी रही। सयोग से वे इतिहास के उस मोड पर अपनी रचना ले कर उपस्थित हुये जब स्वच्छन्दतावादी काव्य अपने सर्वोत्तम से गुजर रहा था, इसलिए उसकी ताजगी से उनका परिचय हुआ। उन्होने गीतो का माध्यम चुना, पर कोशिश यह थी कि वे एक नया मुहावरा अपनायें। उन्होने प्रतीको की एक नयी दुनिया तलाशने मे मेहनत की और भाषा की सहजता को पकडा। उन्हें शब्द–शिल्पी कहा जाता है, पर यह कलाबाजी या शब्द जाल नही है। उन्हे एहसास है कि अपनी बात अगर ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचानी है तो भाषा के आभिजात्य से मुक्त होना होगा।

माखनलाल जी ने इस विषय मे सन्त कवियो का उदाहरण देते हुये कहा है कि वे लोकवाणी बोलते थे, लोकवाणी लिखते थे, लोकवाणी गाते थे और लोक हृदय मे वाणी को पहुँचाते थे। उन्होने अभिजात भाषा पर कटाक्ष करते हुये लिखा है– 'जब ऋषित्व और सन्तत्व गया, तब हम शहराती जबान लिखने लगे।' इसी तरह 'अमीर इरादे, गरीब इरादे' मे उन्होने लिखा है– 'ऐसा न हो कि हम लिखे और वस्तु मुहाफिजखानों के बस्तो मे बॉधकर रख दी जाय। हम कभी अपने गर्व को भी देख लिया करे। हमारे गॉव–गॅवई के लोग हमे जानते नहीं और दावा है कि राष्ट्र जानता है। यह दूरी नही है। यह जीवन के प्रति हमारे ईमान का अभाव है। इस अभाव की पूर्ति हमारा उत्तरदायित्व है।'[4]

एक कवि जिसे लम्बी यात्रा करनी पडे और समाज की कई क्रमावस्थाओ से गुजरना हो, उसे यदि अपने को दुहराकर खत्म नही हो जाना है, तो उसे रचना का नया मुहावरा तलाशना होगा। माखनलाल जी को यह एहसास है कि स्वच्छन्दतावाद मे नयी सभावनाये जगाये बिना काम नहीं चल सकता। रोमानी प्रवृत्तियों से बगावत करके गैर रोमानी भूमियों पर जाने का सीमान्ती प्रयत्न उन्होने नही किया। पर भाषा के स्तर पर उन्हे सजग देखा जा सकता है और बात कहने की कला उनकी अपनी है। यहॉ वे अपने व्यक्तित्व के साथ उपस्थित है और उन्हे अलग से टटोला जा सकता है। जब वे 'तुम्हारे बोल' जैसी कविताये लिखते हुये प्यार, चुबन, स्नेह की बात करते हैं तब भी वे सहज मुहावरा काम मे लाते हैं–

'तरुणाई के प्रथम चरण मे जोडी टूट गयी।
फूली हुई रात की रानी प्रात रुठ गयी।
गन्ध बनी सॉसो भर आयी
छन्द बनी फूलो पर छायी
बन आनद धूलि पर बिखरी
यौवन के तुतलाते वैभव सन्ध्या लूट गयी।
फूलो भरी रात की रानी सहसा झढ गयी।
मुसुको भरी मनोरम वेली

यादो की डालो पर खेली

गिरी सभी साधें अलबेली

ऊँचे पर उठती अभिनवता पथ मे छूट गयी।

फूली हुई रात की रानी कैसे रुठ गयी।'

भाषा का नया मुहावरा पाकर माखनलाल जी ने स्वच्छन्दतावादी काव्य के कुछ तत्व अकाल कवलित होने से बचा लिया। उनका काव्य स्वच्छन्दतावाद से अपनी यात्रा आरम्भ करके उसके भीतर नयी सभावनाये जगाता है। उन्हे स्वतन्त्र देश के रचनाकार के दायित्व का बराबर एहसास था और वे जानते थे कि रचना के सामने कई सकट हैं।

माखनलाल जी की रचनाये स्वच्छन्दतावाद को नयी ध्वनियॉ देने मे प्रयत्नशील रही। उन्होने अपने समकालीन कवियो से अलग अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व निर्मित किया। यही वैशिष्ट्य उनकी राष्ट्रीय चेतना को नयी दीप्ति देता है, उनके काव्य मे स्वच्छन्दतावाद की रोमानी वृत्ति, नयी आध्यात्मिकता, सास्कृतिक चेतना मौजूद है।

हरिवंश राय 'बच्चन'

अतृप्ति का बोध और मनोमय परितुष्टि

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की नयी भगिमा और नये रूपायन की अभिव्यक्ति जिन कवियो के काव्य मे हुई है, उनमे हरिवश राय 'बच्चन' का स्थान शीर्ष पर है। बच्चन का काव्य जहॉ प्रगीतो की एक समृद्ध परम्परा का सूत्रपात करता है, वहॉ दूसरी ओर वह कवि की काव्यानुभूतियों के तारतम्य मूलक विकास का निरुपण भी करता है।

बच्चन का काव्यारम्भ आध्यात्मिकता की प्रतिक्रिया के रूप मे लौकिकता के गायक के रूप मे होता है। यद्यपि वे स्वय अपने स्वर की विलक्षणता से चौक गये थे, पर उन्होने अपने आप को एकाकी नहीं समझा। वे समझते थे कि वे जैसा अनुभव कर रहे हैं, वैसी ही अनुभूति उनके युग के युवा मन को आक्रान्त किये हुये है। उनके काव्य मे तत्कालीन युवा मन की सामान्य आशा–आकाक्षा, हर्ष–विषाद,

प्रेम–पिपासा और निराशा–हताशा का स्वर मुखरित हुआ है। उन्होने अपने युग मे हतप्राय और जागतिक सघर्ष के चक्र मे पिसती हुई युवा भावनाओ के स्वरो को सहेजा, युवा मन की इन्द्रजालिक मायानगरी को पहचाना और उसके अवचेतन मे दबी हुई अतृप्त कामनाओ का स्पर्श करते हुये उन्हे मानसिक परितोष प्रदान करने का उपक्रम किया।

बच्चन का काव्य अतृप्ति के बोध और उसकी मनोमयी परितुष्टि का काव्य है। असल मे, बच्चन जिस युग और समाज में पैदा होते हैं, वह जर्जर प्राय नैतिकता और अधविश्वासो से ग्रस्त सामाजिकता का युग है। वह एक ऐसा युग है जहॉ अतृप्ति की बात करना गुनाह समझा जाता है और अचेतन की उपत्यकाओ मे विचरण करने के कार्य को नैतिक स्खलन की सज्ञा दी जाती है। बच्चन के आरम्भिक काव्य ने रुढिग्रस्त समाज के एक कोने को झकझोर दिया था और वह कोना बच्चन के उद्‌गारो को अनैतिक और अश्लील कहने से भी नही चूका था। पर व्यापक युवा मन बच्चन के काव्य का विभोर होकर स्वागत करता है। वह बच्चन के काव्य मे वर्णित मन. तुष्ट को पसन्द करता है। यही कारण है कि बच्चन का कृतित्व दो प्रकार की प्रतिक्रियाओ को उत्पन्न करता है। पहले स्थान पर जहॉ समाज के तथाकथित कर्णधारो की और वृद्ध साहित्य–समीक्षको की प्रतिरोधमयी वाणी सुनायी पडती है, वहॉ दूसरी ओर युवा मन मे अतृप्ति का बोध और उसकी काल्पनिक परितुष्टि का प्रयास भी प्रतिफलित होता है। कवि को अपने काव्य की आलोचना से कुछ पीडा अवश्य हुई है। वह स्पष्टीकरण देने का प्रयास करता है और बताता है कि उसने एक सामूहिक भावना की ही व्यजना की है। कवि को यह सोचकर बडी सात्वना मिलती है कि वही एक ऐसा व्यक्ति है जिसने युवा मन को आक्रान्त करने वाली मूक किन्तु घुमडती हुई भावनाओ को अभिव्यक्त किया है, जिसे प्रकट करने के लिए अन्य किसी के पास साहस और शब्द नहीं है–

'इस कुपथ पर या सुपथ पर
मैं अकेला ही नहीं हूँ,
जानता हूँ–क्यो जगत फिर
उगलियॉ मुझ पर उठाता,

मौन रहकर इस लहर के

साथ सगी बह रहे है,

एक मेरी ही उमगे

हो उठी है व्यक्त स्वर मे।'[5]

बच्चन जानते हैं कि उनका दोष केवल इतना है कि उन्होने सामान्य अतृप्ति को शब्दो के माध्यम से व्यक्त कर दिया है। वस्तुत· यह दोष ही नही, अपितु साहसिकता की निशानी है। प्रत्येक युग का काव्य युगीन अतृप्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करता है और उसमे उसके समाधान के प्रयास भी निहित होते हैं। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य मे यह अतृप्ति अपूर्णता के दार्शनिक प्रत्यय के अभिधेय मे सजकर आती है और उसका वैसा ही दार्शनिक समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ, प्रसाद जी ने 'कामायनी' मे इसी अतृप्ति के बोध को अपूर्णता के रूप मे प्रस्तुत किया है तथा इसका दार्शनिक समाधान भी प्रस्तुत किया है। किन्तु बच्चन ने अतृप्ति के बोध को दार्शनिको की–सी भाषा मे व्यक्त नहीं किया है। इसके अतिरिक्त वे सन्तो के समान उसके निराकरण का आध्यात्मिक निदान भी प्रस्तुत नही करते। वे सहज–सीधी भाषा मे अतृप्ति और उसके परितोष की मायानगरी का निर्माण करते हैं।

बच्चन के काव्य की लोकप्रियता का रहस्य यह है कि उन्होने अपने ही मन की अनुभूतियो को व्यापक जनमानस की अनुभूतियो के रूप मे रूपान्तरित करने का प्रयास किया। इसको भावना का उदात्तीकरण भी कहा जा सकता है। उदात्तीकरण की प्रक्रिया सरल नही होती, अपितु कवि को उसके कुशल सम्पादन के लिए अनेकानेक अग्नि–परीक्षाओ से गुजरना पडता है। सबसे पहले उसे व्यक्ति–मन की सकीर्णता का परिहार करते हुये इतनी व्यापकता देनी होती है जिसके अन्तराल मे युगमानस की भावनाये खुलकर खेलने का विशाल प्रागण प्राप्त कर सके। दूसरे स्थान पर उसे अनुभूति के रूपायन की समस्या का सामना करना पडता है। व्यक्ति–मन अनेकानेक जटिलताओं और विलक्षणताओ से भरा होता है और वैयक्तिकता की अनुभूति अनेकानेक आसंगो से लिपटी होती है। किन्तु इसके विपरीत जनमानस मे एक सामान्यता होती है, उसकी जटिलताओ मे भी सामान्यीकरण का सूत्र लिपटा होता है। इस स्तर पर

कवि को अपनी वैयक्तिक विलक्षणताओ का परिहार करते हुये अपनी अनुभूति को नाना विध आसगो से मुक्त करना पडता है और उसे सामान्य बनाना पडता है। तीसरे स्तर पर कवि का दायित्व अपेक्षाकृत अधिक बढ जाता है। यह अभिव्यक्ति का स्तर है। व्यक्ति मन की अनुभूतियॉ प्रकृत रूप मे अनिवार्यत. जटिल होती हैं और उसकी यथावत अभिव्यक्ति का आग्रह जटिल कवियो के एक दल के निर्माण मे प्रतिफलित हो सकता है, जो अभिव्यक्ति मे अनुभूति की जटिलता को अक्षत बनाये रखना चाहते हैं। परन्तु बच्चन जटिल नही, ऋजु अभिव्यक्ति के आकाक्षी थे। वे व्यक्ति की अनुभूति को सामूहिकता की पीठिका पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इसलिए उन्होने अपनी अभिव्यक्ति को ऋजु और सरल बनाया जिससे वह लोकमानस का स्पर्श कर सके। बच्चन अपने इस कार्य मे सफल हुये और इसका सुफल भी उन्हे इस रूप मे मिला कि उन्हें अपनी किसी कविता की वकालत नही करनी पडी और न उन्हे किसी जटिल संवेदना का स्पष्टीकरण ही देना पडा।

बच्चन का युग संदेह का युग था। उनका पारिवारिक परिवेश गतानुगतिक और अन्धविश्वासी था। उनके परिजन सामाजिक और राजनीतिक क्रिया कलापो को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। राजनीतिक दृष्टि से यह एक नयी सक्रियता का काल था और सामाजिक दृष्टि से यह सुधारवादी युग था। बच्चन के व्यक्तित्व के निर्माण मे इन तीनो सूत्रो का पर्याप्त प्रभाव पडा है। राजनीति के क्षेत्र मे स्वाधीनता की जो चेतना उठ रही थी, उससे आहत युवा–पीढी को एक नया दर्प, आत्म विश्वास और साहसिकता की भावना मिली थी। सामाजिक क्रान्ति के उत्तोलन से उन्हे सडी–गली नैतिकता को ठुकराने की प्रेरणा मिली और परिवार के अधविश्वासी दृष्टिकोण ने उन्हे जीवन और जगत के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोचने के लिए बाध्य किया था।

बच्चन मे राजनीतिक परिस्थितियो और हलचलो का प्रभाव एक नयी साहसिकता के रूँप मे दिखाई देता है। वे अत्मविश्वास से संपृक्त वाणी मे अपनी अनुभूतियो को व्यक्त करते हैं। उन्हें अपनी अनुभूतियों को निर्वसन रूप मे व्यक्त करने में कोई संकोच नही होता और वे घोषणा कर देते है–

'मैं निज उर के उद्‌गार लिए फिरता हूँ,
मैं निज उर के उपहार लिये फिरता हूँ,

है यह अपूर्ण ससार न मुझको भाता,

मैं स्वप्नो का ससार लिए फिरता हूँ।'[6]

निज मन के भावो की अभिव्यक्ति बच्चन ने अकुण्ठ भाव से की है। उन्हे समाज की परवाह नहीं है। सामाजिक सुधार की चेतना ने कवि की ऑखो मे तत्कालीन समाज की क्षय ग्रस्तता का घिनौना दृश्य उपस्थित किया है और क्षयग्रस्त समाज का मरणोन्मुख प्रतिरोध कवि को उसके पथ से नही डिगा पाते। बाधाएँ आती हैं, पर कवि उनकी चिन्ता नही करता। ससार उसकी भावाभिव्यक्ति के मार्ग मे असख्यो व्यवधान उपस्थित करता है, किन्तु युवा कवि की आत्मविश्वास से दीप्त वाणी कभी भी अकुण्ठ नहीं होती। बच्चन ने लिखा है– 'उस समय मैने अपने आप को इसी राजनीतिक और सास्कृतिक सघर्ष के बीच खडा पाया। तेईस वर्ष का युवक, जीवन की उद्याम पिपासा लिए, अपने उल्लास–प्रेरणा से परिचालित होने का अभिलाषी, अपने स्वप्नो–आदर्शों के अनुसार सोचने–जीने का इच्छुक, पल–पल पर विरोध, पग–पग पर बाधाये। मैंने अस्फुट स्वर मे कई बार ससार को पागल कहा, ससार ने मुझे पागल कहा।'[7]

'पागल सब ससार कह उठा

स्वर्ग कह उठा ज्ञानी

भग्य–पटल पर विधि ने लिख दी

कवि की जटिल कहानी।'[8]

बच्चन का काव्यारम्भ वैयक्तिकता की जटिल एव करुण कहानी के आख्यान द्वारा होता है। यह कहानी एक जन सुलभ भाषा में कही गयी है। यह एक नयी काव्य भाषा है, जिसके निर्माण का श्रेय बच्चन को दिया जाना चाहिए। उन्होने काव्य भाषा को एक नया उत्कर्ष प्रदान किया।

अन्तर्मुखता का भावोन्मेष

बच्चन मूलतः अन्तर्मुखी कवि है। उनके आरम्भिक काव्य को अन्तर्मुखता का विकास काल कहा जा सकता है। इस काल के अन्तर्गत बच्चन का सम्पूर्ण मधु काव्य समाहित हो जाता है। 'प्रारम्भिक

रचनाएँ' (भाग–1, भाग–2), 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधु कलश' नामक काव्य सग्रह बच्चन के मधु काव्य का निर्माण करते हैं। 'हलाहल' की विवेचना भी इसी सोपान के अन्तर्गत की जा सकती है।

इन काव्य–सग्रहो मे कवि को क्रमश अधिकाधिक आत्मलीन होते देखा जा सकता है। कवि जितना अधिक अन्तर्मुख होता है, उसकी अनुभूति उतनी ही साफ और तीखे रूप मे प्रकट होती है। 'प्रारम्भिक रचनाएँ' से लेकर 'मधुकलश' तक कवि की अन्तर्जगत की यात्रा चलती है और आन्तरिक जीवन के परिशीलन से उसे जो मणिमयी उपलब्धि हुई है, उसका गान इन काव्य–सग्रहो मे सचित है। 'मधुकलश' के उत्तरार्द्ध की कुछ कविताएँ कवि के विकास के एक दूसरे सोपान का सकेत करती है। यह अन्तर्मुखी वृत्ति की परिपक्वता का सोपान है और इसी स्तर पर कवि भावोन्मेष के शिखरो का स्पर्श करता है।

बच्चन की काव्य रचना के दूसरे सोपान को भावोन्मेष का युग कहा जा सकता है। इस सोपान के अन्तर्गत कवि आन्तरिक जीवन के अनुशीलन के फलस्वरूप बडी निर्मल उद्भावनाये करता है। इसी समय कवि के जीवन मे कतिपय दारुण घटनाये घटती हैं और वह अत्यन्त सतप्त और दुखी हो जाता है। प्रियतमा पत्नी का विछोह कवि की भावधारा को भावुकता के अनेक अनदेखे सोपानो का सतरण कराता है। यहॉ कवि अपनी आतरिक पीडा की अभिव्यक्ति परिष्कृत गीति रचना के द्वारा करता है। 'मधुकलश' के उत्तरार्द्ध के कुछ गीत, 'निशा–निमंत्रण', 'एकात–सगीत' और 'आकुल–अन्तर' मे सग्रहीत कविताएँ कवि की इसी मन स्थिति की व्यजना करती है।

किन्तु बच्चन की यह गहन–गभीर आन्तरिकता अक्षत नही रह पाती। देश में पुन हृदय विदारक घटनाये घटती हैं और कवि अपनी अन्तर्मुखता की केचुल को उतार कर बहिर्मुखी हो जाता है। बहिर्जगत के परिशीलन मे बच्चन को वैसी सफलता नही मिलती जैसी उन्हे आन्तरिक जीवन के अनुशीलन मे उपलब्ध हुई थी। 'सतरगिनी', 'बगाल का काल', 'खादी के फूल' और 'सूत की माला' में संकलित कविताएँ कवि के इसी दिशा परिवर्तन को व्यजित करती है। किन्तु बच्चन अन्तर्मुखी वृत्ति से सम्पन्न थे, इसीलिए इस काल की कविताओ मे उनकी हृदयानुभूति का सहज स्वाभाविक प्रवेग दिखाई नही देता। ये

विशुद्ध अभिधात्मक कवितायें हैं जिनमे यद्यपि स्थूल भौतिक घटनाओ का प्रभावी चित्राकन मिल जायेगा, पर कवि के अपने विशिष्ट स्पर्श से ये कविताएँ पूर्णतया वचित है।

बच्चन शीघ्र ही बाह्य जगत के परिशीलन से ऊब जाते हैं और पुन अन्तर्जगत की यात्रा पर निकल पडते हैं। अब कवि की वैयक्तिक परिस्थितियाँ बदल रही हैं। कवि की वियोगानुभूति ने उसके स्वरो को सहज प्रभावशीलता प्रदान की थी। परन्तु अब वियोग का वह दारुण निदाघ प्रणय की शीतल वारि से प्रशमित हो जाता है। अब तक तो बच्चन के कन्ठ से विरह की पुकार ही नि:सृत हुई थी, पर अब उनका प्रणय राग का पुन सधान करता है। यह प्रणय–प्रगीतो का युग है। इसी समय कवि का दूसरा विवाह होता है और कवि फिर से अपनी नीड का निर्माण करता है। 'मिलन–यामिनी,' 'प्रणय–पत्रिका', 'धार के इधर–उधर' और 'आरती और अगारे' की भावधारा इसी प्रकार की है।

यह सोपान बच्चन की अनुभूत्यात्मकता की दृष्टि से उतार का काल है। प्रणय–प्रगीतो की रचना के बाद कवि पुन: अपनी काव्य–दिशा में परिवर्तन करता है और काव्य के सम्बन्ध मे अभिनव दृष्टिकोण ग्रहण करता है। यह प्रयोगशीलता का युग था। 'बुद्ध और नाचघर', 'त्रिभगिमा', 'चार खभे चौसठ खूँटे' तथा 'दो चट्टाने' की रचनाओ मे कवि अभिनव काव्य शिल्प के प्रयोग मे व्यस्त है। यह काल इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि इसी समय कवि की रुचि लोक धुनो की ओर मुडती है और वह लोकगीतो के आधार पर गीतो की सृष्टि करता है।

'प्रारम्भिक रचनाएँ' बच्चन के काव्य का प्रवेश द्वार हैं। इन कविताओ मे हम कवि की उनमेषशीला भावनाओ से परिचित होते हैं। यहाँ कवि वैयक्तिक और निजी भावनाओ के आख्याता के रूप मे सामने आता है। यद्यपि स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत आत्म–कथन की शैली का विकास नही हो पाया था, किन्तु स्वच्छन्दतावादी कवियो ने अनेकानेक प्रतीकों के माध्यम से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति का प्रयास किया था। फलत: उनके आत्मकथ्य बौद्धिकता और दार्शनिकता के भार से बोझिल प्रतीत होते हैं। बच्चन ने आत्मकथ्य की परम्परा को प्रतीकात्मकता से विरहित करते हुए सलाप–शैली मे प्रकट किया और हिन्दी कविता में ऋजु और सहज अभिव्यक्ति की नींव डाली। 'प्रारभिक रचनाएँ' सग्रह की कवितायें प्रमुखत: आत्मकथ्यात्मक ही हैं। यद्यपि इन कविताओ में छायावादी शिल्प का यत्किचन प्रभाव देखा जा

सकता है, किन्तु वैयक्तिक भावनाओ की अभिव्यक्ति की तीव्रता कवि को छायावादी रुढियो के पालन मे असमर्थ बना देती है। छायावादी सस्कारो के बीच जीते हुए भी भावनाओ को यथावत रूप मे प्रकट करने की तीव्र मॉग कवि के उद्‌गारो मे आदिम सहजता की विवृत्ति करती है और वे धीरे–धीरे अपने विशिष्ट स्वर को उच्चरित करने लगते हैं।

'प्रारम्भिक रचनाएँ' कवि की कल्पना–शक्ति के जागरण का काल है। यह किशोर मन की भावनाओ से गुम्फित है। कवि प्रकृति के व्यापारो का परिशीलन करते हुये अपनी भावनाओ को जगाने की चेष्टा करता है। बच्चन के प्रकृति चित्रो मे सहजता मिलती है। चित्रण की सहजता के होते हुये भी कवि का स्वर बहुत–कुछ इतिवृत्तात्मक हो जाता है। 'कोयल', 'उपवन' और 'गीत–विहग' नामक कविताओ मे स्थूल इतिवृत्तात्मकता का विन्यास हुआ है। 'कोयल' शीर्षक कविता की निम्नाकित पक्तियॉ दृष्टव्य है–

'बसती, पीले, नीले लाल,
बैगनी आदि रग के फूल
फूलकर गुच्छ–गुच्छ में झूल
झूमेगे तरुवर शाखा मे वायु–हिडोले डाल।'[9]

इसी प्रकार 'उपवन' शीर्षक कविता की निम्न पक्तिया दृष्टव्य है–

'माली उपवन का द्वार खोल
विहगो से द्वेष बढाऊँगा ?
भ्रमरो को मार भगाऊँगा ?
अपनो को श्रेष्ठ बताऊँगा ?'[10]

'प्रारंभिक रचनाएँ' मे संकलित कविताओ मे प्रकृति का इतिवृत्तात्मक चित्रण और आत्मकथ्यात्मक उद्‌गार साथ–साथ चलते हैं। यद्यपि 'प्रारभिक रचनाएँ' की इतिवृत्तात्मकता और अभिव्यक्ति–शैली मे अचानक कुछ समय के बाद परिवर्तन हो जाता है, पर स्पष्ट कथन की शैली बरकरार रहती है। इस आकस्मिक परिवर्तन से बच्चन के काव्य की भगिमा ही बदल जाती है। इतिवृत्तात्मकता और गद्यात्मक

स्थूलता का अकस्मात निराकरण हो जाता है और बच्चन अभिधा की भूमि मे रहस्यात्मकता के उद्भिजो को अकुरित करने का प्रयास करते हैं।

यह परिवर्तन 'खैयाम की मधुशाला' के अनुवाद काल मे बच्चन के कवि मानस मे घटित होता है। इस समय बच्चन को एक सुस्थिर प्रतीक योजना की उपलब्धि होती है। बच्चन इन्ही प्रतीको के द्वारा भावनाओ के मोहक इन्द्रजाल की सृष्टि करते है और इस प्रकार 'हालावादी' या कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के शब्दो मे, 'हिन्दी के मधुकाव्य' का प्रवर्तन होता है।[11]

मधुकाव्य एवं प्रणय प्रगीत

हिन्दी मधुकाव्य का प्रवर्तन बच्चन जी अपनी 'मधुशाला' से करते हैं तथा 'मधु कलश' मे इसका अवसान प्रतीत होता है। इसके बाद वे बहिर्मुखी होते है और बाह्य जगत का परिशीलन करने की चेष्टा करते हैं। किन्तु बाह्य जगत के अनुशीलन से कवि को शान्ति नही मिलती और वह पुन 'हलाहल' की कविताओ मे 'मधु काव्य' की सरणी को आगे बढाने का प्रयास करता है। 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधु कलश' तथा 'हलाहल' कवि की अन्तर्मुखता के विकास सोपान कहे जा सकते हैं।

कवि की अन्तर्मुखता और भाव–चर्या के प्रबोधन का श्रेय खैयाम की रुबाइयो के अनुवाद को दिया जा सकता है। 'नये पुराने झरोखे' मे बच्चन जी ने स्वय इस तथ्य को स्वीकार किया है– 'मेरे काव्य जीवन मे 'रुबाइयत उमर खैयाम' का अनुवाद एक विशेष स्थान रखता है। उमर खैयाम ने रूप, रग, रस की एक नई दुनिया ही मेरे आगे नही उपस्थित की, उसने भावना, विचार और कल्पना के सर्वथा नये आयाम मेरे लिये खोल दिये। उसने जगत, नियति और प्रकृति के सामने लाकर मुझे अकेला खडा कर दिया। मेरी बात मेरी तान मे बदल गयी। अभी तक मै लिख रहा था। अब गाने लगा। खैयाम से जो प्रतीक मुझे मिले थे उनसे अपने को व्यक्त करने मे मुझे बडी सहायता मिली। 'मधुशाला' और 'मधुबाला' लिखते हुए वाणी के जिस उल्लास का अनुभव मैंने किया, वह अभूतपूर्व था। शायद उतने उल्लास का अनुभव मैने बाद मे कभी नही किया।'[12]

बच्चन की अन्तर्मुखता खैयाम के प्रतीको से पुष्ट होती है। उनका समस्त मधुकाव्य एक सुस्पष्ट प्रतीक योजना के द्वारा सवलित है। बच्चन ने खैयाम के प्रतीको को ग्रहण तो किया, पर वे अपनी

अनुभूत्यात्मकता को तदनुरूप विकसित न कर पाये। असल मे खैयाम की रूप–योजना को स्वीकार करने के बाद बच्चन उसकी अनुभूति का भारतीयकरण करने का प्रयास करते हैं। खैयाम की रुबाइयो मे नियति का जो तीव्र दर्शन है, वर्तमान को भोगने की जो उद्याम स्पृहा है, युवा–स्वप्न की तरगायित धारा मे बहते रहने का जो दुर्दमनीय मोह है, और जीवन के नाश से पहले ही उसका पूरा आस्वाद करने की जो प्रगल्भ कामना है, उसका प्रतिबिम्ब बच्चन के मधुकाव्य पर भी पडा है। खैयाम ने जीवन की नश्वरता, यौवन की क्षणभगुरता और मृत्यु की अनिवार्यता के बोध की पीठिका पर निर्बन्ध प्रणयावेश का गायन किया था। पर बच्चन इस बोध को भुलाने के लिए अपने मधु स्वप्न का विन्यास करते है और इस प्रकार काल्पनिक तोष प्राप्त करने का उपक्रम करते हैं। 'मधुशाला' मे इसी काल्पनिक तोष की उपलब्धि का प्रयास निहित है। यहॉ कवि मधु–प्रतीको के रहस्य और अर्थ का उद्घाटन करता है। पर प्रतीको के अर्थ के विषय मे कवि की धारणा निरन्तर बदलती रहती है। सबसे पहले कवि अपने मृदु भावो को हाला कहता है, पर दूसरे ही क्षण वह अपने प्रियतम को ही हाला मान बैठता है। इसी प्रकार कभी तो वह अपने हाथो से अपने प्रियतम को हाला पिलाने की बात करता है तो तुरन्त बाद वह खुद को प्रियतम रूपी हाला का प्याला बना देता है–

'मृदु भावो के अंगूरो की
आज बना लाया हाला,
प्रियतम, अपने ही हाथो से
आज पिलाऊॅगा प्याला,
प्रियतम तू मेरी हाला है
मैं तेरा प्यारा प्याला,
अपने को मुझमे भरकर तू
बनता है पीने वाला।'[13]

खेयाम और बच्चन की प्रतीक–योजना के सम्बन्ध मे यह तथ्य उल्लेखनीय है कि खैयाम के प्रतीक सुस्थिर और निश्चित अर्थ के व्यजक है, पर बच्चन के प्रतीको मे एक धुँधलेपन और अस्पष्टता का अभास होता है।

'मधुबाला' मे अपेक्षाकृत अधिक काव्यात्मकता है। इसका प्रारभ मधुबाला के आत्मकथ्य से होता है। यहॉ यह स्पष्ट हो जाता है कि बच्चन जागतिक सघर्ष से बचने के लिए अन्तर्मुखता के स्वप्निल लोक मे विहार कर रहे हैं। मधुबाला कहती है–

'यह स्वप्न–विनिर्मित मधुशाला
यह स्वप्न–रचित मधु का प्याला
स्वप्निल –तृष्णा स्वप्निल हाला
स्वप्नो की दुनिया मे भूला
फिरता मानव भोला–भाला।'[14]

'मधुबाला' की यह घोषणा कवि की समूची काव्य–सृष्टि को स्वप्न व्यापार बना देती है।

'इस पार और उस पार' नामक कविता भी हृदय ग्राही है। इस कविता मे बच्चन वर्तमान की पीठिका मे भविष्य के प्रति सन्देह प्रकट करते हैं और सदिग्ध भविष्य की तुलना मे आसन्न वर्तमान को अधिक महत्वपूर्ण और सारगर्भ समझते है। असल मे यह काव्य जीवन और मृत्यु के विचार स्पन्दनो से सग्रथित है। कवि यहॉ नियतिवादी दृष्टि अपनाता है और जीवन के विषय मे अपने भावुक विचारो का प्रकाशन करता है–

'इस पार प्रिये मधु है, तुम हो
उस पार न जाने क्या होगा ?
× × × × ×
प्याला है पर पी पायेगे
है ज्ञात नही इतना हमको,
इस पार नियति ने भेजा है

असमर्थ बना कितना हमको–

× × × × ×

अब तो हम अपने जीवन भर

उस क्रूर कठिन को कोस चुके,

उस पार नियति का मानव से

व्यवहार न जाने क्या होगा ?'[15]

यहॉ कवि मृत्यु के बाद की स्थितियो की कल्पना करता है और जीवन का एक विषादमय चित्र प्रस्तुत करता है।

बच्चन के मधुकाव्य का शीर्ष 'मधुकलश' मे घटित होता है। मधुकलश मानव देह का प्रतीक है और उसके अतराल मे जीवन की तरगाकुल सरिता लहरा रही है। इस संग्रह मे 'कवि की वासना', नामक गीत है, जिसमे कवि ने अपने आलोचको को उत्तर दिया है। कवि के उद्गारो मे काफी प्रभाव और ओज है तथा वह पूरी तीव्रता के साथ ससार पर प्रहार करता है–

'प्राण प्राण से सके मिल किस तरह, दीवार है तन,

काल है घडियॉ न गिनता बेडियो का शब्द झन झन,

वेद लोकचार प्रहरी ताकते हर चाल मेरी,

बद्ध इस वातावरण मे क्या करे अभिलाष यौवन।

अल्पतम इच्छा यहॉ, मेरी बनी बदी पडी है

विश्व क्रीडास्थल नही रे, विश्व कारागार मेरा।

कर रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।'[16]

बच्चन के कृतित्व मे भावोन्मेष का युग 'निशा–निमत्रण' 'एकान्त–सगीत' और 'आकुल–अन्तर' तक फैला हुआ है। यह एकाकीपन और विरहान्धकार का युग है। बच्चन ने लिखा है– 'भाग्य के आघात से मैं बच नही सका। प्रेम की दुनिया धोखा दे गयी, पत्नी का देहावसान हो गया, जीवन विश्रृखल हो गया। साल भर के लिए लिखना बिलकुल बन्द रहा। फिर मेरी वेदना, मेरी निराशा और मेरा एकाकीपन 'निशा–निमत्रण' 'एकान्त–सगीत' और 'आकुल–अन्तर' के लघु–लघु गीतो मे मुखरित हुआ है।'

'निशा–निमत्रण' एक वियोग काव्य है। यह कवि के हृदयानुभूति की विशुद्ध अभिव्यक्ति है। इस सग्रह के गीतो मे जहॉ एकाकीपन का बोध, अस्तित्व की निस्सहाय स्थिति, स्मृति–आसग और विरह–क्रन्दन है, वहॉ प्रकृति की दृश्यमयी पीठिका पर मानवीय भावनाओ का आख्यान भी है। कवि की विविध भावनाये एक–एक गीत मे बडी सघनता से प्रकट हुई हैं। प्रत्येक गीत एक–एक मुखर भावना है। गीत के चरणों के साथ ही भावना की सघनता भी बढती जाती है और अन्त मे कवि पाठक को भावना के शिखर पर लाकर छोड देता है। 'निशा–निमत्रण' के प्रथम गीत मे ही कवि की भावना का यह क्रमिक विकास दिख जाता है–

'दिन जल्दी जल्दी ढलता है
हो जाय न पथ मे रात कहीं,
मजिल भी तो है दूर नही–
यह सोच थका दिन का पथी भी जल्दी जल्दी चलता है,
बच्चे प्रत्याशा मे होगे,
नीडो से झॉक रहे होगे–
यह ध्यान परो मे चिडियो के भरता कितनी चचलता है।
मुझसे मिलने को कौन विकल ?
मैं होऊँ किसके हित चचल ?
यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर मे विह्वलता है।
दिन धीरे–धीरे ढलता है।'[17]

एक विशिष्ट गीत मे कवि अपनी सहज–सरल भावधारा के माध्यम से दार्शनिक निष्कर्षों पर पहुॅचता है। यहॉ वह सृष्टि–प्रक्रिया के सम्बन्ध मे प्रयोजनहीनता की बात सोचता है और विधाता को कुम्भकार के रूप मे सम्बोधित करते हुए कहता है–

'अब मत मेरा निर्माण करो।

तुमने न बना मुझको पाया,

युग–युग बीते, मैं घबराया,

भूलो मेरी विह्वलता को, निज लज्जा का तो ध्यान करो।

अब मत मेरा निर्माण करो।

इसी चक्की पर खाते चक्कर,

मेरा तन–मन–जीवन जर्जर,

हे कुम्भकार, मेरी मिट्टी को और न अब हैरान करो।

अब मत मेरा निर्माण करो।

कहने की सीमा होती है,

सहने की सीमा होती है,

कुछ मेरे भी वश मे, मेरा कुछ सोच समझ अपमान करो।

अब मत मेरा निर्माण करो।'

'एकान्त–सगीत' मे जीवन की निस्सारता की प्रतीति अधिक है। कवि कभी तो एकाकीपन के घने धुधलके मे खो जाता है और कभी वह जीवन को व्यर्थ समझता है। उसे अपने जीवन के प्रयोजन का बोध नही हो पाता। वह यह नही समझ सकता कि किस दिशा की ओर बढना चाहिये। यह किकर्तव्यविमूढता की स्थिति है। वह जीवन को एक अभिशाप के रूप में देखता है और उसका मन विषाद से पूरित हो जाता है।

'निशा–निमत्रण' और 'एकान्त सगीत' की भूमिका ही 'आकुल–अन्तर' मे विकसित हुई है। कवि की हृदयानुभूति का सर्वथा सहज आस्फालन 'निशा–निमत्रण' के गीतो में हुआ है। 'एकान्त सगीत' मे कवि की भावना का स्वच्छन्द प्रवाह घनीभूत अवसाद के आवरण से सर्वथा मुक्त नहीं है। किन्तु 'आकुल–अन्तर' मे बच्चन अपने आपको दुहराते हैं। ऐसा लगता है कवि दीर्घकालिक अन्तरानुशीलन से ऊब चुका है और वह प्रत्यावर्तित होकर नयी काव्यानुभूति की प्राप्ति के लिए बहिर्जगत का अनुशीलन करता है।

बहिर्जगत की ओर बच्चन का प्रत्यावर्तन आन्तरिक क्षयग्रस्तता को प्रच्छन्न करने के लिए हुआ है। कवि बाहरी ससार की स्थूल घटनाओ को कविता को शैली मे प्रकट करके अपनी छीजती हुई अनुभूत्यात्मकता पर आवरण डालना चाहता है। कवि का यह प्रयास सबसे पहले 'सतरगिनी' की कविताओ मे दिखाई देता है। सौन्दर्य–बोध के अवसन्न होने के कारण यहाँ इतिवृत्तात्मकता की प्रवृत्ति काफी उभर कर आयी है और कविता मे अभिधा का बोझिल वातावरण छा गया है। 'बगाल का काल', 'सूत की माला' और 'खादी के फूल' की कविताए इसी दिशा की ओर सकेत करती है।

बच्चन के प्रणय–प्रगीत 'मिलन–यामिनी', 'प्रणय–पत्रिका', 'धार के इधर–उधर' और 'आरती और अगारे' की कविताओ मे निहित है। इन प्रगीतो की रचना कवि के परिवर्तित जीवन–क्रम के साथ स्वाभाविक रूप से सम्बद्ध होकर हुई है। इन गीतो मे कवि पुन निजी भावनाओ को अभिव्यक्त करता है। इनका स्वर अभिधात्मक है और इनका स्वरूप कवि की प्रारभिक रचनाओ के समान ही इतिवृत्तात्मक है।

'मिलन–यामिनी' कवि की प्रायानुभूति के विविध पक्षो से आकलित है। कवि अपनी प्रेयसी को अपने मन की वीणा के स्लथ तारो को कसने का अनुरोध करता है ताकि वह फिर से जीवनोल्लास से पूरित गीत गा सके।

'प्रणय–पत्रिका' में कवि की प्रवास कालीन रचनाएँ सग्रहीत है। इस सग्रह की कविताओ मे बच्चन अपने बीते दिनो की स्मृति करते हैं और अपनी प्रेयसी को प्रणय–पत्रिका भेजते है। प्रेम पत्र के समान इसमें कवि अपनी प्रियतमा के साथ गुजारे गये समय की याद करता है और अपनी त्रुटियो पर पश्चाताप करता है–

'रात आधी, खीचकर मेरी हथेली
एक उँगली से लिखा था, प्यार तुमने।

फासला था कुछ हमारे विस्तरो मे
और चारो ओर दुनिया सो रही थी,
तारिकाये ही गगन को जानती थी
जो दशा दिल की तुम्हारे हो रही थी,
मैं तुम्हारे पास होकर दूर तुमसे
अधजगा सा और अधसोया हुआ था।'[18]

'प्रणय–पत्रिका' के गीत एक विशिष्ट प्रवास कालीन मनस्थिति से उपजे हैं। यही मन स्थिति 'आरती और अगारे' की कविताओ मे और अधिक विकसित हुई है।

जनमानस की व्यापक भावभूमि

बच्चन की काव्य–प्रतिभा अनेकानेक प्रत्यन्तरो से होती हुई अन्त मे शिल्पाग्रही काव्य रचना मे व्यस्त हो गयी है। मधुकाव्य बच्चन की प्रतिभा के विकास चिन्हो से युक्त है। भावोन्मेष के काल मे वे अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदेय हिन्दी साहित्य को दे देते हैं। बहिर्मुखी काव्य और प्रणय गीतो मे उनकी प्रतिभा का उतार दृष्टिगत होता है। बच्चन इसीलिए पुन प्रत्यावर्तित होते है और वस्तु और रूप की दृष्टि से नयी काव्य–सवेदना और नये रूप–विधानो का आयोजन करते हैं।

'बुद्ध और नाचघर' कवि के इसी दिशान्तर का सूचक है। इस संग्रह की कविताओ का रूप विधान पूर्ववर्ती काव्य के रूप विधान से आत्यन्तिक रूप से भिन्न है। कवि अपनी सवेदना की परिधि का विस्तार करता है और अन्तर्मुखता की केंचुली को त्याग कर अपनी कल्पना–विहगिनी को व्यक्तिमत्ता के पिजरे से मुक्त करता है। वह अपनी कल्पना को जनमानस की व्यापक भाव–भूमि पर अवतरित करता है। 'शैल विहंगिनी' नामक कविता इस दृष्टि से कवि का आत्मकथ्य ही है–

'मत डरो

ओ शैल की सुन्दर, मुखर, सुखकर

विहगिन

मैं पकडने को तुम्हे आता नही हूँ,

जाल फैलाता नही हूँ,

पीजरे मे डाल तुमको

साथ ले जाना नही मैं चाहता हूँ–

भूल मुझको

आई याद

यौवन के प्रथम पागल दिनो की।

एक तुम सी थी विहगिन

मैं जिसे फुसला–फँसाकर

ले गया था पीजरे मे–

बात मेरी सुन हँसी वह

शब्द जालो मे फँसी वह

पीजरे में डाल उसको

गीत किरणो के,

कुसुम के

औ, सुरभि के

अनगिनत मैंने लिखे

उसके लिए पर

गध रस भीनी हुई रगीनियाँ

उडती हुई उसकी निरन्तर।'[19]

इस सग्रह की सबसे महत्वपूर्ण रचना 'बुद्ध और नाचघर' है। इस लम्बी कविता मे कवि ने बुद्ध की जीवन साधना की पृष्ठभूमि मे आधुनिक मानव के अनाचार का आख्यान किया है। इस कविता का प्रभाव विरोधाभासो मे उत्पन्न होता है। यहॉ एक तीखी व्यग्य ध्वनि भी निहित है जो आधुनिक युग के द्वैत को प्रकट करती है। यह युग आदर्श और यथार्थ, स्वप्न और कार्य, चिन्तन और व्यवहार के विरोधाभास का युग है। बच्चन ने इसी विरोधाभास को डासिग हाल मे रखी गयी बुद्ध की प्रतिमा के आधार पर मूर्त करने का प्रयास किया है–

'और आज
देखा है मैने,
एक ओर है तुम्हारी प्रतिमा
दूसरी ओर है डासिग हाल
हे पशुओ पर दया के प्रचारक,
अहिसा के अवतार
परम विरक्त,
सयम साकार
मची है तुम्हारे सामने रूप–यौवन की ठेल–पेल,
इच्छा और वासना खुलकर रही है खेल,
गाय–सुअर के गोश्त का उड रहा है कबाव
गिलास पर गिलास
पी जा रही है शराब–
पिया जा रहा है पाइप, सिगरेट, सिगार
धुँआधार,
लोग हो रहे है नशे मे लाल,
युवकों ने युवतियों को खीच

लिया है बाहो मे भीच

छाती और सीने आ गये हैं पास,

होठो–अधरो के बीच

शुरु हो गयी है बात,

शुरु हो गया है नाच,

आर्केस्ट्रा के साज

ट्रपेट, क्लैरिनेट, कारनेट–पर साथ

बज उठा है जाज

निकलती है आवाज,

मद्य शरण गच्छामि

मास शरण गच्छामि

डास शरण गच्छामि।'[20]

बच्चन लोकानुभूति को भी अपने काव्य का माध्यम बनाते हैं। वह लोकगीतो की उल्लासमयी स्वर–लहरी को पुनरुज्जीवित करना चाहते है। 'त्रिभंगिमा' के गीत उनके इसी प्रयास का प्रतिफल है। 'त्रिभंगिमा' मे तीन शिल्पो मे ग्रथित कविताएँ सग्रथित हैं। उनकी पहली भंगिमा लोक–धुनो के आधार पर लिखी गयी कविताओ से निर्मित होती है। दूसरी भगिमा के अन्तर्गत कवि की आत्मपरक गीतात्मक रचनाएँ हैं, जहॉ कवि पुन अपनी अन्तर्मुखी वृत्ति को चरितार्थ करने का प्रयास करता है और तीसरी भगिमा का निर्माण मुक्त छन्द मे लिखी गयी रचनाओ के द्वारा होता है। 'त्रिभगिमा' की पहली भगिमा के गीत लोक गीतो की भावना के निकट हैं तथा कवि ने इनकी मूल संवेदना को लोकगीत के समान ही सहज रखा है। ये कवि के गीतात्मक प्रयोग हैं। वह सहगान, एकलगान तथा विविध प्रादेशिक लोकधुनो के आधार पर अपने बहुविधि प्रयोगों का समापन करता है। इनमे से कुछ गीत अत्यधिक लोकप्रिय हुये हैं। 'सोनमछरी' गीत का विधान हृदयाकर्षक है। कवि इस गीत की प्रेरणा महाभारत के एक श्लोक से प्राप्त करता है– 'संत्यज्य मत्स्य रूप सा दिव्य रूपमवाप्य च।' इस गीत का विधान उत्तर प्रदेश की

'ढिढिया' लोकधुन के आधार पर हुआ है। यह सहगान है। स्त्री अपने पति से 'सोनमछरी' लाने का अनुरोध करती है। उसका पति उसे समझाता है, पर वह अपना हठ नही छोडती और पति को सोने की मछरी लाने के लिए जाना पडता है। पर जब वह वापस लौटता है तो उसकी डोगी मे सोनमछरी की जगह सोने की परी होती है। यह देखकर स्त्री के दुख का ठिकाना नहीं रहता। वह अपनी गलती पर पश्चाताप करती है और कहती है–

'जो है कचन का भरमाया,
उसने किसका प्यार निभाया,
मैंने अपना बदला पाया,
मॉगी मोती की लरी, पाई ऑसू की लरी।
पीया, ऑसू की लरी, पिया, ऑसू की लरी।
मॉगी मोती की लरी, पाई ऑसू की लरी।'[21]

बच्चन के काव्य जीवन मे अनेक मोड आये हैं और वह बडी सजगता से अपनी अनुभूति को काव्यरूप देते हैं। यदि बच्चन की काव्य–कृतियो की क्रमागत विवेचना की जाय, तो हमे उसमे कवि की काव्य–प्रतिभा के धारावाहिक विकास का एक सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। उनका काव्य शिल्प भी अनेक रुपान्तरो के बीच से गुजरा है। वह उत्तर स्वच्छन्दतावाद काल के श्रेष्ठ कवियो मे से एक हैं।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

राष्ट्रीय चेतना और रोमांस की सम्मिलित प्रवृत्ति

उत्तर स्वच्छन्दतावादी कवियो मे रामधारी सिह 'दिनकर' का विशिष्ट स्थान है। छायावाद की उपलब्धियॉ उन्हे विरासत मे मिली, पर उनके काव्योत्कर्ष का उषकाल छायावाद की रग भरी सन्ध्या का समय था।

दिनकर मे रोमास और राष्ट्रीय चेतना की सम्मिलित प्रवृत्तियॉ मिलती हैं और सच्चाई तो यह है कि एक को स्वस्थ भूमि देकर और दूसरे को सास्कृतिक दिशा देकर, दोनो के सम्मिलन से उन्होने अपनी

काव्य यात्रा पूरी की। 'उर्वशी' मे उनकी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति आदर्शीकृत होती है और 'कुरुक्षेत्र' मे सास्कृतिक–राष्ट्रीय चेतना मौजूद है। दिनकर कभी 'रेशमी नगर' जैसी कविताएँ लिखते हैं जिसमे दिल्ली के नये भोग विलास का जिक्र है और कभी आक्रोशी मुद्रा मे आने पर 'परशुराम की प्रतीक्षा'। आरम्भिक काव्य मे श्रृगार और हुकार की सम्मिलित भूमि देखी जा सकती है।

दिनकर की प्रमुख काव्य कृतियाँ इस प्रकार हैं– 'रेणुका', 'हुकार', 'उर्वशी', 'रसवन्ती', 'कुरूक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'दिल्ली', 'नीम के पत्ते', आदि।

'रेणुका' मे दिनकर अपने कवि को अधिक वास्तविक भूमि पर लाने का प्रयास करते है–

'व्योम कुजो की परी अयि कल्पने!
भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नही
उड न सकते हम धुमैले स्वप्न तक
शक्ति हो तो आ, बसा अलका यहीं।'[22]

काव्य–संकलन के आरम्भ मे 'युगधर्म' और 'जागृति हुकार' की बात कही गयी है। 'हिमालय के प्रति' कविता मे राष्ट्रीय सास्कृतिक चेतना की खुली अभिव्यक्ति हुई है। कहा गया है कि 'पुण्यभूमि पर कराल सकट आन पडा है और व्याकुल सुत तडप रहे हैं ।' आवाहन है– 'पर फिरा हमे गाण्डीव, गदा, लौटा दे अर्जुन, भीम वीर ।' 'पाटलिपुत्र' अथवा 'मिथिला' मे नारियाँ अपना पिछला वैभव तलाशती है। यह स्थिति के प्रति रोमानी दृष्टि है– मिथिला नगरी का दर्द है–

'मैं क्षीण प्रभा, मै हत आभा
सम्प्रति भिखारिणी मतवाली
खण्डहर मे खोज रही अपने
उजडे सुहाग की हूँ लाली।'[23]

'रेणुका' दिनकर की प्रयोगकालीन रचना है। इसमे उनके मूल्य निश्चित नही हो सके हैं। अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी काव्य प्रवृत्तियो मे किस ओर उनका झुकाव अधिक है यह स्पष्ट नहीं होता। एक

ओर क्रान्ति का प्रलयकारी स्वर है तो दूसरी ओर छायावाद की कुठा, वेदना और नैराश्य भी है। 'रेणुका' के इन्ही सूत्रो का विकास दिनकर की परवर्ती काव्य कृतियो मे हुआ है।

दिनकर की प्रारम्भिक रचनाये अधिकतर भावावेश प्रेरित हैं। यदि रोमाण्टिक काव्य के विषय मे यह मान्यता स्वीकार कर ली जाय कि वह सम्भावनाओ को देखकर नहीं चलता, उसमे वाछनीय–अवाछनीय, सम्भावना–असम्भावना का प्रश्न नहीं उठता, तो यही कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय प्रतिपाद्य की ओर भी दिनकर की प्रारम्भिक दृष्टि रोमाण्टिक कवि की ही रही है। 'रेणुका' मे उनकी राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात ही हो सका है निर्धारण नही। उसके तीन मुख्य रूप है। प्रथम रूप है– विध्वसक क्रांति के आह्वान का, जिसकी प्रतिनिधि कविता है 'ताण्डव'। रुद्र प्रतीक मात्र हैं। रुद्र का आह्वान जनता की रौद्र भावनाओ का आह्वान है जिसे कवि अपने विस्फोटक स्वर द्वारा अत्याचार, आडम्बर और अहकार का नाश करने की चुनौती देता है। यह ध्वस और विनाश सभावनाओ की ओर ध्यान नहीं देता। कवि बुद्धि द्वारा उसे सतुलित नहीं करता, उसके ध्यान योग मे तो केवल श्रृगीनाद, प्रलय के बादल, अग्नि और तूफान, डगमगाते हुये पर्वत हैं– जो हिसक क्राति के प्रतीक हैं। यह क्रान्ति, यह ज्वाला अव्यवस्था फैला सकती है – आग लगा सकती है, परन्तु समस्या का अतिम समाधान नहीं बन सकती। फिर भी ताण्डव की क्रान्ति का प्रतीकात्मक महत्व है। वह नाश जिस पर नव–निर्माण की नीव न पड सके, जो भूकम्प, बाढ बनकर ही रह जाये, स्थायी महत्व की वस्तु तब तक नहीं हो सकता जब तक उसकी परिणति किसी उदात्त लक्ष्य मे न होती हो। ताण्डव की क्रान्ति मे इस उदात्त लक्ष्य का बिलकुल अभाव नही है। प्रलय के बादलो की गडगडाहट, अग्निवर्षा की ज्वाला, पर्वतो की डगमगाहट मे उसका स्वर प्रच्छन्न होते हुए भी शक्तिपूर्ण है –

'लगे आग इस आडम्बर मे
वैभव के उच्चाभिमान मे,
अहंकार के उच्च शिखर मे
स्वामिन अन्धड आग बुला दो,
जले पाप जग का क्षण–भर में।'[24]

अतीत के प्रति मोह और वेदना को भी दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का प्रारभिक रूप माना जा सकता है। 'रेणुका' मे इस पक्ष को बहुत प्रधानता दी गयी है। अतीत की ओर आसक्ति से देखने की प्रवृत्ति को दिनकर ने छायावादी सस्कार माना है। उन्होने लिखा है– 'छायावादी कविता का मूलाधार भावुकता थी और भावुकता जब वर्तमान से असन्तुष्ट हो जाती है तब, स्वभावत यह अतीत की ओर लालसा से दौडती है।'[25] दिनकर के अतीत–मोह का स्रोत तो राष्ट्रीय–सास्कृतिक और छायावादी दोनो ही काव्य–धाराओ मे था, परन्तु उसके प्रति करुणा और अवसाद के भाव मूलत. छायावादी कविता से ही प्राप्त हुये थे, इसमे कोई सन्देह नहीं है। 'हिमालय', 'मिथिला', 'पाटलिपुत्र की गगा' इत्यादि कविताये इस भावधारा की प्रमुख रचनाये हैं, जिनमे सामान्यत भारत की ऐतिहासिक गरिमा, प्राकृतिक सौन्दर्य, भौगोलिक महत्व और सास्कृतिक वैभव की अभिव्यक्ति की गयी है।

'रेणुका' के प्रतिपाद्य विषयो की दूसरी प्रमुख धारा वह है जिसमे उनकी काव्य–चेतना कला के यथार्थ मूल्यो की ओर उन्मुख होती है। इस भाव–धारा की प्रतिनिधि कविताये हैं– 'कविता की पुकार', 'कला' , 'तीर्थ' और 'कवि'। 'कविता की पुकार' मे उनकी कविता छायावाद के स्वप्निल नील कुजो से बाहर आकर, नालन्दा और वैशाली के खण्डहरो से बाहर वनफूलो की ओर जाने की कामना करती है, कल्पना और इतिहास को छोडकर यथार्थ और वर्तमान से सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है। श्रृगार और वैभव से विमुख होकर तृण–कुटियो मे प्रवेश करना चाहती है–

विद्युत छोड दीप साजूँगी, महल छोड तृण–कुटी प्रवेश,
तुम गावो के बनो भिखारी, मै भिखारिणी का लूँ वेश।

छायावाद की बौद्धिक कल्पना और अप्सरा–लोक को छोडकर वह गॉव के सहज अकृत्रिम वातावरण मे उतरना चाहती है– जहॉ स्वर्णांचला सध्या–श्याम परी खेतो मे उतर रही हो, हरी घास को रौंदती हुई गाये रोमन्थन करती हुई आ रही हों। वह ग्रामबाला के रूप, सौन्दर्य और सुहाग के गीत गाना चाहती है–

'पनघट से आ रही पीतवसना युवती सुकुमार
किसी भॉति ढोती गागर–यौवन का दुर्वह भार।

बनूँगी मै कवि! इसकी मॉग, कलश, काजल, सिदूर सुहाग।'[26]

ऐसे स्थलो पर छायावादी अभिव्यक्ति की चित्रात्मकता और प्रकृति पर मानवीय भावनाओ के आरोपण की शैली तो प्रयुक्त हुई है, परन्तु समष्टि मूलक प्रतिपाद्य के कारण उनकी दृष्टि व्यापक हो गयी है।

'रेणुका' के प्रतिपाद्य का तीसरा मुख्य सूत्र है– निवृत्तिमूलक वैयक्तिक चेतना का। इस तरह की प्रतिनिधि कविताये हैं – 'परदेशी', 'उत्तर मे', 'जीवन–सगीत', और 'वैभव की समाधि पर'। इन सभी कविताओ मे उनकी दृष्टि श्मशान, चिता, कब्रो और खण्डहरो पर जाकर अटक गई है। मृत्यु और नाश के उपकरण उनके लिए सत्य बन गये हैं और जीवन के तन्तु सारहीन, कही–कहीं पर इस असारता के प्रति उनकी दृष्टि मे किशोर–काल्पनिकता का तत्व अधिक हो गया है, और यह सारा दुखवाद एक सवेदनशील युवक का दिवास्वप्न सा जान पडने लगता है। जैसे–

'मैं न रुकूँगा इस भूतल पर
जीवन यौवन प्रेम गॅवाकर,
वायु, उडाकर ले चल मुझको
जहॉ कहीं इस जग से बाहर।'[27]

'रेणुका' की कुछ कविताएँ ऐसी भी है जिनमे कविता के लौकिक प्रतिपाद्यो को छोडकर दिनकर परियो के देश मे पहुँच गये हैं । वे स्वच्छन्दतावादी युग के राष्ट्रीय कवि थे, इसलिए वैयक्तिक धरातल पर उन्होने भी अपने अग्रज कवियो के समान काल्पनिक जगत के निर्माण मे यथेष्ट सफलता प्राप्त की है। छायावाद की परी–कल्पना, और रहस्य तत्वो का समावेश 'रेणुका' की कुछ कविताओ मे हुआ है। 'विश्व छवि' नामक कविता में दिनकर भी इसी रोमानी काव्य चेतना की ओर रुझान रखते दिखाई पडते हैं–

'मेरे काव्य–कुसुम से जग का हरा–भरा उद्यान बने,
मेरी मृदु कविता भावुक परियो का कोमल गान बने।
विधि से रंजित पख माग, मैं उड–उड व्योम–विहार करूँ,

जग प्रागण के बिखरे मोती से माला तैयार करुँ।'[28]

स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित इन कविताओ का दिनकर की कला–चेतना के राष्ट्रीय विकास मे महत्वपूर्ण स्थान है, क्योकि स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) युग के पहले हिन्दी की राष्ट्रीय सास्कृतिक चेतना से प्रेरित कविताएँ उपदेश प्रधान, विवरणात्मक और वर्णनात्मक होती थीं। इन उद्‌बोधनो और चेतावनियो मे कला की रगीनी नही थी। छायावाद युगीन राष्ट्रीय कवियो ने राष्ट्रीय कविता को उपदेश और उद्‌बोधन की नीरसता से निकालकर अनुभूति की शक्ति प्रदान की और जनता के साथ हिन्दी कविता का सम्बन्ध स्थापित किया। दिनकर उसमे सर्वप्रमुख थे।

'रेणुका' के प्रतिपाद्य विषय का अतिम सूत्र है– श्रृगार तथा नारी–भावना। श्रृगारपरक कविताएँ कम हैं। 'प्रेम का सौदा' इसके उदाहरण के रूप मे ली जा सकती है। अह का पूर्ण विगलन तथा पूर्ण समर्पण ही इस कविता के अनुसार सच्चा प्रेम है–

'प्रेम रस पीकर जिया जाता नहीं,
प्यार भी जी कर किया जाता नहीं,
चाहिए उर–साथ जीवन–दान भी
प्रेम की टीका सरल बलिदान ही।'[29]

नारी–भावना तथा नारी और पुरुष के सम्बन्ध विश्लेषण की दृष्टि से 'रेणुका' की 'राजा–रानी' कविता महत्वपूर्ण है। यहाँ दिनकर की काव्य चेतना के उस अश का प्रथम सूत्र मिलता है जिसकी चरम परिणति 'उर्वशी' मे हुई है।

हुंकार : राष्ट्रीय चेतना के मूल्यों का स्थिरीकरण

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना के मूल्यो का स्थिरीकरण 'हुकार' मे हुआ। 'रेणुका' में उनकी काव्य चेतना इतिहास के खण्डहरो और सस्कृति के अवशेषो पर रो रही थी। अब जैसे बीते हुये पर रोने की व्यर्थता को समझकर उन्होने वर्तमान से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय जनता के विकट संघात से उद्वेलित होकर दिनकर की काव्य–चेतना अग्नि की चिनगारियों से अपने स्वप्न सजाने को आगे बढी, वह स्वप्न जिसमें सिन्धु का गर्जन और प्रलय की हुंकार थी, जहाँ बँधा

तूफान रास्ता पाने के लिए विकल था, जहॉ मौन हाहाकार विश्व को हिला देने को व्यग्र हो रहा था। अब दिनकर 'नवल उर मे विपुल उमग भर कल्पना की मधुरिमा से मडित पुलकित राजकुमार' नहीं रह गये थे, अब तो वह क्रान्ति की विभा से आलोकित ज्योतिर्धर थे, जिनके भावो और कल्पना की अरुणिमा ने धरती के अन्धकार को चुनौती दी–

'जड को उडने की पॉख दिए देता हूँ,
चेतन के मन को ऑख दिये देता हूँ।
स्वर को कराल हुकार बना देता हूँ,
यौवन को भीषण ज्वार बना देता हूँ।
शूरो के दृग अगार बना देता हूँ,
हिम्मत को ही तलवार बना देता हूँ।
लोहू को देता हूँ वह तेज रवानी,
जूझती पहाडो से अभय जवानी।'[30]

'हुकार' सग्रह की प्रमुख कविताएँ असमय आह्वान, साधना और द्विधा स्वर्ग–दहन, आलोकधन्वा, चाह एक, दिगम्बरि, अनल किरीट, भीख, विपथगा, यज्ञोन्मुखी, महामानव की खोज, व्यक्ति, भविष्य की आहट, दिल्ली आदि हैं। 'हुकार', 'रसवन्ती' और 'द्वन्द्व गीत' का प्रकाशन प्राय साथ–साथ हुआ है। रसवन्ती मे श्रृगार चेतना प्रधान है।

रसवन्ती : श्रृंगार चेतना की अभिव्यक्ति

दिनकर की काव्य–प्रेरणा मे वैयक्तिक और समष्टिगत अनेक विरोधी और अविरोधी तत्व साथ–साथ विद्यमान रहे हैं। क्रातिकारी और राष्ट्रीय कवि के पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के बाद 'रसवन्ती' की रसमयी भावनाओ को सार्वजनिक रूप से जनता के समक्ष रखने मे दिनकर का सकोच और भय स्वाभाविक था, क्योकि समष्टि से व्यष्टि की ओर लौटना प्राय. उसी रूप मे ह्रास का चिन्ह माना जाता है जैसे कि अध्यात्म साधना से विरत और च्युत होकर कोई व्यक्ति कचन और कामिनी की ओर लौट आये। पथभ्रष्ट साहित्यकार की स्थिति योग भ्रष्ट साधक की स्थिति से भिन्न नही होती। 'रसवन्ती' को प्रकाश मे

लाते समय दिनकर के मन में यही संकोच था। अनेक आलोचको ने 'रसवन्ती' के दिनकर को पलायनवादी मानकर उन पर यथार्थ और सघर्ष से कायरतापूर्वक मुँह मोड लेने का दोषारोपण किया है। दिनकर की काव्य–चेतना मे व्यष्टि और समष्टि, सुन्दर और सत्य, ओज और प्रेम, प्रवृत्ति और निवृत्ति साथ–साथ चले हैं। 'द्वन्द्वगीत' का धुँआ, 'हुकार' की आग और 'रसवन्ती' का रस उनके हृदय मे साथ–साथ विद्यमान रहे हैं। दिनकर ने अपनी काव्य–चेतना के इस वैयक्तिक रूप को बिना किसी हिचक और लज्जा के स्वीकार किया है–

'सस्कारो से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था, किन्तु मन मेरा भी चाहता था कि गर्जन–तर्जन से दूर रहूँ और केवल ऐसी ही कविताएँ लिखूँ जिनमे कोमलता और कल्पना का उभार हो। यही कारण था कि जिन दिनो 'हुकार' की कविताये लिखी जा रही थी, उन्ही दिनो मे 'रसवन्ती' और 'द्वन्द्वगीत', की भी रचना कर रहा था और अजब सयोग की बात है कि सन् 1939 ई0 मे ही ये तीनो पुस्तके एक वर्ष के भीतर–भीतर प्रकाशित हो गयी और सुयश तो मुझे 'हुकार' से ही मिला, किन्तु आत्मा मेरी अब भी 'रसवन्ती' मे बसती है।'[31]

'रसवन्ती' मे गिरि–हृदय के व्याकुल निर्झरो को गति मिली है। बडे यत्न से छिपाये हुये भाव मुकुलो को हृदय से नीचे उतारते हुये दिनकर के मन मे कातरता है। 'गीत–शिशु' नामक कविता मे यह भाव–स्निग्ध कातरता बडी आर्द्रता के साथ व्यक्त हुई है। कल्पना के ये शिशु ससार की रीति–नीति नही जानते, पृथ्वी की रागद्वेषमयी अकरुणा से उनकी रक्षा किस प्रकार हो सकेगी, दिनकर का मन इसी आर्द्र शका से युक्त है। उडु से द्युति, बाल–लहर से गति और मलय से सौरभ लेकर उनका रूप सवारा गया है, सासारिकता के बोध से अनभिज्ञ वे केवल धूल से खेलना जानते हैं, रेणु और रत्न का भेद उन्हे नही मालूम। परन्तु सरस्वती की आराधना मे पुष्प चढाने के लिये कवि पिता ने साहस करके उन्हे पृथ्वी पर उतार दिया है। नेत्रो में विस्मय तथा शील और मन मे अभिलाषा लिये वे पृथ्वी पर उतर पडे हैं। उनके प्रति मोहग्रस्त दिनकर के हृदय की एक आवाज है जिसमें उनका आर्द्र–कोर हृदय बोल रहा है–

'छूकर भाल, वरद कर से, मुख चूम विदा दो इनको,
आशिष दो ये तरल गीत शिशु विचरे अजर–अजय से।'[32]

'रसवन्ती' कविता मे यह शब्द दिनकर की काव्य–प्रेरणा के प्रतीक के रूप मे प्रयुक्त हुआ है जिसमे कोमल, आर्द्र तथा ओज–प्रखर तत्वो के आरोह–अवरोह और उत्थान–पतन का विवेचन किया गया है। कभी उन्होने कोकिल से माधवी कुंजो का मधुराग सीखा और कभी बाडव की दाहक अग्नि अज्ञात ही उनके कठ में आकर बैठ गई, कभी प्रकृति के सुकुमार उपकरण उनके हीरे से कठोर दिल को चीर गये और कभी अतीत के खण्डहर मे बैठकर वे विकल मानवता के कल्याण का मार्ग ढूढते रहे। दलित देशो का हाहाकार और विज्ञान की आग मे जलता हुआ मानव भी उनकी कविता का विषय बना। इस प्रकार व्यष्टि और समष्टि, बिन्दु और सिन्धु दोनो को ही समेट कर उनकी 'रसवन्ती' आगे बढी। कभी ऐसे भी क्षण आये जब सिन्धु की विशालता विलीन हो गई और बिन्दु की कोमल स्निग्ध गहराइयो मे ही उसने अवगाहन किया। वैयक्तिक सुख–दु ख, मधुमास का पराग, यौवन काल की उष्णता, प्रेम की शीतलता और रूप की चकाचौंध मे कुछ दिनों के लिए उनकी 'रसवंती' लजीली, शर्मीली, कोमलागी, तन्वगी ही रह गयी, 'रसवन्ती' मे उनकी कला–चेतना का यही मधुर कोमल रूप प्रधान रूप से व्यक्त हुआ है।

दिनकर की अगली रचना 'द्वन्द्व गीत' है। इसमे राग–विराग का द्वन्द्व, कर्मवाद और पलायनवाद का द्वन्द्व और आस्था–अनास्था का द्वन्द्व चित्रित है। इसमे दिनकर के जीवन पर किये गये प्रयोगो और उसके फलस्वरूप प्राप्त अनुभूतियो की अभिव्यक्ति है।

कुरुक्षेत्र : युद्ध और शान्ति की समस्या

दिनकर की एक महत्वपूर्ण रचना 'कुरुक्षेत्र' है। यह एक युद्ध काव्य है। दिनकर सभवत हिन्दी के पहले कवि हैं, जिहोने युद्ध को अपनी कविता का प्रतिपाद्य बनाया, उसके मूल कारणों तथा पक्ष–विपक्ष का विश्लेषण करके उससे उत्पन्न समस्याओ के समाधानो की ओर इंगित किया। द्वितीय महायुद्ध के भीषण सहार, हाहाकार और त्रास ने दिनकर को इस विषय पर सोचने के लिए बाध्य किया। अपनी दुर्बलताओ और परिसीमाओ से लडने मे ही मनुष्य सबसे निरीह होता है। पारिवारिक परिस्थितियों की विषमताओ के दबाव से उन्हे युद्ध प्रचार विभाग में कार्य करना पडा। नियति का व्यग्य देखिये कि जिस युवा कवि की कृतियॉ देश के लिए जेल जाने वाले नवयुवको की जेबों में रहती थी, जिसके सशक्त और ओजपूर्ण स्वर जनता मे क्रान्ति की लहर उत्पन्न कर रहे थे, वही कवि परिस्थितियो के हाथ का खिलौना बनकर

युद्ध–प्रचार मे योग देने को अपना गला साफ कर रहा था। 'कुरुक्षेत्र' की रचना ही इस बात का प्रमाण है कि दिनकर का मन उन दिनो कितना द्वन्द्वग्रस्त रहा होगा।

'कुरुक्षेत्र' मे दिनकर जी युद्ध के विषय मे एक नया दृष्टिकोण लेकर आये। भले ही भारतीय और पाश्चात्य धारणाये पार्श्वभूमि और पृष्ठभूमि मे हो, लेकिन स्थापनाएँ एव सदेश उनके अपने है और वे व्यावहारिक, सार्वभौम और पूर्ण हैं।

'कुरुक्षेत्र' मे युद्ध–शान्ति का प्रश्न है, पर सघर्ष से बचने का समर्थन नहीं है। काव्य मे इन समस्याओ पर विचार करते हुये दिनकर वास्तविकता से पलायन नही करते। माना, युद्ध एक तूफान है जो भीषण विनाश करता है, पर आखिर इसका दायित्व किस पर है ? जब तक समाज मे शोषण, दमन, अन्याय मौजूद है, तब तक सघर्ष अनिवार्य है और 'कुरुक्षेत्र' इसे बचा जाने को कायरता मानता है। तीसरे सर्ग मे कवि ने इस विषय मे विस्तृत विचार किया है। उसका कहना है कि कृत्रिम शाति का कोई मतलब नहीं है। शान्ति तभी शोभा पाती है जब सबको जीने के समान अवसर हो। न्यायोचित अधिकार मॉगने से नहीं मिलता उसे लडकर लेना पडता है। सहिष्णुता, क्षमा, दया विजेता का शोभन धर्म है। पराजित जाति के लिए सहिष्णुता कलक है–

'क्षमा शोभती उस भुजग को,
जिसके पास गरल हो
उसको क्या जो दत हीन,
विषरहित, विनीत, सरल हो।'

आसुरी शक्ति को आत्मशक्ति द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता–

'कौन केवल आत्मबल से जूझकर
जीत सकता देह का सग्राम है ?
पाशविकता खड्ग जब लेती उठा,
आत्मबल का एक वश चलता नही।'

'कुरुक्षेत्र' मे युद्ध और शान्ति की समस्या पर विचार करते हुए दिनकर अपना वैचारिक दर्शन सामने लाते है कि अन्याय का विरोध होना चाहिए। पौरुष और कर्म जीवन सग्राम के लिए आवश्यक है। सामाजिक और आर्थिक वैषम्य मानवता के विकास मे बाधक हैं। इनके निराकरण से ही दिनकर मानवता की मुक्ति की कल्पना करते हैं–

'न्यायोचित सुख सुलभ नही,
जब तक मानव मानव को,
चैन कहॉ धरती पर तब तक,
शान्ति कहॉ इस मन को ?
जब तक मनुज मनुज का यह,
सुख–भाग नही सम होगा,
शमित न होगा कोलाहल,
सघर्ष नहीं कम होगा।'[33]

उर्वशी : कामाध्यात्म की समस्या

'कुरुक्षेत्र' की तरह ही दिनकर का एक और विशिष्ट काव्य 'उर्वशी' है। इसे गीति नाट्य भी कहा गया है, यद्यपि इसमे नाट्य–तत्व कम है। इसका कथातत्व भी अत्यन्त झीना है, पात्रो की सख्या भी बहुत कम है। कथा के प्रारभ मे पुरुरवा की राजधनी प्रतिष्ठानपुर के नन्दन कानन मे अप्सराओ का अवतरण होता है। यही पर उर्वशी–पुरुरवा के बीच प्रेम का अकुर उगता है। द्वितीय अक मे पुरुरवा की राजमहिषी औशीनरी को इस प्रेम प्रपच का समाचार मिलता है। तृतीय अक मे रति–चित्रो का अकन हुआ है। इसका चित्रण अत्यन्त समारोह पूर्वक किया गया है। इसी के साथ प्रणय के पार जीवन की चरम उपलब्धि या मोक्ष की आकाक्षा भी अभिव्यक्त है। चौथे अक मे उर्वशी अपना नवजात शिशु च्यवन ऋषि की पत्नी सुकन्या को लालन–पालन के लिए सौप देती है। पॉचवे अंक मे सुकन्या उर्वशी–पुरुरवा के पुत्र आयु को प्रतिष्ठानपुर ले आती हैं। भरतमुनि का शाप प्रतिफलित होता है– उर्वशी अदृश्य हो जाती है और पुरुरवा सन्यास ले लेता है।

दिनकर ने पुरुरवा–उर्वशी की पौराणिक कथा के माध्यम से चिरन्तन पुरुष और चिरन्तन नारी के प्रश्नो पर विचार किया है। दिनकर ने लिखा है– 'उर्वशी शब्द का कोशगत अर्थ होगा उत्कट अभिलाषा, अपरिमित वासना, इच्छा अथवा कामना और पुरुरवा शब्द का अर्थ है वह व्यक्ति जो नाना प्रकार का रव करे, नाना ध्वनियों से आक्रान्त हो। उर्वशी चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक तथा श्रोत्र की कामनाओ का प्रतीक है, पुरुरवा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द से मिलने वाले सुखो से उद्वेलित मनुष्य।'[34]

'उर्वशी' की मुख्य समस्या कामाध्यात्म की समस्या है। पुरुरवा काम–पीडा से व्याकुल होकर उर्वशी के प्रेम मे निमग्न हो जाता है। इस निर्बाध विलास मे वह ऐन्द्रिय प्रेम तथा अतीन्द्रिय प्रेम के साथ–साथ परम तत्व के बारे मे भी सोचता है।

'उर्वशी' मे काम समस्या का समाधान उन्नयन और सामजस्य के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। परन्तु इसका प्रतिनिधित्व करने वाली घटनाये और पात्र गौण है। समस्या प्रधान कृति मे मूल प्रभाव कई होते हैं और उनकी व्यजना भी केवल नायक–नायिका द्वारा नहीं, अन्य पात्रो द्वारा भी की जाती है। पुरुरवा का सन्यास और उर्वशी का प्रत्यागमन किस समाधान की ओर सकेत करता है ? तृतीय अक मे चित्रित प्रवृत्तिमूलक प्रेम का समाधान देना कवि का ध्येय नहीं रहा है। आज के विचार दर्शन मे जहाँ काम को जीवन की मूल प्रेरणा तथा जीवनेच्छा के पर्याय के रूप मे स्वीकार किया गया है, काम की प्रेरणा की समाप्ति और अभाव का अर्थ है जीवन शक्ति का अभाव, जीवन जीने के उत्साह की समाप्ति। साधारण प्रतिभा का औसत व्यक्ति नैराश्य से समझौता कर लेता है, परन्तु पुरुरवा साधारण नही है। वह तो उस व्यक्ति का प्रतीक है जिसके व्यक्तित्व का देवोपम विकास हुआ है, जिसके स्नायविक तार चेतन तथा सजीव हैं तथा जिसका मन स्वभाव से ही, ऊर्ध्वगामी और उड्डयनशील है, उसे काम के स्पर्श मात्र से प्रेम की समाधि का बोध होता है। प्रवृत्तियो को ही सत्य मानकर झझा के समान जीने वाले व्यक्ति के नैराश्य का समाधान क्या हो सकता है ? उसके विराग की प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीव्र होगी जितनी राग की। आज के परिवेश मे जहाँ जीवन मे काम और अध्यात्म एक दूसरे के पूरक नही होते, वहाँ घोर नैराश्य की प्रतिक्रिया स्नायविक विकृतियो तथा अनेक तरह की कुंठाओं मे होती है। यदि दिनकर

प्रवृत्तियो के शासन मे बॉधे हुये व्यक्ति के दुर्भाग्यपूर्ण अनिवार्य 'अन्त' की ओर सकेत न करते तो शायद पुरुरवा काम से टूटे और बिखरे हुये व्यक्ति का प्रतिनिधित्व न कर पाता।

'उर्वशी' के माध्यम से कोई समाधान प्रस्तुत करना कवि का उद्देश्य नहीं था। उन्होने लिखा है– 'प्रश्नो के उत्तर, रोगो के समाधान मनुष्यो के नेता दिया करते है। कविता की भूमि केवल दर्द को जानती है, केवल वेचैनी को जानती है, केवल वासना की लहर और रुधिर के उत्ताप को पहचानती है।'[35]

'रश्मिरथी', और 'परशुराम की प्रतीक्षा' दिनकर के अन्य प्रबन्ध काव्य हैं। 'इतिहास के ऑसू', 'दिल्ली', 'नीम के पत्ते' आदि उनके अन्य काव्य सग्रह हैं। वे अपने व्यक्तित्व को बराबर विकसित करते चलते हैं। उन्होने स्वच्छन्दतावादी काव्य की राष्ट्रीय–सास्कृतिक चेतना को नया तेवर प्रदान किया।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

प्रकाशन के प्रति उदासीन

अपने समकालीन कवियो मे नवीन का व्यक्तित्व सबसे अधिक जुझारू और सघर्षमय था। उनकी काव्य रचनाएँ विलम्ब से प्रकाशित हुईं। डॉ0 कान्ति कुमार जैन ने लिखा है– 'कवि के रूप मे बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को अपने जीवन काल मे वह स्थान और यश नही मिला जो मरणोपरान्त प्राप्त हुआ। ठीक समय पर कवियो की रचनाओ के प्रकाशित न हो पाने से आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास बहुत कुछ एकागी और विकृत हो गया है। माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कवितायें जब वे लिखी गयी थी, तभी पुस्तकाकार प्रकाशित हो गयी होतीं तो छायावाद का इतिहास कुछ दूसरे ढग से लिखा जाता।'[36]

नवीन ने सन् 1917 ई0 से नियमित लिखना प्रारम्भ कर दिया था। यह हिन्दी मे छायावाद के उन्मेष का काल था। पत और निराला की प्रारम्भिक रचनाएँ इन्ही दिनो लिखी जा रही थी। नवीन जी की रचनाओ मे छायावादी काव्य की महत्वपूर्ण विशेषताये उपलब्ध होती हैं। किन्तु उनका पहला काव्य सग्रह सन् 1936 ई0 मे तब प्रकाशित हुआ जब छायावादी काव्य का अवसान आसन्न था। नवीन जी के काव्य व्यक्तित्व के मूल्याकन मे दूसरी सबसे बडी बाधा यह हुई कि जनता ने, कवियों ने और समीक्षको

ने भी नवीन जी को राजनीति का व्यक्ति अधिक माना, कविता का कम। उनके सम्बन्ध मे समीक्षको की आम धारणा यह थी कि मस्तमौला और फक्कड नेता भूले भटके कविता की गलियो के भी चक्कर मार लेता है।[37] राष्ट्रीय आन्दोलन के तूफानी दिनों में माथा ऊँचा करके, सीना तानकर, मुट्ठियॉ बॉधकर नवयुवक गाया करते थे–

'कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल–पुथल मच जाये।
एक हिलोर इधर से आये,
एक हिलोर उधर से आये।
प्राणो के लाले पड जाये,
त्राहि–त्राहि स्वर नभ मे छाये।
बरसे आग, जलद जल जाये,
भस्मसात भूधर हो जाये।'[38]

और जब असहयोग आन्दोलन को अचानक समाप्त कर दिया गया, तब बलिदानियो के आहत अभिमान को और राष्ट्र की हताश सिर धुनती लौ को भी नवीन जी ने वाणी दी–

'आज खड्ग की धार कुठिता है,
खाली तूरीण हुआ,
विजय पताका झुकी हुई है।
लक्ष्यभ्रष्ट यह तीर हुआ।'

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के सम्पूर्ण वांगमय मे उनका युग तथा जीवन गुजायमान है। अनुभवों व परिस्थितियो के घात–प्रतिघात और घटनाओ के वात्याचक्रो ने उनको अपनी मान्यताऍ बनाने की शिक्षा मे तत्व प्रदान किये। उनका समग्र जीवन आरोह–अवरोह की करुण कहानी से आप्लावित है। उन्होने राग–विराग दोनो में दिन व्यतीत किये, झोपडी और अट्टालिकाओ का सुख–दुख भोगा। उनके जीवन सूत्रो ने समस्त मध्य भारतीय जीवन–जगत् के इतिहास के साथ उन्हें पिरो दिया है।

नवीन जी के चरित्र, आचरण तथा सिद्धातो मे कतिपय विशिष्ट उपादानो ने अपना निश्चित स्थान बना लिया था। उसका कारण उनके जीवन की विस्तृत व उर्वर पीठिका है। एक वाक्य मे कहा जाय कि उनकी माता ने तथा उनके गुरु गणेशशकर विद्यार्थी ने उनके जीवन को बनाया और मोडा। गणेशशकर विद्यार्थी के वे जीवन्त स्मारक थे। जिस समय वे अपने जीवन की प्रारभिक किरणे विकीर्ण कर रहे थे, उस समय उनका प्रदेश मालवा एक विचित्र प्रकार की सामन्तवादी प्रथा व व्यवस्था से आक्रान्त था। ऐसे वातावरण मे चाटुकारिता या दण्ड के अतिरिक्त कोई पथ न था। नवीन जी प्रारम्भ से ही ऐसे वातायन के आदी नही थे और गणेशशकर विद्यार्थी की दिव्यता से आकर्षित होने के कारण, उन्हे अपने स्थानिक वातावरण का दास नहीं बनना पडा। विद्यार्थी जी के रास्ते पर वे आजीवन चलते रहे, न पीछे हटे और न विचलित हुए।

उनका सपूर्ण जीवन एक योद्धा का जीवन है। लडना, जूझना, टकराना और पराजय की भावना को उत्पन्न न होने देना ही उनके जीवन का सार है। उनका जीवन एक युद्ध था। नयी मान्यताओ की प्राय. प्रतिष्ठा के लिए उन्होने अपने सर्वत्र सघर्ष किया। परन्तु इस सेनानी मे कही भी उश्रखलता नहीं दिखाई देती। वह कहीं भी अपनी विनम्रता की परिधि का उल्लघन नही करता। उनके व्यक्तित्व व काव्य के निर्माण मे, उनके जीवन की अपनी स्थिति, बडी स्पष्ट हो जाती है। बाल्यावस्था मे निरकुश रहने के कारण और अपना प्रारभिक मार्ग अपने हाथो से गढने के कारण, स्वाभाविक रूप से, ऐसे व्यक्तियो मे मनोविज्ञान के आधार पर विद्रोह तथा सघर्ष की शक्ति उत्पन्न हो जाना अपना नैसर्गिक रूप ही रखता है। ससार के अन्य महापुरुषो की भॉति वे भी अधिकतर ससार की पाठशाला मे ही अधिक शिक्षित व दीक्षित हुए। पाठ्य पुस्तको की अपेक्षा उन्होने खुले ससार का अनुभव प्राप्त किया और अपनी मान्यताऍ स्थिर की। आजीवन दुख, दैन्य तथा यातनाऍ भुगतने के कारण उनमे करुणा की भावना का अत्यधिक प्रसार हो गया था। सदा–सर्वदा सग्राम मे तलवार कसे सेनापति के समान उन्होने अपने जीवन के गह्वरो, पर्वतो व नदियो को पार किया, कभी मधुवन आये, कभी बीहड, वन। सासारिक सुख व भोग के प्राप्त न होने के कारण उनमे निराशा की भावनाऍ भी पख खोलने लगी थी। मानव के प्रति मानव के सच्चे प्यार के कायल होने के कारण उनमे भावुकता की मात्रा का अत्यधिक विकास हुआ।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' सर्वतोन्मुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं–

1 कुंकुम (स्फुट काव्य–सग्रह)

2 रश्मिरेखा (स्फुट काव्य–सग्रह)

3 अपलक (स्फुट काव्य–सग्रह)

4 विनोबा–स्तवन (स्फुट काव्य–सग्रह)

5. उर्मिला (प्रबन्ध काव्य)

6 प्राणार्पण (खण्ड–काव्य)

नवीन के आदि काव्य–सग्रह 'कुकुम' का प्रकाशन काल सन् 1939 ई0 है। उन्होने इसके प्रारम्भ मे एक लम्बी भूमिका दी है, जिसका शीर्षक है– कुछ बाते। काव्य और कला पर नवीन जी की विचारधारा से अवगत होने के लिए प्रस्तुत भूमिका अत्यन्त उपादेय तथा महत्वपूर्ण है। इसमे साहित्य के विषय मे नवीन जी के बुनियादी विचार सग्रहीत है।

'कुकुम' मे 38 कविताओ को सग्रहीत किया गया है। इसमे देश भक्ति परक रचनाये ही अपना प्राधान्य रखती हैं। कवि की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचनाये 'विप्लवगान' एव 'पराजित गीत' इसी सकलन की श्री वृद्धि करती हैं। वीर रस से परिपूर्ण कविताओ के कारण काव्यश्री मे द्युति आ गयी है। शिवदान सिह चौहान के अनुसार 'कुकुम मे सग्रहीत राष्ट्रीय आन्दोलन, गाधीवाद और प्रगतिवाद से प्रभावित गीतो मे उनका व्यक्तिवाद दिनकर की तरह प्रगति की इतिहास चेतना का विश्वास भरा गर्व–स्फीत स्वर लेकर प्रकट हुआ।'[39] नवीन जी का व्यक्तिवाद राष्ट्रीयता के पथ पर अग्रसर होता हुआ दिखता है।

राष्ट्रीयता के अतिरिक्त श्रृगार एव चिन्तन–प्रधान कविताये भी प्राप्त होती हैं। प्रेम के सयोग और वियोग दोनो पक्षो को कवि ने स्पर्श किया है।

इस संकलन मे गीत, प्रगीत तथा मुक्तक–तीनो प्रकार की काव्य–प्रणालियो को कवि ने अपनत्व प्रदान किया है। खडी–बोली के साथ ही साथ ब्रजभाषा मे भी कतिपय रचनाये उपलब्ध होती हैं। कवि के

प्रथम सकलन से ही यह विदित होता है कि उसकी काव्य धारा दो प्रधान विभागो–राष्ट्रीयता तथा प्रणय के कूलो को स्पर्श करती प्रवाहित हो रही है।

नवीन का दूसरा काव्य–संग्रह 'रश्मिरेखा' अगस्त, 1951 ई0 मे प्रकाशित हुआ। इस सकलन की प्रस्तावना मे उन्होने अपने जीवन दर्शन, सत् साहित्य सम्बन्धी आदर्श और अपनी कृतियो की मूलधारा का सुन्दर विश्लेषण किया है। इसमे 57 कविताये सग्रहीत है। प्रणय, विप्रलम्भ, श्रृगाररस, मधुवाद, वात्सल्य, प्रकृति–चित्रण, व्यक्तिगत मस्ती आदि उपादानो ने भी अपना प्रभाव बिखेर रखा है। कवि की अति प्रसिद्ध कविता 'हम अनिकेतन' को इसी सग्रह मे स्थान प्राप्त हुआ है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस कविता की सराहना करते हुए बताया है– 'हम अनिकेतन वाली कविता मे जो स्वारस्य था, वैयक्तिक भावनाओ को जो व्यक्त किया गया था, उससे उनकी साहित्यिक शैली मे भी उत्तम काव्य लिखने की सूचना प्राप्त हुई थी। अनिकेतन वाली कविता मुझे बहुत पसद आयी थी और मैंने इन्हे इस पर पत्र भी लिखा था।'[40]

नवीन जी का तीसरा काव्य–सकलन 'अपलक' सितम्बर, 1951 ई0 मे प्रकाशित हुआ। 'मेरे क्या सजल गीत ?' शीर्षक से भूमिका मे मार्क्सवादी साहित्य, दर्शन तथा प्रगतिवादी साहित्य की विचारधारा से कवि ने अपना सप्रमाण मतभेद व्यक्त किया है।

'अपलक' का मुख्य काव्य–विषय प्रेम है। प्रेम मे स्मृति जन्म वियोग एव वेदना के चित्र अधिक उभर कर आये हैं। प्रेम परक कविताओ के अतिरिक्त आध्यात्मिक व्यक्तिगत अल्हडता तथा प्रकृति–चित्रण सम्बन्धी कविताये भी मिलती है। जहॉ प्रणय सम्बन्धी गीतो मे निराशा जन्य वेदना की प्रमुखता है, वहॉ चिन्तनपूर्ण रचनाओ मे भी कवि अलौकिक भावनाओ की अभिव्यक्ति करते–करते भौतिकता की ओर उन्मुख हो जाता है।

नवीन जी का चौथा काव्य–सग्रह 'क्वासि' सितम्बर, 1952 ई0 मे प्रकाशित हुआ। इस सग्रह मे नवीन जी की अत्यन्त सारगर्भित भूमिका है, जिसमे प्रगतिवाद, मार्क्सवादी दर्शन, पदार्थवादी समीक्षा, साहित्य स्रष्टा एव समीक्षा सम्बन्धी कवि की उपपत्तियॉ, भारतीय साहित्य की आत्मा व उसका लक्ष्य तथा सस्कृति पर गंभीरता पूर्वक विचार किया गया है। प्रगतिवाद और मार्क्सवादी दर्शन से कवि ने अपना पूर्ण मतभेद प्रस्तुत किया और प्रगतिवादी आलोचको की समीक्षा का खरा एव सोदाहरण विश्लेषण किया।

'क्वासि' सस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है– कहॉ हो ? सग्रह के शीर्षक के अनुसार इसमे दार्शनिक कविताओ की प्रचुरता है।

नवीन जी का पॉचवा काव्य–सग्रह 'विनोबा–स्तवन' है जिसमे भूदान–यज्ञ के प्रणेता आचार्य विनोबा भावे को श्रद्धाजलि अर्पित की गयी है। विनोबा की साधना एव मानव सेवा ही इस कृति की भावना है। उनके व्यक्तित्व, सदेश, गाधी जी का उत्तराधिकार, प्रभावोत्पादकता, महापुरुषो की परम्परा, मानव मन का उद्वेलन, वाणी की महत्ता और जन कल्याण के पक्षो को नवीन जी ने अपनी कविता माला मे गूँथा है। कवि ने पूर्ण तन्मयता, निष्ठा तथा सात्विक रूप मे इस कृति का सृजन किया है।

नवीन जी का छठवॉ काव्य ग्रन्थ 'उर्मिला' है जो कि उत्कृष्ट कोटि की प्रबन्ध कृति है। इसे उन्होने मैथिलीशरण गुप्त को समर्पित किया है जिनके प्रति कवि हृदय मे श्रद्धा और आस्था की भावना रही है। यह काव्य सन् 1957 ई0 मे प्रकाशित हुआ ।

प्रस्तुत ग्रथ की भूमिका 'श्री लक्ष्मण चरणार्पणमस्तु' कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण एव सूचना–प्रद है। 'उर्मिला' के लेखन और प्रकाशन का लम्बा इतिहास है। यह ग्रन्थ 1922 ई0 से 1934 ई0 के बीच लिखा गया। यह तेईस वर्ष बाद 1957 ई0 मे प्रकाशित हुआ। इस सम्बन्ध मे नरेश मेहता ने लिखा है–

'साहित्य मे उन्होने मुचकुन्द का आदर्श उपस्थित किया, फलस्वरूप सन् 34 का प्रणीत उर्मिला महाकाव्य सन् 58–59 मे प्रकाशित होता है और जाहिर था उस कृति से कृतिकार की जो सामाजिक प्रतिष्ठा होनी थी, वह नहीं हुई।'[41]

इस ग्रन्थ के विषय मे देवीशकर अवस्थी ने लिखा है– 'इस दौरान मे हिन्दी कविता काफी आगे बढ चुकी है। अत· उसकी भावाभिव्यक्तियॉ एक ओर बीसवी सदी के छठे दशक के पीछे कीं है, उसका दृष्टिकोण आर्यसमाजी एव राष्ट्रीय सग्राम के आरभिक काल का है, वही वे इतनी पुरानी भी नही है कि अपेक्षित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे उन्हे तटस्थतापूर्वक रखा जा सके। उसका लेखन आज भी क्रियाशील है। साकेत जहॉ परम्परा की एक कडी बन गया, वही उर्मिला धार से असपृक्त हो गये जल की भॉति प्रतीत

होती है। परन्तु मेरा विश्वास है कि सभवत कुछ और दिन बीत जाने पर उर्मिला अधिक महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी ग्रन्थ होगा।'[42]

'उर्मिला' काव्य की कथावस्तु छ सर्गों मे विभाजित तथा वर्णित है। प्रस्तुत काव्य कथा मे रचनाकार ने रामायणी कथा को नूतन दृष्टिकोण से देखने तथा प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है। उर्मिला के चरित्र को प्रधानता देते हुये, आधुनिक युग की प्रतिक्रियाओ को भी प्रतिपादित किया गया है। आलोच्य काव्य मे विविध छदो तथा शैलियो का प्रयोग किया गया है। कवि के यश शरीर को जीवित रखने और कृतित्व के घनीभूत प्रतीक हेतु उर्मिला कृति ही पर्याप्त है।

प्राणार्पण

स्वर्गीय हुतात्मा गणेशशकर विद्यार्थी के निधन के पश्चात् इस खण्डकाव्य की रचना हुई। 'प्राणार्पण' के प्रारभ मे प्रधानमत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू के द्वारा लिखी गयी भूमिका है। प0 नेहरू गणेश जी और नवीन जी के पुराने तथा घनिष्ठ मित्र रहे हैं। काव्य–विषय तथा काव्यकार दोनो की मन स्थितियो तथा घटनाओ को प0 नेहरू के निकट से जाना–पहचाना था। 21 जनवरी 1962 ई0 को लिखित इस भूमिका मे बलिदान की महिमा ऑकी गयी है।

गणेशशकर विद्यार्थी के शहीद होने की घटना का काव्यात्मक वर्णन ही इस खण्डकाव्य की विषयवस्तु का सार है। वस्तुत इसमे कथाभाग अत्यन्त सूक्ष्म है। अपने आराध्य एव जीवन निर्माता विद्यार्थी जी के प्रति कवि की भक्ति ही काव्य प्रवाह बनकर गतिशील हो पडी है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के जीवन और काव्य का हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओ से प्रत्यक्ष एव अटूट सम्बन्ध रहा है। उन्होंने अपने युग तथा राष्ट्र की तलवार और लेखनी दोनो से ही सेवा की। सास्कृतिक पुनरुत्थान के वे प्रेमी थे और अपने अध्ययन तथा मनन से उन्होने राष्ट्रीयतावाद के सास्कृतिक पक्ष को परिपक्व बनाया।

संक्रान्ति काल के कवि

नवीन जी का राष्ट्रीय काव्य परिमाण एवं परिणाम दोनो ही रूपो में स्वातन्त्र्यपूर्व युग की देन है। इस युग के ही काव्य का कला तथा प्रभाव दोनो ही दृष्टिकोणो से सर्वोपरि महत्व है। कवि ने संक्रान्ति

काल मे जन्म लिया था, इसलिए उनके ही मतानुसार, 'सक्रान्ति काल के साहित्य मे तो आपको करुणा भी मिलेगी और पराजयवाद भी मिलेगा। सक्रान्ति मे आदर्श की प्राप्ति तो होती नहीं–यदि वह हो जाय तो सक्रान्ति काल क्रान्ति युग मे ही परिणत न हो जाय ? सक्रान्ति के काल मे तो आदर्श प्राप्ति के प्रयत्न होते है और उन प्रयत्नो की असफलताओ की एक लम्बी सी कडी रहती है। क्षणिक सफलता और पुन असफलताओ के कारण हृदय तडपता है। आदर्श निर्माण की लालसा हृदय–मथन करती है और अप्राप्ति हृदय को निराश भी करती है। अत इस युग की अभिव्यक्ति मे नवीनता की झलक, निराशा, वेदना और पराजयवाद की छाप लगी रहती है। इसलिये आज यदि हमारे साहित्य मे पराजयवाद या वेदना की मात्रा है तो यह न केवल स्वाभाविक, वरन् आवश्यक एव तत्वपूर्ण भी है। इसी परिणाम स्वरूप नवीन जी ने अपने आपको 'सक्रान्ति काल का प्राणी' कहा है, जिन्हे सुखोपभोग प्राप्त नहीं है–

'हम सक्रान्ति–काल के प्राणी,
बदा नहीं सुख भोग।
घर उजाडकर जेल बसाने,
का है हमको रोग।'

नवीन जी के कण–कण में राष्ट्रभक्ति तथा मातृभक्ति–प्रीति की भावना परिप्लावित थी। उन्होने अपनी मातृभूमि की वन्दना तथा प्रशस्ति स्वरूप कतिपय रचनाओ की ही सृष्टि की। वन्दना की अपेक्षा कवि का ध्यान प्रशस्ति की ओर अधिक गया है। भौतिक या प्राकृतिक रूप वन्दना की अपेक्षा आध्यात्मिक या सास्कृतिक मूल्यो को कही अधिक महत्व प्रदान किया है।

नवीन जी ने असहयोग आन्दोलन के समय अनेकानेक जागरण तथा अभियान गीतो की सृष्टि की है उनकी देशभक्ति मे भी सौन्दर्य की अनुभूति है। देशभक्तिपरक इन गीतो मे आन्दोलन की सहज तथा सफल प्रतिक्रियाये अभिव्यक्त हुई हैं। कवि के जागरण गीतो मे चेतना तथा स्फूर्ति का जलनद उमड रहा है। कवि ने राष्ट्रीय सामाजिक जीवन में निराशा को स्थान नही दिया। राष्ट्रीय कविताओ के क्षेत्र में, सन् 1942 ई0 की क्रान्ति के आवर्त में कवि अधिक सचेष्ट हुआ। गॉधी जी की वाणी चहुँ ओर गूँज उठी–

'जागो, जागो अमृत सुवन तुम, जागो सोने वालो,

जागो तुम सिहो के छौनो, जागो सब कुछ खोने वालो।

जागो, देशकाल निर्माता, जागो तुम निज भाग्य विधाता,

जागो, इतिहास के ज्ञाता, जागो तत्वज्ञान के दाता।'

क्रान्ति के संवेदनशील क्षणो मे, कवि ने भैरव के स्वर सुनाये। कवि ने युवको के यौवन को ललकारा, उन्हे सघर्ष मे जूझने के लिये प्रेरित किया। कवि की वाणी सजीवनी बूटी के समान कार्य करती है–

'जब करोगे क्रोध तुम तब आयेगा भूडोल,

कॉप उठेगे सभी भूगोल और खगोल।'

उनके गीतो मे ओज की प्रधानता है और सहज भावाभिव्यक्ति को अपनी प्रश्रय–स्थली मिली है। श्री सुधाकर पाण्डेय ने लिखा है– 'उन्होने अपने मन की अनुभूतियो को उसी रूप मे चित्रित किया है जिस रूप मे अनुभूतियॉ उत्पन्न हुई हैं। वह अपने कवि के प्रति ईमानदार रहे हैं। उनकी रचनाओ मे एक प्रकार का आक्रोश, वेग, गति, झकार है, किन्तु साथ ही टूटे हृदय के तार, जीवन की अस्त–व्यस्तता सभी कुछ एक स्थान पर एकत्र हो गये हैं।'[43]

प्राचीन गौरव तथा सस्कृति चिर प्रेरणास्पद तथा स्मरणीय होती है। नवीन जी ने प्राचीन साहित्य और सस्कृति का अच्छा अध्ययन किया था। उज्ज्वल अतीत का विस्मरण नवीन जी नही कर सकते थे। अतीत गौरव के साथ ही साथ नवीन जी ने वर्तमान दशा का भी अनावरण किया। अतीत जहॉ मार्गदर्शन तथा ज्योति लहर प्रदान करता है, वहॉ वर्तमान चिन्ता, आक्रोश तथा निदान की ओर उन्मुख करता है।

कवि की वर्तमान दशा सम्बधी रचनाओ मे वेग तथा तेजस्विता के दर्शन होते हैं। उसका ध्यान, हमारी राजनैतिक स्थिति के साथ–साथ, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियो की ओर भी गया। वैभव तथा दर्पपूर्ण विगत भारत की वर्तमान दुर्गति ने कवि के मानस को आन्दोलित एव उद्वेलित कर दिया। इन कविताओ ने छायावाद के युग मे नूतन भावधारा का प्रणयन किया। डॉ0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने लिखा है– '× × × × × और नवीन जी ने खडीबोली के कोमल–कोमल युग मे उग्र भावनाओ का वर्णन करके, काव्य के वैविध्य को सुरक्षित रखा है। यह दुरुह न होने के कारण और महाभारत,

आल्हा पढकर उत्साह ग्रहण करने वाली सामान्य जनता मे ही नही शिक्षित जनता मे भी प्रचलित हुआ। इस काव्य से विदेशी साम्राज्यवाद से लडने मे भी मदद मिली।'[44]

नवीन जी के भविष्य विषयक सकेत भी सक्रान्ति–काल के काव्य मे प्राप्त होते है। वे भविष्य के प्रति सजग एव सचेत थे। आशावादी होने के कारण भविष्य मे उनकी दृढ आस्था थी और यह विह्वल विश्वास था कि हमारे सामूहिक प्रयत्नो से हमारा देश स्वतन्त्र होगा। वास्तव मे, चरैवेति–चरैवेति का सिद्धान्त ही भविष्य की लक्ष्य लहर को अपनी ओर आकृष्ट करने मे सामर्थ्य तथा साहस उत्पन्न करता है–

'मास, वर्ष की गिनती क्या हो वहॉ, जहॉ मनवन्तर जूझे ?
युग परिवर्तन करने वाले जीवन–वर्षों को क्यो बूझे ?
हम विद्रोही।। कहो, हमे क्यो अपने मग के कटक सूझे ?'[45]

नवीन जी की सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध रचना 'विप्लव गायन' ने क्रांति का शखनाद किया था। कवि की यह रचना बहुउद्धृत एव बहुचर्चित रही है। यह रचना 'कुकुम' सग्रह मे सकलित है। इस कविता में विप्लव के किसी अराजकतामय क्रान्ति की ओर सकेत न होकर मानवोचित गुणो की प्राप्ति की ओर सकेत है। कवि सबलो की बर्बरता को कायरता पूर्वक विधि से सहन नहीं कर सकता। वह सनातन परम्परा के नाम पर अंधविश्वासी हो समाज का नाश नहीं होने देगा। वह कहता है–

'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ उथल–पुथल मच जाये।
एक ओर कायरता कापे, गतानुगति विगलित हो जाये।
अध मूढ विचारो की वह अचल शिला विचलित हो जाये।'[46]

और यदि यह सब न हो सके तो जैसी विगलित अन्ध विचारो की सस्कृति विद्रोही गतिविधि चल रही है, उससे तो यही अच्छा है–

'नियम और उपनियमो के ये बन्धन टूक–टूक हो जाये।
विश्वभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जायें।'[47]

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य : काव्य प्रतिष्ठा का मूलाधार

स्वाधीन भारत मे आकर कवि की राष्ट्रीय भावना सांस्कृतिक क्षेत्रो मे अपना प्रसार पा गयी। भारत के स्वाधीन होने पर, हमारे कवियों ने सुन्दर राष्ट्र–गीतो का सृजन किया। इनमे नवीन जी के प्रस्तुत गीत ने बडी ख्याति प्राप्त की–

'कोटि–कोटि कण्ठो से निकली
आज यही स्वर धारा है,
भारत वर्ष हमारा है,
यह हिन्दुस्तान हमारा है।

कवि के श्रद्धालु मानस ने प्रणतिपूर्वक अपने देश की विभूतियो तथा महापुरुषो के प्रति अपनी भक्ति भावना अभिव्यक्त की है–

'वदन कर लूँ आज तुम्हारे अडिग अकम्पित उन चरणो मे,
जिनकी महिमा रही अगीता जन–साहित्य के अधिकरणो मे।

नवीन जी के जिस प्रकार पराधीन भारत मे सन् 1942 की क्रान्ति के समय गॉधी जी मे अपनी भक्ति उडेली थी, उसी प्रकार गणतन्त्र भारत मे गॉधी जी के शिष्य तथा आध्यात्मिक उत्तराधिकारी आचार्य विनोबा भावे मे अपनी श्रद्धा उडेली। नवीन जी ने विनोबा के व्यक्तित्व की महिमा का वर्णन करते हुए उनके संदेशो का प्रतिपादन किया है। भूदान यज्ञ का सार इन पक्तियो मे पिरोया गया है–

'नित्य सनातन, नित्य पुरातन,
अति करुणायन, नित्य नवीन,
दान समविभाजनं– उसका
यह अद्भुत सन्देश अदीन।'[48]

स्वतन्त्र भारत में नवीन जी की राष्ट्रीयता ने सास्कृतिक तत्वो को अपनी सीमाओ में अधिकाधिक समेट लिया। राष्ट्रवाद के राजनैतिक रूप की अपेक्षा उसका सास्कृतिक पक्ष ही अधिक पुष्ट, स्थायी तथा प्रेरणास्पद होता है। डॉ. नगेद्र ने लिखा है– 'सामयिक प्रभाव का दूसरा नाम फैशन है, और साहित्य भी

फैशन से बच नहीं सकता। हिन्दी मे न जाने कितने कवियो ने राष्ट्रीयता की मूलधारा मे अवगाहन किये बिना प्राणो के स्फुलिग की जगह मुँह के झाग उगले और छिछले दिल और दिमाग के लोगो ने झूम–झूम कर उनकी दाद दी। परन्तु गभीर कवियो और पाठको को इनमे आत्माभिव्यक्ति नहीं मिली। इसीलिये भारत–भारती के कवि को साकेत और यशोधरा मे आत्माभिव्यजन खोजना पडा, रेणुका के कवि को कुरुक्षेत्र मे आकर आत्म–साक्षात्कार हुआ, नवीन को सास्कृतिक कविताओ मे अपनी आत्मा का रस उडेलना पडा और जो ऐसा नही कर सके, वे काव्य इतिहास के पृष्ठ से लुप्त हो गये।'[49]

स्वान्त्र्योत्तर युग मे कवि के राष्ट्रवाद ने मानवता, विश्व मैत्री तथा उच्चतर जीवन–मूल्यो की ओर अपने आप को मोड लिया। नवीन जी की राष्ट्रवादिता की धार शरद ऋतु के मन्द तथा गभीर प्रवाह मे परिवर्तित हो गयी। इस युग के राष्ट्रपरक काव्य मे प्रौढता और सघनता के दर्शन होते हैं। नवीन जी की ख्याति तथा साहित्यिक प्रतिष्ठा का मूलाधार उनका समग्र राष्ट्रीय सास्कृतिक व्यक्तित्व है।

प्रेम काव्य : काव्य प्रासाद का आधार

राष्ट्रीय सास्कृतिक कविताओ के अतिरिक्त नवीन जी ने प्रेम तथा दार्शनिक कविताओ का भी सृजन किया है। उनके काव्य मे प्रेम तथा श्रृगार के विविध रूप प्राप्त होते है। उन्होने श्रृगार के संयोग तथा वियोग, दोनो ही अगो को समेटा है, परन्तु वियोग पक्ष अधिक प्रबल तथा मुखर बन गया है, सयोग के चित्र कम मात्रा में प्राप्त होते है। नवीन जी ने प्रेम के स्थूल एव मासल रूप के साथ ही साथ उसका सूक्ष्म रूप भी प्रस्तुत किया है।

नवीन का समग्र प्रेमकाव्य अपने आलम्बन के सम्बोधन, स्मरण एव विरह से आपूर्ण है। कवि ने पग–पग पर प्रेम के आलम्बन के प्रति अपनी सरल, निष्कपट, मार्मिक और कारुणिक, प्रणयाभिव्यक्ति की है। अपनी प्रेयसी के लिए कवि का स्नेहिल, लाडला तथा आसक्तिमय सम्बोधन 'रसखान' है–

'प्रिय तुम क्यो हो इतनी अच्छी
सुघड सौम्य, रस–खानी।'[50]

अपनी सलोनी के प्रति कवि की यह प्रीतिमयी प्रार्थना है–

'मत ठुकराओ मुझे, सलोनी मैं हूँ प्रथम प्यार का चुंबन

मुझे न हॅस–हॅस टालो, मै हूँ मधुर–स्मृतियो का अवलम्बन।'[51]

नवीन जी न अनी प्रियतमा के रूप और यौवन के अनेक चित्र खीचे हैं। इनमे नारी जीवन के हाव–भाव तथा विलास प्रस्फुटित हो पडे हैं। कवि के प्रेम–काव्य मे नारी–चित्रों की ही प्रधानता है, पुरुष के रूप के चित्र नगण्य हैं। कवि ने अपने प्रिय के रूप, यौवन और सौन्दर्य के रससिक्त एव चित्ताकर्षक चित्र प्रदान किये है। इन चित्रो मे कवि की वेदना और प्रेमाभिव्यक्ति का सुघढ रूप प्राप्त होता है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– 'इन कविताओ मे सच्चे रोमाटिक कवि की भॉति वे कल्पना के पख फैलाकर भाव के आकाश मे उडान लेते हैं।'[52] वस्तुत नवीन जी के काव्य मे रोमाटिक–वृत्ति की प्रधानता है, उनकी प्रेमाभिव्यक्ति सरल तथा भावपूर्ण है।

नवीन जी के प्रेम–काव्य मे प्रकृति ने भी महत्वपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण योगदान दिया है। प्रकृति उत्तेजना प्रदान करती है–

'लोग कहे महुआ गदराने,
हिय के घाव पके हम जाने,
अरी, कोयल बोल बोलियो ना।'[53]

प्रकृति भावोद्दीप्ति का सरस परिवेश सृजन करती है और कवि को प्रिय दर्शन के लिए लालायित करती है। इन पक्तियो मे कवि की मनोकामना अपना पख प्रसार रही है–

'मेरे प्रिय, अब कब तक होगे उन नयनो के मगल दर्शन,
हुलस करोगे कब, निज जन पर उन नयनो से मधु रस वर्षण ?
कब फिर उन्हे निरख कर होगा मेरे रोम–रोम का हर्षण ?'[54]

नवीन की अधिकाश कविताये कारावास में लिखी गयी थी– मित्रो और स्वजनों से दूर, कारागार की कोठरी में, कवि के मन में तरह–तरह के भाव उठते हैं और उसकी सबल कल्पना मुक्त श्रृगार के अनेक चित्र खीचती है। कारागार प्रसूता होने के कारण, उनके प्रेम काव्य मे स्मृति तत्व ने मूल तन्तु का कार्य किया है। कवि ने स्मृति का मूल्याकन इन शब्दो मे किया है–

'स्मृति क्या है ? प्रिय स्मृति ही तो है केवल यहॉ हमारी थाती।'

नवीन जी आकठ तरुणाई के, यौवन के कवि हैं। उनकी अनुभूति का यह चिरन्तन उभार उनकी समूची काव्याभिव्यक्ति मे स्थल–स्थल पर परिलक्षित, ध्वनित और गुजरित होता है। विप्रलम्भ कवि का स्थायी सहचर है। कवि का वियोग दर्शन इन पक्तियो मे व्यक्त हुआ है–

'हाय–हाय करिबे की हमने कबहुँ न सीखी बान,
विथा हँसी हूँ मै, सुनि लेते जो तुम देते कान।'[55]

नवीन जी के काव्य मे, अपने समकालीन पथ के साथियों के समान, प्रणय के मासल तथा उन्मादक चित्र प्राप्त होते हैं। इस धारा के मूल मे कवि की तारुण्यमयी प्रेम–घटना, मस्तीभरा व्यक्तित्व तथा स्वच्छदतावादी वृत्तियाँ कार्यशील रही है। 'कवि अपनी उन्मादिनी वासना की ओर सकेत भी करता है–

'उस तव मृदुल चरण चौकी पर
बाले! कैसे डालूँ फूल ?
उन्मादिनी वासना की यह
मेरे हिय मे छायी धूल।'[56]

कवि ने प्रेम के क्षेत्र मे उन्माद के चित्रो के द्वारा रस–प्लावन की सरिता ही बहा दी। उनके कतिपय मधुवादी गीतो में उन्मादी वृत्तियो का रुपाकन किया गया है। डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है– 'राजनीतिक और आर्थिक पराभव के कारण उस समय के वातावरण मे गहन अवसाद छाया हुआ था, जिसके परिणाम स्वरूप तत्कालीन समाज मुख्यत मध्यवर्ग की चेतना एक विशेष आध्यात्मिक क्लान्ति से अभिभूत हो गयी थी।'[57]

इसी क्लान्ति को दूर करने के लिए ही हाला का आह्वान किया गया था। डॉ0 नगेन्द्र ने इसे 'आध्यात्मिक विद्रोह से प्रेरित भोगवाद की हाला' कहा है। कवि के प्रेमाधिक्य अथवा उन्मादावस्था को इन पक्तियो ने आश्रय दिया है–

'कूजे–दो कूजे मे बुझने वाली मेरी प्यास नही,
बार–बार ला! ला! कहने का समय नही अभ्यास नहीं।

अरे बहा दो अविरल धारा,

बूँद–बूँद का कौन सहारा ?

मन भर जाय, जिया उतराये,

डूबे जग सारा का सारा,

ऐसी गहरी ऐसी लहराती ढलवा दे गुल्लाला,

साकी, अब कैसा विलम्ब ? ढरका दे तन्मयता–हाला।'[58]

नवीन जी का प्रेम काव्य उनके हृदय का स्वच्छ दर्पण है, अमल अनुभूतियो का आगार है, उनमे प्रणय, रूप सौन्दर्य, यौवन, मादकता, भोग एव समन्वय के सूत्र अपनी सयुक्त जलनिधि मे काव्य श्री को स्नात कर रहे हैं। प्रेम काव्य पर ही कवि का काव्य–प्रासाद आधृत है, उसमे काव्य–प्रकर्ष भी अपने महत्तम शिखरो का स्पर्श करता है गीति–कला का सर्वाधिक सुन्दर प्रस्फुटन और मार्दव, इसी क्षेत्र मे ही विलास कर रहा है। कवि मूलत· और सामान्यत गीतिकार ही था, जिसका प्रमाण उसका यही प्रेम काव्य है। इस काव्य मे स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो ने अपना स्वर्णकोष बिखेरा है। डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है– 'उनकी श्रृगारपरक रचनाओ मे एक सच्चे रोमाटिक कवि के दर्शन होते हैं।'[59]

नवीन जी के काव्य की परिणति उनकी आध्यात्मिक रचनाओ मे हुई है। अपने जीवन के प्राय पन्द्रह वर्षों मे कवि का मन पारलौकिक तत्वो की ओर उन्मुख हुआ और उसने गभीर आस्था तथा रहस्य भावना से प्रेरित मधुर गान गाये।

नवीन का दार्शनिक काव्य उनके जीवन तथा अध्ययन की उपज है। उनके दार्शनिक काव्य मे नाना प्रकार के तत्वों का सचयन है और इन सब पर उनका भावुक कवि आच्छादित है। उनका दार्शनिक व्यक्तित्व आत्मा के अस्तित्व की गुत्थी सुलझाने के लिए प्रयत्नशील है। नवीन जी ने 'क्वासि' की भूमिका मे इस प्रसग का विशद विवेचन किया है। इस प्रसग की चर्चा के अन्त मे उन्होने निष्कर्ष भी प्रस्तुत किया है। वे स्वय प्रश्न करते हैं– 'इस भव्य, उदात्त, हृदय–मन्थनकारी सम्भाषण का क्या अर्थ है ? इसका उत्तर है– अर्थ केवल यह है कि अन्तर–पट के पार झॉकने की प्रेरणा, अवगुण्ठन को खोलने की

प्रणोदना, भारतीय आत्म–अनुसन्धान के रूप मे, सहस्त्राब्दियो से हमारे देश के ऑगन मे मचलती, खेलती, दौडती, ठहरती, विहॅसती, रोती और रुलाती रही है।"[60]

उपनिषदो ने नवीन जी के काव्य को प्रभूत सामग्री प्रदान की है। ईशावास्योपनिषद से कवि विशेष प्रभावित हुआ। कठोपनिषद मे वर्णित यम–नचिकेता सवाद उनका प्रिय तथा अनन्य प्रसग है जिसे उन्होने एक मृत्यु गीत का विषय बनाया है–

'नचिकेता बोला गुरु यम से, आर्य ईश है साक्षी।
मैं मुमुक्षु हूँ मृत्यु तत्व का, मुझे न दो मीनाक्षी।'

नवीन का दार्शनिक काव्य उनके जीवन, सस्कृति तथा साधना का परिपक्व फल है। उसमे उनके युग तथा वातावरण का उल्लास, अवसाद, निष्ठा तथा विवेक की वाणी मुखर है। उनके व्यक्तित्व का सगठित तथा घनीभूत रूप यहॉ उपलब्ध है। दर्शन की रुक्षता में भी उनके मस्त मन और कवि व्यक्तित्व का मधु धार प्रवाहमान रहता है।

नवीन जी के काव्य के मूल्य तथा महत्ता की कहानी उनके युग–प्रेरक कवि–व्यक्तित्व मे निहित है। उन्होने अपने समसामयिक कवियो और काव्य प्रवाह को गहराई से प्रभावित किया है। उनका प्रेरणास्पद व्यक्तित्व एव प्रभाव सूत्र हमारे आधुनिक काव्य की विविध गतिविधियो मे झॉक उठा है। उनके क्रातिगीतो ने भारत के वायु मण्डल को ही नहीं, प्रत्युत हिन्दी की राष्ट्रीय वीणा को भी झकृत कर दिया था, जिसके फलस्वरूप उसमे से अनेक स्वर–झकृतियो ने जन्म लिया।

संदर्भ

1 डॉ0 प्रेमशकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–367

2 माखनलाल चतुर्वेदी – समय के पॉव, पृष्ठ–17

3 डॉ0 रामविलास शर्मा – माखनलाल चतुर्वेदी यात्रा पुरुष, पृष्ठ–258

4 माखनलाल चतुर्वेदी – अमीर इरादे गरीब इरादे, पृष्ठ–20

5 हरिवशराय 'बच्चन' – मधुकलश

6 हरिवशराय 'बच्चन' – मधुबाला–आत्मपरिचय–कविता (उधृत–आधुनिक कवि), पृष्ठ–39

7 हरिवशराय 'बच्चन' – आधुनिक कवि–अपने पाठको से (भूमिका), पृष्ठ–7

8 हरिवश राय 'बच्चन' – प्रारभिक रचनाएँ–भाग–2

9 हरिवशराय 'बच्चन' – प्रारभिक रचनाएँ–कोयल (कविता)

10 हरिवशराय 'बच्चन' – प्रारभिक रचनाएँ– उपवन (कविता)

11 सुमित्रानन्दन पन्त – बच्चन का व्यक्तित्व तथा काव्य (लेख)
सकलन–'बच्चन व्यक्ति और कवि', सपादक–बाकेबिहारी भटनागर, पृष्ठ–24

12 वही, पृष्ठ–24

13 हरिवशराय 'बच्चन'–मधुशाला

14 हरिवशराय 'बच्चन'–मधुबाला

15 हरिवशराय 'बच्चन' – मधुबाला–इस पार उस पार (उद्धृत–आधुनिक कवि), पृष्ठ–34–35

16 हरिवशराय 'बच्चन' – मधुकलश–कवि की वासना (कविता)

17 हरिवशराय 'बच्चन' – निशा निमत्रण

18. हरिवशराय 'बच्चन' – प्रणय–पत्रिका

19 हरिवशराय 'बच्चन'– बुद्ध और नाचघर–शैल विहगिनी (कविता)

20. हरिवशराय 'बच्चन' – बुद्ध और नाचघर (उद्धृत–आधुनिक कवि), पृष्ठ–134–135

21 हरिवशराय 'बच्चन' – त्रिभगिमा–सोनमछरी (उद्धृत–आधुनिक कवि), पृष्ठ–150

22 रामधारी सिह 'दिनकर' – रेणुका, पृष्ठ–7

23 वही

24 वही, पृष्ठ–3

25 रामधारी सिह 'दिनकर'–काव्य की भूमिका, पृष्ठ–42

26 रामधारी सिह 'दिनकर'– रेणुका, पृष्ठ–14

27 वही, पृष्ठ–86

28 वही, पृष्ठ–64

29 वही, पृष्ठ–12

30 रामधारी सिंह 'दिनकर' – हुकार, पृष्ठ–16

31 रामधारी सिह 'दिनकर' – चक्रवाल (भूमिका), पृष्ठ–33

32 रामधारी सिह 'दिनकर' – रसवन्ती, पृष्ठ–4

33 रामधारी सिह 'दिनकर' – कुरुक्षेत्र, पृष्ठ–101

34 रामधारी सिह 'दिनकर' – उर्वशी (भूमिका), पृष्ठ–2

35 वही, पृष्ठ–6

36 डॉ0 कान्ति कुमार जैन– रोमैण्टिक मिजाज मुकुटधर पाण्डेय से मुक्तिबोध तक (बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'–लेख), पृष्ठ–34

37 वही, पृष्ठ–34–35

38 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – कुकुम, पृष्ठ–10

39 शिवदान सिह चौहान – काव्यधारा–हिन्दी कविता का विकास, पृष्ठ–40

40 डॉ0 लक्ष्मीनारायण दुबे – बालकृष्ण शर्मा नवीन . व्यक्ति और काव्य, पृष्ठ–151

41 वही, पृष्ठ–157

42 वही, पृष्ठ–158

43 सुधाकर पाण्डेय – हिन्दी साहित्य और साहित्यकार, पृष्ठ–209

44 डॉ0 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय – आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ–335

45 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'– रश्मिरेखा, पृष्ठ–16

46 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'– कुकुम, पृष्ठ–10

47 वही, पृष्ठ–11

48 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – विनोबा स्तवन, पृष्ठ–9

49 डॉ0 नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियॉ, पृष्ठ–36

50 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'–रश्मि रेखा, पृष्ठ–21

51 वही, पृष्ठ–43

52 डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य (छायावाद), पृष्ठ–476

53 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – कुकुम, पृष्ठ–83

54 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – रश्मिरेखा, पृष्ठ–95

55 वही, पृष्ठ–95

56 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – कुकुम, पृष्ठ–8

57 डॉ0 नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियॉ, पृष्ठ–83

58 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – रश्मि रेखा, पृष्ठ–75

59 डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–208

60 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – क्वासि, पृष्ठ–23

समापन

समापन

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद विगत शताब्दी के चौथे दशक तक अपनी सर्वोत्कृष्ट उपलब्धियो को प्राप्त कर लेता है। साहित्य के इतिहास मे यह सत्य स्वीकृत है कि किसी साहित्यान्दोलन की प्रतिष्ठा ही उसके पतन का सूचक है। उपलब्धियो की ऊँचाई पर पहुँचकर उसमे अनेकानेक रुढियो और विकारो का सूत्रपात होता है और उसकी नवीनता नष्ट हो जाती है। वह रुढ परम्परा का पोषक बन जाता है। इतिहास के दबाव को सहन करने मे वह असमर्थ हो जाता है। हिन्दी साहित्य का स्वच्छन्दतावादी काव्य आन्दोलन भी इसका अपवाद नही है। हिन्दी स्वच्छदतावाद नवीन भावबोध के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ था। यह भावबोध युगबोध के साथ घनिष्ठ रूप से सयुक्त है। यह युगबोध मूलत आध्यात्मिक और सास्कृतिक था। जब तक कवियो ने इस युगबोध को आत्मसात कर कविताओ की रचना की थी, तब तक उनका काव्य भी भव्य और उदात्त बना रहा। परन्तु भारतीय परिस्थितियॉ बडी तेजी से बदल रहीं थी और कवियो पर भी उनका काफी प्रभाव पड रहा था। ये परिस्थितियॉ बडी विक्षोभकारी थी, जिसके फलस्वरूप स्वच्छन्दतावादी कवियो की एकात्मकता, वैचारिक स्थिरता और भावात्मक तीव्रता धीरे–धीरे खण्डित होने लगती है और एक नये युग–बोध का जन्म होने लगता है। यह नया युग बोध अनास्था और अभाव के ततुओ से बना है। इस युग बोध की अनुभूति इतनी तीखी थी कि कवि–मेधा के चिन्तन के सूत्र सहसा बिखरने लगते हैं। वह अपने को स्वच्छन्दतावादी चर्चा मे निमग्न रख सकने मे असमर्थ पाता है और नयी दिशाओ की ओर प्रयाण करता है।

यूरोपीय रोमाटिसिज्म की तरह हिन्दी स्वच्छन्दतावाद वैचारिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि से पूर्णतया नहीं जुडता। यद्यपि भारतीय नवजागरण ने उसे प्रभावित किया और उसके निर्माण मे देश की परिस्थितियो का हिस्सा है, इसीलिए हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की सीमाये अपने समय की सीमाये कही जा सकती हैं और एक सीमित क्षेत्र मे काम करने के कारण वह गहरे उतर गये। सीमित ससार के कारण स्वच्छन्दतावाद अपना सम्पूर्ण वैभव दिखा सका । स्वच्छन्दतावादी काव्य ने अपने समय की जिन सीमाओ मे कार्य किया उनमे वह रचना की जिन ऊँचाईयो पर गया, वह ऐतिहासिक महत्व का है। उसने

वैयक्तिक विद्रोह का नारा दिया और निजी अनुभव का ससार जो प्राय विलुप्त हो जाता था उसके उपयोग का रास्ता दिखाया। व्यक्तित्व के प्रकाशन की जिस परम्परा का सूत्रपात स्वच्छन्दतावादी काव्य मे हुआ, उसका अनुसरण बाद के काव्यान्दोलनो मे भी हुआ। स्वच्छन्दतावादी कवियो ने राष्ट्रीय–सास्कृतिक परिवेश की पहचान रोमानी दृष्टि से की। फिर भी स्वच्छन्दतावादी कवि अपने समय की चेतना से जुडे रहे, जिससे यह आन्दोलन लम्बे समय तक जीवित रह सका।

काव्य मे व्यक्तिवाद की अभिव्यक्ति की पहली महत्वपूर्ण कोशिश स्वच्छन्दतावादी कवियो ने की। बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे भारतीय मध्य वर्ग की जो मनोवृत्ति थी, यह काव्य उसी की उपज है। जिस कल्पना ने उन्हे जीवन–यथार्थ से काफी समय तक जुडने नहीं दिया, उसी तत्व ने स्वच्छन्दतावाद को नये आकाश दिये। अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे कल्पना के सहारे स्वच्छन्दतावादियो ने नयी ऊँचाईयो को स्पर्श किया। इन कवियो ने अपना पृथक् व्यक्तित्व निर्मित करते हुए नये बिम्बो और प्रतीको का निर्माण किया। ये कवि कलात्मक उत्कर्ष की नयी ऊँचाइयो पर पहुँचे । इन कवियों ने अपना सौन्दर्य–जगत निर्मित किया । इनके सौन्दर्य–जगत मे प्रेम का क्रिया–व्यापार, नारी–सौन्दर्य तथा प्रकृति–दृश्य अपनी सक्रिय भूमिका निभाते हैं। रीति युगीन विलासी परिवेश को छिन्न–भिन्न कर इन कवियो ने आधुनिक रोमानी जगत् का निर्माण किया। समाज और साहित्य में जिस स्वतत्रता की मॉग स्वच्छन्दतावादियो ने की, उसने आने वाली पीढी के लिए दिशा निर्देश का कार्य किया।

स्वच्छन्दतावादी कवियो ने अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप मे खडीबोली को अपनाया और उसे एक नया सस्कार दिया। उसे अपनी अभिव्यक्ति के अनुकूल बनाया। उनकी स्वच्छन्द वृत्ति का प्रकाशन छन्दो के बधन मे सम्भव न था। अत उन्होंने छन्दमुक्तता को प्रश्रय दिया। स्वच्छन्दतावादी कवियो ने हिन्दी काव्य को लयात्मक गीत–प्रगीतो से समृद्ध किया।

स्वच्छन्दतावादी रचना के केन्द्र मे मनुष्य है। स्वच्छन्द कवियो ने मानव–प्रकृति की निकटता स्थापित करके आत्म विस्तार किया। उच्चतर मानव मूल्यो की स्थापना तथा मानव व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करते हुए स्वच्छन्दतावादी कवियो ने रचना का एक मानवीय जगत् निर्मित किया।

सहायक ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ सूची

1 अजब सिह – आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियॉ

2 अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध' – प्रिय प्रवास

3 इन्द्रनाथ मदान – जयशकर प्रसाद चिन्तन और कला

4 " – निराला (सम्पादित)

5 " – महादेवी (सम्पादित)

6 कमल कुमारी जौहरी – हिन्दी मे स्वच्छन्दतावादी उपन्यास

7 काति कुमार जैन – रोमांटिक मिजाज . मुकुटधर पाण्डेय से मुक्तिबोध तक

8 कुमार कौस्तुभ – ओ मेरे बसन्त के वर्ष ! (अलेक्सांद्र पुश्किन की प्रेम कविताऍ–अनुवाद)

9 के0 क्षीर सागर – टीका विवेक

10 कृष्ण चन्द्र वर्मा – घनानन्द

11 गगा चरण त्रिपाठी– काव्य तत्व

12 गजानन माधव मुक्तिबोध – कामायनी एक पुनर्विचार

13 " – नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र

14 जगदीश गुप्त – स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का दार्शनिक विवेचन

15 जय किशन प्रसाद – हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियॉ

16 जयशकर प्रसाद – कामायनी

17 " – काव्य और कला तथा अन्य निबध

18 जैन एव माथुर – विश्व इतिहास (1500 ई0 से 1950 ई0 तक)

19 दूधनाथ सिह – निराला आत्महन्ता आस्था

20 देवराज उपाध्याय – रोमाटिक साहित्य शास्त्र

21 धनंजय वर्मा – निराला . काव्य और व्यक्तित्व

22 नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ

23 " – आस्था के चरण

24 नन्ददुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य

25 " – नये साहित्य नये प्रश्न

26 " – हिन्दी साहित्य– बीसवी शताब्दी

27 नरेन्द्र देव वर्मा – हिन्दी नव स्वच्छन्दतावाद

28 नामवर सिह – आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ

29 " – छायावाद

30 पूनम चन्द्र तिवारी – द्विवेदी युगीन काव्य

31 प्रेम नारायण शुक्ल – हिन्दी साहित्य मे विविध वाद

32 प्रेम शकर – प्रसाद का काव्य

33 " – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य

34. फूल बिहारी शर्मा – हिन्दी की स्वच्छन्द समीक्षा

35 बच्चन सिह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास

36 " – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास

37 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – क्वासि

38 " – कुकुम

39 " – रश्मि रेखा

40 " – विनोबा–स्तवन

41 बॉके विहारी भटनागर – बच्चन , व्यक्ति और कवि (सम्पादित)

42 भगीरथ मिश्र – हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास

43 महादेवी वर्मा – गीत पर्व

44 " – दीप शिखा

45 महादेवी वर्मा – यामा

46 " – रश्मि

47 " – सप्तपर्णा की भूमिका

48 " – साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध

49 माखनलाल चतुर्वेदी – अमीर इरादे, गरीब इरादे

50 " – समय के पॉव

51 मैथिलीशरण गुप्त – साकेत

52 रघुवश – हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियॉ

53 रमेश कुन्तल मेघ – मिथक और स्वप्न कामायनी की मन सौन्दर्य सामाजिक भूमिका

54 रामचन्द्र तिवारी – साहित्य का मूल्याकन (अनुवादित), मूल लेखक–वेर्सफील्ड

55 रामचन्द्र मिश्र – श्रीधर पाठक और हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य

56 रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास

57 रामधारी सिह 'दिनकर' – उर्वशी

58 " – काव्य की भूमिका

59 " – कुरूक्षेत्र

60 " – चक्रवाल

61 " – रसवन्ती

62 " – रेणुका

63 " – शुद्ध कविता की खोज

64 " – सस्कृति के चार अध्याय

65 " – हुकार

66 रामनरेश त्रिपाठी – पथिक

67 " – मिलन

68 रामनरेश त्रिपाठी – स्वप्न

69 राम रतन भटनागर – जयशंकर प्रसाद . जीवन दर्शन–कला व कृतित्व

70 " – निराला और नवजागरण

71 राम विलास शर्मा – निराला

72 " – निराला राग–विराग (सम्पादित)

73 " – माखनलाल चतुर्वेदी यात्रा पुरूष

74 " – सस्कृति और साहित्य

75 रामस्वरूप चतुर्वेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या

76 " – आधुनिक कविता–यात्रा

77 " – प्रसाद–निराला–अज्ञेय

78 " – हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास

79 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल – आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और सौन्दर्य

80 लक्ष्मी नारायण दुबे – बालकृष्ण शर्मा नवीन व्यक्ति और काव्य

81 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी साहित्य का इतिहास

82 विक्रमादित्य राय – वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज समीक्षा सिद्धान्त

83 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – घनानन्द कवित्त

84 " – हिन्दी का समसामयिक साहित्य

85 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय – आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा

86 शातिस्वरूप गुप्त – पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त

87 शिवदान सिह चौहान – काव्य धारा हिन्दी कविता का विकास

88 शिवराम माली – स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान

89 श्याम सुन्दर दास – हिन्दी साहित्य · आधुनिक काल

90 सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' – पुष्कारिणी

91 सुधाकर पाण्डेय – हिन्दी साहित्य और साहित्यकार

92 सुधीन्द्र – हिन्दी कविता का क्रातियुग

93 सुमित्रानन्दन पंत – आधुनिक कवि

94 " – गुजन

95 " – ग्राम्या

96 " – चिदम्बरा

97 " – तारापथ (सम्पादित)

98 " – पल्लव

99 " – साठ वर्ष एक रेखाकन

100 सुरेश चन्द्र गुप्त – आधुनिक हिन्दी कवियो के काव्य सिद्धान्त

101 सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' – अनामिका

102 " – नये पत्ते

103 " – परिमल

104 " – प्रबन्ध प्रतिमा

105 सूर्य प्रसाद दीक्षित – छायावादी कवियो का गद्य साहित्य

106 हजारी प्रसाद द्विवेदी – अशोक के फूल (निबध–सग्रह)

107 " – हिन्दी साहित्य

108 " – हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास

109 हरिकृष्ण पुरोहित – आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव

110 हरिवश राय 'बच्चन' – आधुनिक कवि (सम्पादित)

111 " – प्रणय–पत्रिका

112 " – प्रारम्भिक रचनाएँ (भाग–1–2)

113 " – निशा निमत्रण

114 हरिवशराय 'बच्चन' – मधु कलश

115 " – मधुबाला

116 " – मधुशाला

अंग्रेजी ग्रन्थ

117 ए0 सी0 रिकेट – ए हिस्ट्री ऑफ इग्लिश लिटरेचर फ्राम अरलियस्ट टाइम टू नाइनटीन सिक्सटीन

118 कजामियाँ – ए हिस्ट्री ऑफ इग्लिश लिटरेचर

119 एफ0 एल0 लुकास – द डिक्लाइन एण्ड फाल ऑफ द रोमैंटिक आइडियल

120 जार्ज सेन्ट्सबरी – ए हिस्ट्री ऑफ इग्लिश क्रिटिसिज्म

121 जे0 एल0 नेहरू – द ग्लिमप्सेस ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री

122 एल0 एबरक्रोम्बी – रोमैंटिसिज्म

123 डब्ल्यू0 डी0 एलोक – द रोमन लैंग्वेज

कोश

1 नालन्दा विशाल शब्द सागर – सम्पादक – श्री नवल जी

2 हिन्दी साहित्य कोश – सम्पादक – धीरेन्द्र वर्मा

3 न्यू स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ इग्लिश लिटरेचर

4 रीडर्स इनसाइक्लोपीडिया

5 वेबेस्टर्स न्यू ट्वेन्टीएथ सेन्चुरी डिक्शनरी ऑफ इग्लिश लैंग्वेज

पत्रिकायें

1 आजकल – अर्द्धशती विशेषाक (मई 1994)

2 वर्तमान साहित्य – शताब्दी कविता विशेषाक (मई–जून 2000)

3 सम्मेलन पत्रिका (त्रैमासिक) – आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी विशेषाक (भाग–72)

4 " – निराला जन्म शताब्दी अक (भाग–82)

5 " – माखनलाल चर्तुवेदी विशेषाक (भाग–74)

6 हिन्दी अनुशीलन – जयशकर प्रसाद विशेषाक (प्रकाशन वर्ष–1990)

7 " – माखनलाल चर्तुवेदी विशेषाक (प्रकाशन वर्ष–1991)

8 " – सुमित्रानन्दन पत विशेषाक (प्रकाशन वर्ष–2000)

9 हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक) – निराला (अक–2, प्रकाशन– अप्रैल–जून, 1997)

10 " – राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (वर्ष–1988)